श्री भागवत-दर्शन :

भागवती कथा

(साठवाँ खण्ड)

व्यासशास्त्रोपवनतः सुमनांसि विचिन्वता ।
कृता वै प्रभुदत्तेन माला 'भागवती कथा' ॥

लेखक
श्रीप्रभुदत्त ब्रह्मचारी

प्रकाशक
संकीर्तन भवन
प्रतिष्ठानपुर (भूसी), प्रयाग

प्रथम संस्करण] वैशाख सम्वत् २०११ वि० [मूल्य १।)

मुद्रक—भागवत प्रेस, प्रतिष्ठानपुर, प्रयाग ।

प्रकाशक
संकीर्त्तन भवन प्रतिष्ठानपुर
झूसी, प्रयाग

मुद्रक
भागवत प्रेस
झूसी, प्रयाग

विषय सूची

खण्ड ६०

प्रकाशक
संकीर्तन भवन प्रतिष्ठानपुर
झूसी, प्रयाग

भागवती कथा लिखने की वासना

ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्म संगात्।
आस्थाय तत्तत् यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः॥

(श्री भा० ५ स्कं० १ अ० १५ श्लो०

छप्पय

बँधे भाग्य की डोरि वासना सब करवावे।
कबहूँ पटकै स्वरग नरक कबहूँ ले जावे॥
प्रानी बनि के विवश करै इच्छा बिनु कारज।
कबहुँ सत्व बढ़ि जाय तमोगुन बढ़ै कबहुँ रज॥
जब तक क्षय नहिँ वासना, होवै तब तक कछु न वश।
पुन्य पाप शुभ अशुभ नर, करै करम ह्वै कै विवश॥

सत् असत् वासनाओं का पुतला यह प्राणी अपने अभिमान के वशीभूत होकर कैसी कैसी बातें सोचता है, किंतु होता वही है, जो होने वाला होता है। कब कौन सी वासना उदय हो जाय, इसे कौन जानता है। इसीलिये ऋषियों ने वर्णाश्रम की व्यवस्था की। पुरुष के प्राणी के तीन ही अर्थ हैं, धर्म करने की इच्छा अर्थोपार्जन की इच्छा और काम भोग की इच्छा इसीलिये तीन को पुरुषार्थ कहा है, मोक्ष की भी इच्छा होती है, किन्तु वह सभी इच्छा से परम है, परे है—इसके अनन्तर कोई इच्छा शेष नहीं रहती। मोह का क्षय हो जाता है। इसीलिये उसका नाम परम पुरुषार्थ या मोक्ष है। इस जीवन में भी मनुष्य ममता के

—::०::—

भागवती कथा लिखने की वासना

ईशाभिसृष्टं ह्यवरुन्ध्महेऽङ्ग दुःखं सुखं वा गुणकर्मसंगात् ।
आस्थाय तत्तत् यदयुङ्क्त नाथश्चक्षुष्मतान्धा इव नीयमानाः॥

(श्री भा० ५ स्क० १ अ० १५ श्लो०

छप्पय

बँधे भाग्य की डोरि वासना सब करवावे।
कबहूँ पटकै स्वरग नरक कबहूँ लै जावे॥
प्रानी बनि के विवश करें इच्छा बिनु कारज।
कबहूँ सत्व बढ़ि जाय तमोगुन बढ़े कबहुँ रज॥
जब तक क्षय नहिं वासना, होवे तब तक कछु न वश।
पुन्य पाप शुभ अशुभ नर, करें करम ह्वै के विवश॥

सत् असत् वासनाओं का पुतला यह प्राणी अपने अभिमान के वशीभूत होकर कैसी कैसी बातें सोचता है, किंतु होता वही है, जो होने वाला होता है। कब कौन सी वासना उदय हो जाय, इसे कौन जानता है। इसीलिये ऋषियों ने वर्णाश्रम की व्यवस्था की। पुरुष के प्राणी के तीन ही अर्थ हैं, धर्म करने की इच्छा अर्थोपार्जन की इच्छा और काम भोग की इच्छा इसीलिये तीन को पुरुषार्थ कहा है, मोक्ष की भी इच्छा होती है, किन्तु वह सभी इच्छा से परम है, परे है—इसके अनन्तर कोई इच्छा शेष नहीं रहती। मोह का क्षय हो जाता है। इसीलिये उसका नाम परम पुरुषार्थ या मोक्ष है। इस जीवन में भी मनुष्य ममता के

चय होने से शरीर के अंत होने के पूर्व भी मुक्त हो सकता है, उसे जीवन मुक्त कहते हैं, किन्तु जीवन मुक्त होने पर भी शरीर का भोग शेष रह जाता है, कोई प्रारब्ध शेष रह जाता है तो उसका भोग मुक्त को भी करना पड़ता है, किन्तु उसमें उसकी आसक्ति नहीं रहती उसके लिये वह कर्म बन्धन का कारण नहीं बनता।

वासनायें भीतर भरी रहती हैं, समय आने पर भोगका काल आने पर उसका कारण उपस्थित हो जाता है, वे बलवती बन जाती हैं। उसमें प्राणी सभी बातें भूल जाता है, विवश बन जाता है। विभांडक मुनि के पुत्र ऋष्य शृंग ने जन्म से लेकर युवावस्था तक कभी स्त्री का दर्शन नहीं किया था, वे स्त्री से उत्पन्न भी नहीं हुए थे, हरिणी के गर्भ से उत्पन्न हुए थे, अर्थात् जन्म के समय भी उनका स्त्री के किसी अंग से स्पर्श नहीं हुआ था। उनके पिता को अनुभव था कि स्त्री दर्शन से मन में विकार उत्पन्न होता है। काम का एक नाम हृच्छय भी है, अर्थात् वह चुपचाप हृदय में पड़ा सोता रहता है और अवसर आने पर वह तुरन्त जग पड़ता है और प्रबल हो जाता है, अतः उन्होंने अपने पुत्र को स्त्री दर्शन से सर्वथा विमुख रखा। पुत्र को यह भी पता नहीं लगने दिया कि स्त्री नाम की कोई वस्तु भी संसार में होती है। घोर जंगल में पुत्र के साथ रहते, बड़ी सावधानी से सचेष्ट होकर उसकी रक्षा करते। केवल नैष्ठिक ब्रह्मचारियों से ही पुत्र को मिलने देते। उनकी इच्छा थी मेरा पुत्र अखंड ब्रह्मचारी बने। काम भी उनके हृदय में तान दुपट्टा सोता रहा। संयोग की बात वेश्या पुत्री आ गयी, उसने मुनि पुत्र का कस कर गाढ़ालिंगन किया मुनि पुत्र ने समझा यह भी कोई ब्रह्मचारी ही है, किन्तु वह तो काम जगाने वाली थी काम जाग पड़ा। किन्तु मुनि पुत्र को पता ही नहीं था, मेरे भीतर ही काम रूपी

शत्रु सो रहा है, यदि उसे पता होता तो वह इस करता और काम के शत्रु अधर्म का आश्रय लेता, इस बात को छिपाता; उसने पिता से सच सच कह दी। किन्तु पिता ने सत्य का आश्रय नहीं लिया। अधर्म के द्वारा धर्म की रक्षा करना चाहिये, झूठ बोलकर, भय दिखाकर, पुत्र को काम वासना से रोकना चाहा, किन्तु जगा हुआ काम बिना कुछ उपद्रव किये सोता ही नहीं। वह तो जहाँ जग पड़ा तहाँ कुछ अनर्थ करके ही हटेगा। विभांडक मुनि ने अपने पुत्र को बहुत समझाया—'बेटा! जिसे तुम मुनि पुत्र बताते हो, वह राक्षस है, अब वह कभी आवे तो उससे बात मत करना।'

किन्तु पुत्र के हृदय में सोया काम तो जाग उठा था, उसने मुनि पुत्र को भी रात भर नहीं सोने दिया, उसी ठगिनी—जिसे वह ऋषि पुत्र तपस्वी समझे बैठा था और वास्तव में जो कामिनी वेश्या पुत्री थी—का ध्यान करता रहा। दूसरे दिन वह फिर आयी। काम प्रबल हो गया था, उसने सर्व प्रथम अधर्म का आश्रय लिया, उसने पितृदेवोभव, इस वेदाज्ञा का उल्लंघन किया। पिता की आज्ञा के विरुद्ध वह वेश्या पुत्री के संग चला गया।

अजामिल भी विष्णु सहस्र नाम का पाठ करते हुए, संपूर्ण वेदाज्ञा का पालन करते हुए यज्ञ की समिधा लेने वन को गया था, उसे धर्म युक्त काम से तो परिचय था, किन्तु धर्म विरुद्ध काम से परिचय वन में ही हुआ और उस अधर्म युक्त काम ने उसे धर्म के पथ से विचलित कर दिया और पूरा अधर्मी बना दिया। उसने धर्म रक्षा के लिये प्रयत्न न किया हो सो बात नहीं, किन्तु अधर्म का पल्ला भारी रहा प्रारब्ध ने उसे पछाड़ दिया। जनसंग से विमुक्त होकर सौभरि मुनि जल में डूबकर तपस्या करते थे, हृदय वहाँ चिरकाल तक उनके हृदय में सोता

रहा। दुष्ट जाग पड़ा एक मीन के मैथुन धर्म के कारण इसमें दोष किसे दें ? मीन को, जल को, मुनि को या इन्द्रिय को ? हम तो समझते हैं प्रारब्ध के अतिरिक्त कोई दोषी इसमें नहीं।

मेरे एक परिचित महात्मा हैं। उन्होंने भगवन्नाम कीर्तन इतना अधिक किया है और कराया कि मेरी दृष्टि में इतना बड़ा नाम निष्ठ महात्मा इस युग मे दूसरा नहीं। वे मुझे अपने जीवन की एक अत्यन्त ही मर्म स्पर्शी कहानी सुनाते थे। वे कहते थे मैं निरन्तर अखंड भगवन्नाम लेता रहता था, करताल लेकर सदा हरे राम हरे राम राम राम हरे हरे, हरे कृष्ण हरे कृष्ण कृष्ण कृष्ण हरे हरे" इस मन्त्र का जोर जोर से कीर्तन करता और घूमता रहता। एक जाति की चमारिनि थी, उस पर मेरा मन ऐसा आसक्त हो गया, कि मैं उसी के पीछे फिरता। वह कंडा बीनने जाती उसके पीछे पीछे फिरता रहता। वह घर आ जाती उसके द्वार पर बैठा रहता।' वे बड़े प्रतिष्ठित महात्मा थे, चमार दम्पति ने उनका बड़ा आदर किया, वे चकित रह गये। चमार ने पूछा—'महाराज आज्ञा करें मैं क्या करूं ?" उन्होंने स्पष्ट कह दिया ऐसे ऐसे मेरा मन हो गया है।

चमार ने कहा—"मेरा बड़ा सौभाग्य!" उसे अच्छे वस्त्र पहिनाकर महात्माजी के साथ कर दिया, आप चाहे जहाँ इसे ले जायँ, जब तक चाहें रखें, जब चाहें यहाँ कर दें। स्त्री ने भी इसमें कोई आपत्ति नहीं की। महात्मा उस स्त्री का पैर छूकर चले गये. जब भी वे आते चमार दम्पति उनका स्वागत करते, वे कुछ भी नहीं बोलते केवल पैर छूकर चले जाते। इतने से ही उनका मन उससे हट गया।"

यह कथा उन महात्मा ने स्वयं मुझे सुनाई थी, वे महात्मा कहीं चले नहीं गये हैं, अब भी हैं, उनके जीवन के एक नहीं

सैकड़ों हज़ारों ऐसे चमत्कार हैं, कि भारी से भारी रोग को उन्होंने भगवन्नाम के प्रभाव से अच्छा कर दिया और भी बहुत सी बातें हैं। जिन्हें मैं विस्तार भय से यहाँ नहीं लिखता।

वासनायें कहीं बाहर से नहीं आतीं जैसे वृक्ष में पुष्प लग जाते हैं, फल लग जाते हैं, तो हम कहते हैं—पेड़ में तो फल पुष्प आ गये, वे कहीं बाहर से आकर थोड़े ही लग गये हैं, पेड़ के भीतर से ही उत्पन्न हो गये हैं, हम किसी से पूछते हैं—"तुम कैसे पड़े हो ?" वह कहता है मुझे ज्वर आ गया।" तो ज्वर कहीं बाहर से थोड़े ही आकर चढ़ गया, वह तो भीतर से ही आया है। वासनायें भीतर भरी हैं, दूसरों से उनका सम्बन्ध है, एक काल निश्चित है, जिस समय जैसी वासना उठने को होती है, वैसा संकल्प उठता है, मनुष्य वैसा ही ध्यान करने लग जाता है, उस संकल्प में आसक्ति हो जाती है, किसी की वासना पूरी हो जाती है, किसी की देर में पूरी होती है, किसी की दूसरे जन्म में और किसी की सहस्रों जन्मों में, जो वासना उठी है, वह पूरी होगी, चाहे स्वप्न में हो जाग्रत में हो। इसीलिये मोक्ष विना निर्वासना बने संभव नहीं। आप अनुमान करें मनुष्य पल पल में क्षण क्षण में कितने संकल्प करता है, फिर उसे कितने भोग भोगने पड़ते होंगे। इसीलिये इन वासनाओं को अनन्त बताया है, भोग भी अनन्त हैं, जन्म भी अनन्त हैं, योनि भी अनन्त हैं, इसी का नाम संसार चक्र है। जब अनन्त भगवान् कृपा करें, अनुग्रह करें, दया करें, अनुकम्पा करें, अपना लें, अपना करके वरण कर लें तभी जीव का उद्धार हो सकता है, अपने साधनों ही से, केवल अपने प्रयत्न और पुरुषार्थ से कोई इस असार संसार से पार नहीं जा सकता।

एक बात और है जो जितना ही साधन निष्ठ होगा उसका संकल्प भी उतना ही शीघ्र सिद्ध हो जायगा। ब्रह्माजी ने केवल

तप करके ही केवल संकल्प मात्र से ही इतनी बड़ी सृष्टि बना ली। मेरे संपर्क में अच्छे बुरे बहुत अधिक साधक आये हैं, और भिन्न विचार और संकल्प वाले आये हैं, मैंने देखा कि कुछ दिन साधन करने के अनन्तर ही उनकी छिपी हुई वासनायें जाग्रत हो उठती हैं, और वे प्रबल होती जाती हैं, तत्काल वे सिद्ध हो जाती है, फिर वे फँस जाते हैं, तदनन्तर उनके संकल्प में उतनी प्रबलता नहीं रहती। ध्यान कर रहे हैं, पूजन कर रहे हैं, उनके मन में संकल्प उठा ऐसे एक उत्सव करेंगे, उन उनको बुलावेंगे, वहाँ मंडप बनवावें, वहाँ अमुक को ठहरावेंगे, अमुक को यह काम सौंपेंगे।" फिर ध्यान आया अरे, हम यह क्या कर रहे हैं, कौन उत्सव के झंझट में पड़े अपने तो भजन करें। फिर माला फेरने लगे, फिर वही धुनाबुनी आरम्भ हुई। यदि उत्सव हो तो ऐसा हो, वह हो अच्छी भाँति हो, धूम धाम से हो" फिर सोचा अरे, कौन झंझट में पड़े। रुपया माँगो उसकी लल्लो चप्पो करो क्या रखा है इन उत्सव फुत्सवों में, किन्तु फिर धुनाबुनी उस आदमी से कहें तो पाँच हजार रुपये तो वह दे ही सकता है, अमुक तो मुझमें बड़ी श्रद्धा रखता है, वह मेरी बात टालेगा नहीं। "फिर सोचा—अजी भाड़ में गया उत्सव। कौन प्रपञ्च में पड़े अपना एकांत में बैठकर भजन करें कौन खटपट में पड़े।"

किन्तु संकल्प तो हो गया, बार बार टालने से वह और पुष्ट होता है, संयोग से कोई आ गया, महाराज इतने रुपये किसी धर्म काम में लगा दो।" कार्य आरम्भ हो गया। संकल्प पूरा हो गया, तो उससे बड़ा करने की वासना तत्क्षण पुनः उत्पन्न हो जाती है, कम हुआ तो ग्लानि होती है, फिर कोई उपाय करके उससे बड़ा बड़ा करने की बात सोचते हैं, इसी प्रकार अच्छी बुरी सभी वासनायें उठती हैं, कभी बुरी वासनायें कुछ काल को

दब जाती है, अवसर आने पर वे फिर बड़े वेग से प्रकट होती हैं, प्राणी इन्हीं वासनाओंकी डोरियोंसे जकड़ा हुआ अवश होकर कार्य करता ही रहता है, शरीर जीर्ण हो जाता है, वासना जीर्ण नहीं होती वे और अधिकाधिक बढ़ती ही जाती हैं, बढ़ती ही जाती हैं।

मेरे मन में भी पुस्तक लिखने की—ख्यातिलाभ करने की—बाल्य-काल से वासना थी, यह अनेक कारणों से अव्यक्त रही। हठ-पूर्वक—अहंकार के वशीभूत होकर उसे रोके रहा। रोके भी क्या रहा—मुझमें इतना सामर्थ्य कहाँ कि उसे रोक सकूँ, कहना चाहिये उसके लिये उपयुक्त काल नहीं आया था, उसके प्रकट होने का अभी अवसर नहीं था। सब काम तो समय से ही होता है, वसंत में ही पतझड़ होकर नवीन पत्ते निकलते हैं, पूर्णिमा को ही चन्द्रमा पूर्ण होता है, तुम लाख प्रयत्न करो, अष्टमी को चन्द्रमा पूर्ण हो जाय, यह असंभव है, अमावस्या को चन्द्र दर्शन चाहें तो नहीं हो सकते।

"चैतन्य चरितावली" लिखने के अनन्तर मैंने सोचा अब लिखने की वासना पूरी हो गयी। जिस लेखनी से उसे लिखा था उसे भी गीताप्रेस भेज दिया, मुझे क्या पता यह वासना इतना वृहद्रूप रख लेगी। आरम्भ में ५०। ६० खण्ड लिखने का संकल्प था, किन्तु ज्यों ज्यों लिखता गया, त्यों त्यों ऐसा लगता गया मानों श्रीमद्भागवत पर अभी कुछ लिखा ही नहीं। स्वयं तो लिखनेकी शक्ति नहीं कोई लिखाता गया लिखते गये। कथा भाग तो इन ६० खण्डों में पूरा हुआ। एक संकल्प की पूर्ति हुई। यह भी भगवत् कृपा ही हुई कि ये ६० खण्ड छप भी गये। अर्थसाध्य श्रमसाध्य प्रयत्नसाध्य होने से पहिले यह काम हिमालय से भारी और ऊँचा दीखता था। पुस्तक लिखना उतना कठिन नहीं, किन्तु छपाने का काम कठिन है और फिर ऐसे व्यक्ति के लिये जो

सभी साधनों से सर्वथा शून्य हो। किन्तु प्रभु सर्व समर्थ हैं वे जो चाहें सो करा सकते हैं, अपने जीवन में ही ये खंड छप गये। वह भी एक बार नहीं कोई कोई खण्ड तो चार चार बार छप गये कोई तीन बार और कोई दो दो बार। यह सत्य है कि इसका जितना प्रचार होना चाहिये था, उतना नहीं हुआ किन्तु प्रचार के लिये प्रयत्न ही कहाँ किया गया, फिर यह काम मेरा है भी नहीं, मुझसे हो भी नहीं सकता। यही बहुत है मेरे सामने छप गयी। अब उत्पत्स्यते कोऽपि समान धर्म, कालोह्ययं निरवधि विपुला च पृथिवीः" भगवान् ने इसे प्रचार के योग्य समझा तो किसी ऐसे माई के लाल को भगवान् भेज देंगे, जो आनन फानन में इसका प्रचार कर देगा।

अब आजकल लिखने का कार्य बन्द है, आजकल गौहत्या निवारण के लिये अटक से कटक तक और हिमालय से कन्या कुमारी तक दौरा हो रहा है। यह भी एक वासना है, नहीं तो भला मैं किस खेत का बथुआ हूँ, मेरे करनेसे क्या गो हत्या बन्द हो सकती है। गौओं से जितना अधिक प्रेम गोपाल गोविन्द करते हैं उस प्रेम महा सागर की एक बिन्दु का मैं तो कोटिवाँ भाग भी प्रेम नहीं कर सकता। गौओं की विपत्ति क्या उनसे अविदित हैं, क्या वे उनकी दुःख की बात को जानते नहीं, या उनमे बन्द करने की सामर्थ्य नहीं। वे जानते भी हैं और उनमे सम्पूर्ण सामर्थ्य है, वे अखण्ड ब्रह्माण्डों को निमिष में बना बिगाड सकते हैं, फिर भी गौओं के गले पर छुरी चलती हैं, उनका निर्दयता के साथ वध होता है, इसमें कुछ हेतु होगा। जब वे चाहेंगे तभी बात की बात में गोवध बन्द हो जायगा।

मेरी सम्पूर्ण देश में वायुयान धूम्रशकटयान और भूयान से भ्रमण करने की, हार माला पहिनने की जय जयकार कराने की, नेता बनने की वासना रही होगी, इसी कारण से वे इसे पूरी करा

रहे होंगे। हम तो उनके यन्त्र हैं, उससे वे लेख लिखा लें, पुस्तक लिखा लें, कीर्तन करा लें, व्याख्यान दिला लें, भ्रमण करा लें, नेतागीरी करा लें, सभी उनके हाथ में है, उनके संकल्प में बोल कौन सकता है, ननुनच करने को सामर्थ्य किसमें है। जैसा वे कराते हैं, इच्छा अनिच्छा पूर्वक करना ही पड़ेगा। आजकल लेखन कार्य बन्द है, भ्रमण चालू है, यह आधी भूमिका बम्बई से कलकत्ता आते समय वायुयान में ही लिखी है, अब कलकत्ते से दूर भगवती भागीरथी के तट पर बाली नामक स्थान में बांगड़जी के बगीचे में बैठकर इस भूमिका को पूरी करते हैं।

गोहत्या आंदोलन में यदि इस शरीर का भगवान् ने बलिदान कर दिया, तो इस अनित्य तुच्छ और नाशवान् शरीर का सदुपयोग हो जायगा, पाठक इन साठ खण्डों को ही पढ़कर सन्तोष कर लें। और किसी प्रकार यह शरीर बच गया और प्रभु प्रेरणा हुई तो आगे के खण्ड फिर आते रहेंगे।

अब तक लोगों को बहुत शिकायतें आई "भागवती कथा" के आगे के खण्ड क्यों नहीं आये, मैं पिछले किसी खंड में कह भी चुका हूँ, हमारा दिवाला निकल गया था, किन्तु उस दिवाले को हमने घोषित अभी तक नहीं किया। अब उन श्यामसुन्दर की कृपा है, कि दिवालिया भी हुए तो किसी का मारकर नहीं हुए। साठ खंड तक की ही दक्षिणा ली थी, अब यह साठवाँ खण्ड पाठकों की सेवा में पहुँच रहा है लेना पावना बेबाक, पाठक लिख दें कि चुकता भर पाया। अब आगे फिर से व्यापार का लेन देन आरम्भ होगा। देर सवेर हो ही जाती है, फिर भी पाठकों से हम अपने अपराधों के लिये बार बार करबद्ध प्रार्थना करते हैं, कि वे हमें हृदय से क्षमा करें, हमने बहुत लम्बी प्रतीक्षा कराई। किन्तु प्रतीक्षा में भी एक मीठा मीठा आनन्द ही होता है, जैसे गुदगुदी से हम भागते हैं, करने वाले को मना करते हैं, उससे पिंड छुड़ाना

चाहते हैं फिर भी उसमें सुख ही होता है, जीवन में प्रतीक्षा ही तो सार है, जिसे किसी की प्रतीक्षा नहीं, किसी के आने की आशा नहीं वह इतने बड़े लम्बे जीवन के भार को कैसे ढो सकता है, जीवन प्रतीक्षा ही में तो कट रहा है पुत्र प्रतीक्षा करता है, बाप मरे तो मैं घर का स्वामी बनूँ, लड़की प्रतीक्षा करती है, विवाह हो तो मैं बहू बनूँ, बहू प्रतीक्षा कर रही है, पुत्र हो तो मैं माता बनूँ माँ प्रतीक्षा कर रही है मेरे मुनमुना से छगनमगन का विवाह हो बहुआ सी बहू आवे तो सास बनूँ। श्रमिक प्रतीक्षा कर रहे हैं, कि साम्यवाद आवे तो हम स्वामी बनें। शासक प्रतीक्षा कर रहे हैं नया चुनाव हो तो हम पुनः पद पर प्रतिष्ठित हों। सारांश यह कि संसार प्रतीक्षा के ही आधार पर टिक रहा है। मेरी 'भागवती कथा' के पाठकों से भी प्रार्थना है, कि वे निराश न हों, प्रतीक्षा करें, कि हमारे ब्रह्मचारी जी जीवित रहें तो हमें आगे भी पढ़ने को कुछ मिले। मेरी लिखने की वासना ऐसा प्रतीत होता है, अभी पूरी नहीं हुई। कब पूरी करोगे मेरे प्रभो! कब इन व्यापारों से मुक्त करोगे? कब एकमात्र अपने ही चरणों की शरण में लोगे? कब अहर्निशि, अखंड ध्यान मनन आराधन कराओगे? कब निर्वासना बनाओगे। कब पाप पुण्यों के पचड़े सेपृथक् करोगे? मेरे स्वामी! कबतक सफेद कागदों को कारे कराने के काम में लगाये रहोगे? जो तुम्हें कराना होगा, कराओगे ही, मेरी बात तो तुम सुनने ही क्यों लगे। अच्छा, इतनी तो मान जाओ तुम्हारा स्मरण चिंतन सदा बना रहे, इन सब कामों को करते हुए भी कर्ता तुम्हें ही समझूँ, अपने को कर्ता न

अनुभव करके आपका यन्त्र ही मानूँ, इतना तो स्वीकार कर ही लो। करलोगे न मेरे स्वामी !

पाठकों से पुनः पुनः प्रार्थना है, वे स्मरण रखें और भगवान् से मेरे लिये प्रार्थना करें। जीवों के जन्मजन्मान्तरों के सम्बन्ध होते हैं संस्कार होते हैं, आजकल मैं पूरे देश में भ्रमण करता हूँ, ऐसे ऐसे स्थानों पर जाना होता है, जहाँ की कभी कल्पना ही नहीं थी, वहाँ ऐसे ऐसे भक्त मिलते हैं, जिन्हें देखकर रोना आता है कोई कहता है आपकी हमने 'चैतन्यचरितावली' पढ़ी थी तभी से इच्छा थी आपको देखें, मैं अमुक कारणसे जानेमें असमर्थ था सोचे बैठा था इस जीवन में आपके दर्शन काहे को होंगे, आपने घर बैठे दर्शन दिये, कोई कहते हैं हमने अमुक पुस्तक पढ़ी थी तभी से प्रबल इच्छा थी। प्रतीत होता है उन बड़भागी महानुभावों की इच्छा और मेरी वासना दोनों ही मिलकर यह करा रही है। मान भी होता है अपमान भी होता है। बहुत से लोग समझते होंगे इनका सर्वत्र धूमधाम से स्वागत होता है, वायुयान में दौड़ते हैं इतने हार पहिनाये जाते हैं जय जयकार होता है, सर्वत्र मान ही पाते होंगे। किन्तु बात ऐसी नहीं है, कहीं कहीं ऐसा अपमान सहना पड़ता है, कि हमारे सामने पांडव, नल, भगवान् राम आदि के अपमान के ज्वलन्त उदाहरण न हों तो हमें आत्महत्या करने को बाध्य होना पड़े। किन्तु मन को समझा लेते हैं कि जब इतने इतने प्रातः स्मरणीय महापुरुषों का अपमान हुआ तो प्रभुदत्तजी तुम किस खेतकी मूली हो। यह तो सनातन प्रथा है, लाभ हानि सुख दुख मान अपमान का तो जोड़ा ही है। अब भगवान् क्या कराते

हैं किस स्थिति में रखते हैं, इसे तो काल ही बतावेगा और काल कृष्ण के अतिरिक्त दूसरा कोई है नहीं। भगवान् ने स्वयं ही कहा है "कालोऽस्मि" हे काल स्वरूप वाले! तुम्हारे लाल कमल के सदृश अमल चरणों में पुनः पुनः प्रणाम है। नाथ! हमें अपना लो, अपना बना लो यही आपके पादारविन्दों में प्रार्थना है।

बांगड़जी का बगीचा
कलकत्ता

आपका
प्रभुदत्त

चैत्र शु० १४, २०११ वि०

वेद और उसकी शाखायें

(१३५८)

पैलादिभिर्व्यासशिष्यैर्वेदाचार्यैर्महात्मभिः ।
वेदाश्च कतिधा व्यस्ता एतत् सौम्याभिधेहि नः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ६ अ० ३६ श्लो०)

छप्पय

शौनक पूछें—सूत ! वेद के कै आचारज।
कैसे करयो विभाग पैल आदिक मुनि :आरज ॥
सूत कहें—अवतार व्यास धरि भूपै आये।
एक वेद के चारि करे मुनि चारि बुलाये।
दयौ वेद ऋक् पैलकूँ, वैशम्पायन यजु दयौ।
जैमिनि मुनि कूँ सामश्रुति, मुनि सुमन्तु चौथो लह्यो ॥

जैसे मूल एक होती है, उस मूल में से शाखायें और शाखाओं में से भी प्रशाखायें निकलती हैं, इसी प्रकार आदि में एकाक्षर वेद (प्रणव) होता है, उसी का विस्तार होते होते अनन्त

---

* शौनक जी सूतजी से पूछ रहे हैं—"हे सौम्य ! जितने ये व्यासजी के शिष्य पैलादि वेदाचार्य हैं, उन्होंने वेदों का विभाग किस प्रकार किया, इसे आप हमसे कहें।"

वेद बन जाता है। उन सब ऋचाओं को एक व्यक्ति धारण करने में असमर्थ होता है, अतः समय समय पर भगवान् ही व्यास बनकर अपने ज्ञान रूप वेद की संहितायें बना देते हैं, उन संहिताओं को भी जब धारण करने की शक्ति नहीं रहती, तब शाखाओं का निर्माण होता है, ऋषिगण अपनी अपनी शाखायें बाँट लेते हैं और अपने वंशजों को उन शाखाओं को पढ़ाते हैं। इसीलिये जहाँ किसी द्विज का वेद, गोत्र तथा प्रवर पूछा जाता है, वहाँ उसकी शाखा भी पूछी जाती है आपकी कौन सी शाखा है। भिन्न भिन्न वेदों की भिन्न भिन्न शाखायें हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझसे वेदों की शाखाओं का प्रश्न किया। अब मैं सर्व प्रथम वेदों का प्राकट्य वर्णन करके तब वेद की शाखाओं का वर्णन करूँगा।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ सूतजी! पहिले आप हमें यही बतावें कि वेदों का प्रादुर्भाव कैसे हुआ?"

सूतजी बोले—"भगवन्! जिसकी भी उत्पत्ति बतायी जायगी, सर्व प्रथम कमल नाभ भगवान् वासुदेव का वर्णन किया जायगा, क्योंकि सब के मूल पुरुष ये ही चराचर जीव, पंचभूत, ज्ञान विज्ञान जो भी कुछ संसार में है, सब पद्मनाभ भगवान् विष्णु से ही है। इसीलिये बारम्बार कहा जाता है 'सर्वं विष्णुमयं जगत्।"

हाँ तो जब उन मायेश भगवान् की इच्छा सृष्टि करने की हुई, तो उनकी नाभि से एक कमल नाल निकला उस कमल पर चतुर्मुख ब्रह्मा बैठे हुये थे। परमेष्ठी ब्रह्मा उस कमल पर बैठकर सोचने लगे—"अब क्या करना चाहिये।" ब्रह्मा जी का यह जानने का संकल्प ही वेद का अङ्कुर है। ब्रह्माजी के मन में 'क्या करना चाहिये' ऐसी जिज्ञासा होते ही उनके हृदयाकाश में एक शब्द हुआ। ब्रह्माजी ने ध्यान लगाकर उस शब्द को सुना, तो

उसमें एक ध्वन्यात्मक वर्ण सा सुनायी दिया। ब्रह्माजी के हृदयाकाश में जो शब्द सुनायी दिया वह नया उत्पन्न नहीं था। वह तो अनादि, अनन्त और सर्वव्यापक था। केवल एकाग्र चित्त होने से उन्होंने उसे अनुभव किया, ग्रहण किया। आज भी कोई अपने दोनों कानों को बलपूर्वक बन्द करले तो उसे सायँ सायँ ऐसा अव्यक्त शब्द सुनायी देगा। ब्रह्मा जी ने उसी शब्द को सर्व प्रथम सुना। उसका नाम अनाहद नाद है। अनाहद की उपासना करने वाले योगीजन अपने अन्तःकरण के द्रव्य, क्रिया और करक रूप मल को इसी के द्वारा नष्ट करके परमपद को प्राप्त करते हैं, जन्म मरण के बन्धन से सदा के लिये विमुक्त बनकर अपुनभव रूप मोक्ष सुख का अनुभव करते हैं।

ब्रह्माजी ने ध्यान पूर्वक इस नाद में अपनी चित्त वृत्ति को लगाया। अत्यन्त सूक्ष्म वृत्ति से मन लगाने पर उसमें तीन मात्राओं वाला एक शब्द स्पष्ट सुनायी दिया। उसी को मनीषी प्रणव या ओंकार कहते हैं।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! ओंकार की उत्पत्ति हुई कैसे ?"

सूतजी बोले—"महाराज! ओंकार की उत्पत्ति के सम्बन्ध में कोई कुछ कह नहीं सकता। उसकी उत्पत्ति बतायी नहीं जा सकती वह अव्यक्त प्रभव है और स्वराट है। अर्थात् किसी के द्वारा प्रकाशित न होकर स्वयं प्रकाश रूप है। वह ब्रह्म का वाचक है अर्थात् परमात्मा भगवान् ब्रह्म का वह बोध कराने वाला है। परमात्मा का वह लिङ्ग अर्थात वाचक है।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! परमात्मा किसे कहते हैं ?"

यह सुनकर सूत जी ठठाका मार कर हँस पड़े और बोले—"ब्रह्मन्! कभी कभी तो आप सर्वथा बच्चों का सा प्रश्न कर देते हैं। तो मैं जानता हूँ, एक ही प्रश्न का आप बार बार

लोक कल्याण के निमित्त करते हैं, जिससे सर्व साधारण विषय को भली भाँति समझ जायँ। अच्छा आप यह बतावें, कि आप शब्द किसके द्वारा सुनते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"यह तो प्रत्यक्ष ही है, श्रवणेन्द्रिय द्वारा शब्द सुने जाते हैं।"

सूतजी ने पूछा—"अच्छा, श्रवणेन्द्रिय द्वारा ही यदि शब्द सुना जाता है, तो सोते समय शब्द क्यों नहीं सुनायी देता?"

शौनक जी ने कहा—"उस समय श्रवण शक्ति लीन हो जाती है।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! श्रवण शक्ति यदि लीन हो जाती है, तब तो फिर कभी भी न सुनना चाहिये, किन्तु अधिक ऊँचे से पुकारने पर सोता हुआ आदमी भी सुनता है, क्योंकि श्रवणेन्द्रिय भले ही लीन हो जाय, गाढ़ निद्रा में मन भी लीन हो जाय, किन्तु जो इस शरीर रूप क्षेत्र का क्षेत्रज्ञ है जिसमें जाकर ये लीन होती हैं, वह तो जागता रहता है। कानों को कसकर वन्द कर लो, अन्य शब्द सुनायी न देंगे, किन्तु यह अव्यक्त ओंकार तो सुनायी देता ही रहेगा, जो इस ओंकार को सुनता है, सुषुप्ति अवस्था में समस्त इन्द्रियों के न रहने पर भी जो उनके अभाव को ग्रहण करता है, वही परमात्मा है। परमात्मा वाच्य है और ओङ्कार उसका वाचक है। ओङ्कार की हृदयाकाश में आत्मा ही से अभिव्यक्ति होती है, इसी के द्वारा वैखरी वाणी अभिव्यञ्जित होती है। यह ओङ्कार त्रिवर्णात्मक है।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! ओंकार में तीन वर्ण कौन कौन से हैं और तीन वर्णों का भाव क्या है?"

सूतजी बोले—"महाराज यह सम्पूर्ण सृष्टि ही त्रिगुणात्मक है, तीनों गुणों के सहारे ही यह प्रपञ्च चल रहा है। ओंकार में सर्व प्रथम अकार है, फिर उकार है और तदनन्तर मकार है।

अ, उ, म् जब ये तीन वर्ण मिल जाते हैं तभी ओंकार बन जाता है। इनमें अकार सत्वगुण, उकार को रजोगुण और मकार को तमोगुण समझो। अकार वासुदेव हैं, उकार कमलासन ब्रह्मा हैं और मकार साक्षात् रुद्र हैं। अकार ऋग्वेद है, उकार यजुर्वेद है और मकार सामवेद है। अकार भूलोक है, उकार भुवर्लोक है और मकार स्वर्लोक है। अकार जाग्रत अवस्था है, उकार स्वप्नावस्था है और मकार सुषुप्ति अवस्था है। कहाँ तक गिनावें जितने गुण, नाम, वृत्ति अर्थ तथा जो भी कुछ हैं सब त्रिगुणात्मक है और इन सबका त्रिवर्णात्मक ओंकार में ही समावेश हो जाता है। इसी ओंकार से ऊष्म, स्वर, स्पर्श, ह्रस्व तथा दीर्घ सभी वर्णों की उत्पत्ति हुई। स्वर, व्यञ्जन मात्रा जितने भी वर्ण समूह हैं सबके जनक ओंकार ही हैं।

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! अक्षरों की कौन कौन संज्ञायें हैं?"

सूतजी बोले—"भगवन्! य, र, ल, व इनको अन्तस्थ कहते हैं। श, ष, स, ह ऊष्म कहलाते हैं और अ आ इ ई उ ऊ ऋ ॠ लृ ॡ ए ऐ ओ औ अं अः ये सोलह स्वर कहलाते हैं। क ख ग घ ङ, च छ ज झ ञ, ट ठ ड ढ ण, त थ द ध न, प फ ब भ म इनकी स्पर्श संज्ञा है। स्वरों में ह्रस्व और दीर्घ दो भेद होते हैं। ह्रस्व से दीर्घ उच्चारण करने में दुगुना समय लगता है। स्वर और व्यञ्जन सबको मिलाकर अक्षर समाम्नाय या वर्ण समूह कहते हैं। इन अक्षरों द्वारा ही कमल योनि ब्रह्माजी ने यज्ञ की सब वस्तुओं की संज्ञा की। अपने चारों मुखों से होता, अध्वर्यु, उद्गाता और ब्रह्मा चारों ऋत्विजों के कर्मों को बताने के लिये सब कर्मों का विधि विधान बताया। मरीचि आदि अपने पुत्र ब्रह्मर्षियों को व्याहृति ओंकार सहित चारों वेदों को पढ़ाया। ये ब्रह्मर्षि चारों वेदों के अध्ययन में परम प्रवीण थे। ब्रह्मा जी के द्वारा वेदों को पढ़ लेने

पर उन धर्मोपदेष्टा महामुनिश्वरों ने उन वेदों को अपने पुत्र तथा शिष्यों को सविधि सिखाया। फिर उन्होंने अपने पुत्र तथा शिष्यों को पढ़ाया। इस प्रकार परम्परा से वेदों का प्रचार हुआ। ये वेदों का अध्ययन करने वाले ऋषि महर्षि सब सदाचारी थे। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करते हुए ये वेदों का अध्ययन करते। समाधि में इन्हें मंत्रों का बोध होता गया। मंत्र द्रष्टा ऋषियों ने इस प्रकार सत्ययुग, त्रेता और द्वापर में वेदों का बहुत विस्तार किया।

शौनक जी ने पूछा--"सूतजी! वेदों का विभाग करने की आवश्यकता क्यों प्रतीत हुई?"

सूतजी बोले—"महाराज! वेदों का विस्तार तो बहुत अधिक हो गया, क्योंकि ज्ञान का कोई पार नहीं पा सकता, वह अपार है। वेद इतने बढ़ गये कि सबको धारण करने में लोग असमर्थ हो गये। काल क्रम से पहिले जो लाखों वर्ष की दीर्घायु होती थी वह भी घट गयी। लोग अल्पायु हो गये। उनकी धारणा शक्ति भी न्यून हो गयी। वीर्य पराक्रम कम होने से सब अल्पवीर्य होने लगे। महर्षियों ने जब देखा लोग मन्द मति, अल्पायु, अल्पवीर्य हो गये हैं, तो उन्होंने हृदयस्थित सर्वान्तर्यामी सर्वेश्वर की प्रेरणा से वेदों के पृथक पृथक विभाग कर दिये। जो ऋषि वेदों का विभाग या व्यास करते हैं, वे वेदव्यास कहलाते हैं। प्रत्येक द्वापर के अन्त में वेद व्यास प्रकट होकर इस कार्य को करते हैं।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! व्यास द्वापर के ही अन्त में क्यों होते हैं?"

सूत जी बोले—"महाराज! बात यह है न कि द्वापर तक तो लोगों की धारणा शक्ति अच्छी रहती है। उस समय तो वेदों के व्यास की आवश्यकता ही अनुभव नहीं होती। आवश्यकता ही आविष्कार की जननी होती है। जब सम्पूर्ण वेद को लोग धारण करने में समर्थ नहीं होते तो वेदों के विभाग किये जाते हैं।

पुराण का संग्रह करके उनको भी पृथक पृथक भागों में विभक्त किया जाता है। इसीलिये ऋषियों के कोई व्यास होते हैं। इस द्वापर के अन्त में तो साक्षात् भगवान ने ही अवतार लेकर वेदों का व्यास और पुराणों का विभाग किया। जब इस मन्वन्तर में ब्रह्मादि देवों ने शङ्कर आदि लोकपालों ने जब परात्पर प्रभु से प्रार्थना की, तब लोकभावन भगवान् धर्म की रक्षा के निमित्त, अपनी अंशांश कला से भगवती सत्यवती में महर्षि पराशर के गर्भ से उत्पन्न हुये उन्हीं के अंशावतार सत्यवती नन्दन भगवान् पाराशर्य ने एक वेद की चार संहितायें बनायीं उन्होंने एक वेद के चार भाग कर दिये।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी! क्या ये चारों विभाग सर्वथा पृथक हैं?"

सूतजी बोले—"नहीं महाराज! पृथक काहे को हैं, एक ही हैं। जैसे किसी मणिमाला में नाना जाति की मणियाँ हैं। कहीं लाल है तो कहीं नीली है, कहीं स्फटिक है तो फिर नीली है फिर लाल है। जिस प्रकार बुद्धि मान पिरोने वाला सब मणियों को निकालकर फिर से लाल लाल को एक ओर कर देता है, नीली नीली को दूसरी ओर। यद्यपि वह अपनी ओर से उसमें कोई मणि नहीं मिलाता, उन्हीं असम्बद्ध मणियों को यथा क्रम सुन्दरता से पृथक् पृथक् पिरो देता है। उसी प्रकार भगवान् व्यास ने वैदिक मन्त्र समूह में से भिन्न भिन्न प्रकरणों द्वारा ऋगादि में मन्त्रों की राशि पृथक कर दी, उसका नाम ऋगवेद संहिता रख दिया। यज्ञ करने के मन्त्रों को पृथक् कर दिया उसका नाम यजुर्वेद हुआ। गाने के मन्त्रों को पृथक् कर दिया वही सामवेद कहलाया और जितने मारण, मोहन उच्चाटन आदि के अभिचार मन्त्र थे उन्हें पृथक् करके उसकी अथर्व वेद संहिता बना दी।"

चारों वेदों को पढ़ने के लिये उन्होंने अपने चार शिष्यों को बुलाया। उन चारों में से महामुनि पैल को बहुत-सी ऋचाओं वाली बह्वृच संहिता अर्थात् ऋग्वेद संहिता दी। दूसरे महामुनि वैशम्पायन को यजुर्वेद संहिता। जिन छन्दों का गायन होता था ऐसी छन्दों वाली सामश्रुतियों की छन्दोगनामक संहिता जैमिनी मुनि को पढ़ायी और घोर स्वभाव वाली अत्यंत दारुण सुमन्तु मुनि को अथर्वाङ्गिरसी संहिता सुनायी। इस प्रकार महामुनि व्यासजी के चारों महा बुद्धिमान शिष्यों ने चारों संहिताओं को धारण किया। इन चारों ने भी उनकी कुछ शाखायें बनाकर अपने शिष्यों को पढ़ायीं।

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इन पैल, वैशम्पायन, जैमिनी और सुमन्तु नामक व्यास शिष्यों ने किन किन मुनियों को ये संहितायें पढ़ायीं ?"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन्! ज्यों ज्यों लोगों की स्मरण शक्ति घटती गयी, त्यों त्यों वेदों की अधिकाधिक शाखायें बढ़ती गयीं। ऋग्वेद के आचार्य पैल ने अपनी संहिता को दो भागों में विभक्त करके इन्द्र प्रामिति और वाष्कल नामक दो मुनियों को दी। इनमें से आत्मज्ञानी महामुनि इन्द्र प्रामित ने अपनी संहिता परम बुद्धिमान् महामुनि माण्डूकेय मुनि को पढ़ायी माण्डूकेय मुनि ने अपने शिष्य देवमित्र को पढ़ायी और देवमित्र ने उसे महर्षि सौभरि को सुनायी।"

शौनकजी ने पूछा—"सुतजी! ये सौभरि आदि मुनि तो सत्ययुग के हैं, द्वापर के अन्त में आकर इन्होंने ऋग्वेद की शाखाओं का क्यों अध्ययन किया ?"

सूतजी ने कहा—"क्यों महाराज! इसमें हानि ही क्या है ? शाखाओं के कर्ता तो ऋषिगण ही होंगे। वे ही अपने शिष्य तथा पुत्रों को शाखाओं के अध्ययन का आदेश उपदेश देंगे।

ये मुनि गण तो कल्पजीवी और कोई तो ब्रह्माजी की आयु वाले होते हैं। वेदों का प्रचार प्रसार ही इनका धर्म है। फिर महाराज एक नाम के बहुत से ऋषि होते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! आपका कथन सत्य है, हम भी तो सत्ययुग के हैं आपसे पुराण श्रवण कर रहे हैं। अच्छा पैल मुनि के दूसरे शिष्य बाष्कल की शिष्य परम्परा और सुनावें।"

सूतजी बोले—"महाराज! पैल मुनि के दूसरे शिष्य बाष्कल ने अपनी संहिता के चार विभाग किये और उन्हें अपने शिष्य. बोध्य, याज्ञवल्क्य, पराशर और अग्निमित्र इनको पढ़ाया। फिर इन चारों ने भी अपने शिष्य प्रशिष्यों को सुनाया। ये सभी ऋग्वेदीय ऋषिगण बह्वृच कहलाये। महामुनि इन्द्र-प्रमिती की परम्परा में जो माण्डूकेय मुनि हुए उन्होंने अपने पुत्र शाकल्य को पढ़ायी शाकल्य मुनि के वात्स्य, मुद्गल, शालीन, गोखल्य और शिशिर ये पाँच शिष्य हुए। उन्होंने अपनी संहिता के पॉच भाग करके इन पाँचों को पढ़ाया। महामुनि शाकल्य के एक जातूकर्ण्य शिष्य थे उन्होंने अपनी संहिता को तीन भागों में विभक्त किया। उन्हें निरुक्त के सहित (व्याख्यान रूप में) अपने बलाक, पैज और वैताल इन तीन शिष्यों को दिया और निरुक्त को विरज मुनि को दिया। पैल मुनि के चार शिष्यों के अतिरिक्त एक बाल्कलि नामक पुत्र भी थे, उन्होंने एक बालाखिल्य नामक शाखा रची। उसके भी उन्होने तीन विभाग

किये और अपने वालायनि, भज्य और कासार इन तीन शिष्यों को पढ़ाया।"

इस प्रकार ऋग्वेद की बहुत सी शाखायें बन गयीं जिन ऋषियों ने ऋग्वेद की शाखाओं को धारण किया, वे सब बह्‌वृच कहलाये। पीछे इन ऋषि की वंश परम्परा में ये शाखायें प्रधान रूप से पढ़ायी जाने लगीं। मनुष्य इस कलियुग में इन सब शाखाओं को कैसे पढ़ सकता है। एक शाखा का पढ़ना ही कठिन हो जाता है। जो वेदों को या वेद की किसी शाखा को पढ़ते हैं, उनका तो परलोक बनता ही है, किन्तु जो पढ़ न सकें केवल इन वेदों की शाखाओं के विस्तार को सुन ही लें, तो इनके श्रवण-मात्र से ही उनके सब पाप नष्ट हो जाते हैं, वे परम पुण्य के भागी बनते हैं। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में ऋग्वेद की कुछ शाखाओं का वर्णन किया। अब मैं यजुर्वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में कुछ कहूँगा। यह तो ऋग्वेदीय पैल मुनि की परम्परा हुई अब यजुर्वेदी महामुनि वैशम्पायन की परम्परा कहूँगा। यजुर्वेद के दो विभाग हो गये शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद। वैशम्पायन और उनके शिष्य याज्ञवल्क्य में कुछ झगड़ा हो गया इसी विवाद के कारण यजुर्वेद की वाजसनेयी शाखा सूर्यदेव द्वारा प्राप्त हुई।"

इस पर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! गुरु शिष्य में झगड़ा क्यों हुआ और वाजसनेयी शाखा कैसे बनी कृपया हमें इसका कारण बताकर तब सामवेद की शाखाओं को कहें।"

सूतजी बोले—"महाराज! इस विषय में एक बड़ी रोचक

कहानी है, उस कहानी से ही सब रहस्य खुल जायगा। उसे मैं आपसे कहता हूँ, आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

पाइ सहिता सकल मुनिनि पुनि शिष्य बनाये।
करि करि शाखा पृथक् सबनि कूँ मन्त्र पढ़ाये॥
शिष्यनि के हू शिष्य भये विस्तार भयो अति।
शाखा सबकी पृथक् भईं तिनिकी तिनि में रति॥
वैशम्पायन शिष्य इक, याज्ञवल्क्य अति तेजयुत।
यजुर्वेद में अति निपुण, देवरात को सौम्य सुत॥

—:o:—

यजुर्वेद की दो शाखा होने की कथा

(१३५९)

याज्ञवल्क्यस्ततो ब्रह्मंश्छन्दांस्यधिगवेषयन् ।
गुरो रविद्यमानानि सूप तस्थेऽर्कमीश्वरम् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ६ अ० ६६ श्लो०)

छप्पय

अपर शिष्य इक दिवस करें व्रत गुरुहित दुष्कर ।
याज्ञवल्क्य ने कह्यो—करें का यह व्रत गुरु वर ॥
हौं तव हित व्रत करूँ अल्प बीरज यह बालक ।
भये कुपित गुरुदेव कहें—तू द्विजकुल घालक ॥
मेरी विद्या त्यागि दे, तू अब मेरो शिष्य नहिँ ।
उगिल दई विद्या सकल, कठिन वचन नहिँ गये सहि ॥

वाद विवाद लड़ाई-झगड़े का एक मात्र कारण है अहंमान्यता । जब दोनों ओर दोऊ पक्ष के लोग अपने को कुछ समझने लगते हैं, तब परस्पर में कलह होती है। अहंमान्यता एक

* श्री सूत जी कह रहे हैं—"ब्रह्मन् ! जब महा मुनि वैशम्पायन और उनके शिष्य याज्ञवल्क्य में कहा सुनी हो गयी, तब याज्ञवल्क्य ने ऐसी श्रुतियों के प्राप्त करने के संकल्प से-जो उनके गुरु पर भी न हों—भगवान् सूर्य देव की उपासना आरम्भ की ।"

की ओर हो तो प्रायः कलह नहीं होती मत भेद हो जाता है। यदि अहंमान्यता उपासना में परिणत हो जाय, तो उसका फल सुन्दर होता है। क्यों कि भगवान् में जो भी भाव लग जायगा उसी का परिणाम सुखकर होगा। लोग अभिमान के वशीभूत होकर एक दूसरे का अपकार करने को उद्यत हो जाते हैं यह उचित नहीं। अहंकार आ भी जाय तो उसे पूरे वेग से परमात्मा की ओर लगा दे। भगवान् अशुद्ध भाव को भी शुद्ध बना लेते हैं, बिगड़ी को भी बना लेते हैं।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् व्यास ने यजुर्वेद संहिता को अपने प्रिय शिष्य वैशम्पायन मुनि को पढ़ायी। उन वैशम्पायन मुनि ने यजुर्वेद को पढ़ाने के लिये बहुत से शिष्य अपने यहाँ रखे। सब बड़े मनोयोग से आचार्य प्रवर महर्षि वैशम्पायन से यजुर्वेद की श्रुतियों को पढ़ने लगे।

दूसरे दूसरे युगों में तो एक एक व्यक्ति ही इतने शक्तिशाली होते थे, कि उन्हें किसी की सहायता अथवा संगठन का आवश्यकता ही नहीं रहती थी अपनी अपनी शक्ति के ही सहारे सब कुछ कर लेते थे। ज्यों ज्यों मनुष्यों की आत्मिक शक्ति का ह्रास होता जाता है, त्यों त्यों उसे संगठन और दूसरों के मत संग्रह करने की अपेक्षा प्रतीत होने लगती है। कलियुग में आकर तो ऐसा हो जायगा, कि मनुष्यों में पाप के कारण स्वतन्त्र शक्ति रहेगी ही नहीं वंश परम्परागत समस्त अधिकार छिन जायँगे। कोई राजा रहेगा ही नहीं। कुछ वर्षों को अल्पमति अधर्मी लोग चुन कर किसी को प्रधान बना देंगे। फिर उसे उच्चासन से उतार देंगे। वैयक्तिक शक्ति जब क्षीण होती है, तभी सब संघ के नियम और विधानों के अधीन हो जाते हैं। द्वापर के अन्त में जब लोग मनमानी करने लगे। लोगों की अधर्म में अधिक प्रवृत्ति हुई, तो सभी ऋषि मुनियों ने मिल कर सुमेरु पर एक अखिल भारतवर्षीय

ऋषि-मुनि समिति बनायी। सभी वेदज्ञ ऋषियों को उसका सदस्य बनाया। पूर्णिमा के दिन उसका एक मासिक अधिवेशन रख दिया। उस अधिवेशन में सभी सदस्य मुनियों का आना अनिवार्य रखा गया। उसमें ऐसा नियम बना दिया कि जो इस अधिवेशन में न आवेगा उसे ब्रह्महत्या का पाप लगेगा।"

महामुनि वैशम्पायन भी उस सभा के सदस्य थे, संयोग की बात कि जिस दिन अधिवेशन था उस दिन वैशम्पायन जी के यहाँ श्राद्ध था। श्राद्ध जैसे आवश्यक कार्य को छोड़ कर वे कैसे जा सकते थे। न जाने का सम्वाद भी न भेज सके। नियमानुसार सभा हुई, वैशम्पायन जी को अनुपस्थिति के कारण ब्रह्महत्या लग गयी। एक दिन वे अपने भानजे पर किसी बात पर असन्तुष्ट हो गये थे उसमें एक दो चपत लगाये होंगे, उसी से वह मर गया। अब तो प्रत्यक्ष ब्रह्म हत्या उन्हें लग गयी।

आचार्य बड़े चिन्तित हुए। उनके कुछ छोटे छोटे शिष्य थे, उनसे उन्होंने कहा—"भाई, हमें तो ब्रह्म हत्या लग गयी है, क्या करें।"

बटु बालकों ने कहा—"भगवन्! आपके बदले हम ब्रह्महत्या का प्रायश्चित करेंगे।" उनमें जो सब से अधिक गुरु भक्त चरकाध्वर्यु था उसने कहा—"गुरु जी! आप चिन्ता न करें, हम सब प्रकार से प्रायश्चित करेंगे।"

आचार्य ने कहा—"अच्छी, बात है तुम सब मिल कर ऐसा करो, कि मेरी ब्रह्महत्या निवृत्त हो जाय।"

इन सब शिष्यों में याज्ञवल्क्य ज्येष्ठ तथा श्रेष्ठ थे। उन्हें अपनी विद्या का भी अभिमान था और सबसे बड़े भी थे। जब उन्होंने छोटे छोटे लड़कों को गुरु जी के निमित्त ब्रह्महत्या निवारक व्रत करने के लिये उद्यत देखा तो वे बोले—"गुरु जी! आप यह क्या कर रहे हैं।। इन छोटे छोटे बच्चों से ऐसे दुश्चर

व्रत को करा रहे हैं। ब्रह्महत्या महा पाप है। पञ्च महा पापों में से प्रधान पाप है, इसके निवारण के लिये दुष्कर घोर तपस्या करनी होगी। ये अल्पवीर्य छोकरे क्या व्रत करेंगे। मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अकेला ही इसके निमित घोर दुश्कर तप करूँगा।"

गुरु जी को ब्रह्महत्या तो लगी ही हुई थी, शिष्य के ऐसे अभिमान पूर्ण वचन सुन कर उन्हें क्रोध आ गया। क्रोध में भर कर वे बोले—"अरे, तू छोटे मुँह इतनी बड़ी बड़ी बातें क्यों बना रहा है! तू अपने सामने किसी को कुछ लगाता ही नहीं। इन तपस्वी वेदज्ञ ब्राह्मणों को अल्पवीर्य बता रहा है, इन सब का अभिमान में भर कर अपमान कर रहा है। मुझे तुझ जैसे अभिमानी से कोई काम नहीं। तू अभी मेरी पढ़ी हुई विद्या को त्याग दे और तुरन्त मेरे यहाँ से चला जा।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! क्रोध को तो पाप का मूल बताया ही है। *गुरु की बात सुनकर याज्ञवल्क्य मुनि को भी क्रोध आ* गया। उन्होंने सोचा—"मैं तो गुरु जी के लिये अत्यन्त दुश्चर तप करने को उद्यत हूँ और ये मुझे डाँट रहे हैं, अच्छी बात है मुझे भी ऐसे क्रोधी गुरु की आवश्यकता नहीं।" यही सोच कर वे गुरु से पढ़ी हुई विद्या को त्यागने के लिये उद्यत हो गये उन *दिनों सब की विद्या चैतन्य तथा सजीव होती थी वेद मन्त्र सजीव* और मूर्तिमान होकर ब्राह्मणों के शरीर में वास करते थे। जैसे कोई आदमी खाये हुए अन्न की कै कर देता है उसे उँगली डाल कर मुख के द्वारा उगल देता है, उसी प्रकार याज्ञवल्क्य मुनि ने अपनी समस्त पढ़ी हुई विद्या उगल दी। वे सजीव वेद मन्त्र दीमक की भाँति चमकीले आँखों कीड़े बन कर वहाँ रेंगने लगे। महामुनि वैशम्पायन ने सोचा यह तो बड़ा अनर्थ हो जायगा यदि ये सजीव तेज युक्त वेदमन्त्र किसी अनाधिकारी के अधिकार में चले गये तो।" यही सोच कर वे अपने शिष्यों से बोले—"अरे,

देखते क्या हो, इन चमकीले सजीव वेद मन्त्रों को तुम सब धारण कर लो।"

उन वटु ब्राह्मणों ने सोचा—"मुख से उगली हुई वस्तु को तो कुत्ता खाता है, इस लिये इस शरीर से तो हम इन उगले हुए वेद मन्त्रों को ग्रहण नहीं कर सकते। ये वेद मन्त्र दीमक बन गये हैं, दीमक को भी ब्राह्मण शरीर से नहीं खा सकते। दीमक को सदा तित्तिर (तीतर) खाता है, क्यों न हम सब तीतर बन कर इन जाज्वल्यमान वेद मंत्रों को अपने हृदयस्थ कर लें।" यही सब सोचकर श्रुतियों के लोभ से सभी विप्रों ने उन श्रुतियों को तित्तिर बन कर ग्रहण कर लिया। इसीलिये वह यजुर्वेद की सुरम्य शाखा तैत्तिरीय शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुई। जो अभी तक विद्यमान है।"

शौनक जी ने पूछा—"तो क्या सूत जी! फिर महा मुनि याज्ञवल्क्य वेद विहीन हो गये।"

सूत जी ने कहा—"नहीं महाराज! वेद विहीन क्यों हुए। उन्होंने अपने पुरुषार्थ से सूर्य देव जी से यजुर्वेद की अन्य शाखा प्राप्त की।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! यजुर्वेद के आचार्य तो महामुनि वैशम्पायन ही थे। यजुर्वेद की सब श्रुतियाँ तो उन्हीं के पास थीं। याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य से यजुर्वेद की शाखा कैसे प्राप्त की कृपया हमारे इस सन्देह का निवारण कीजिये।"

इस पर सूत जी बोले—महाराज! वेद तो अनन्त है उसका पार तो वेद गर्भ ब्रह्मा जी भी नहीं पा सकते। वेद व्यास जी ने समस्त यजुर्वेद की श्रुतियाँ वैशम्पायन जी को थोड़े ही दी थीं। अनन्त वेद राशि में से कुछ मुख्य मुख्य श्रुतियाँ ही लेकर भगवान् द्वैपायन व्यास ने चार संहितायें बनायीं। शेष सब का भंडार तो समस्त कर्मों के साक्षी सूर्य देव के ही समीप था। उन्हीं की

प्रार्थना करके याज्ञवल्क्य जी ने वे श्रुतियाँ प्राप्त की जो वैशम्पायन जी के समीप भी नहीं थीं।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! याज्ञवल्क्य जी ने सूर्य से कैसे श्रुतियाँ प्राप्त कीं, कृपया इस वृत्तान्त को भी हमें सुनावें।"

सूत जी बोले—"महाराज! जब महामुनि याज्ञवल्क्य अपने गुरु की दी हुई विद्या को उगल कर गुरु की आज्ञा से आश्रम के बाहर हुए, तो उनका चित्त बड़ा खिन्न हो रहा था, वे सोच रहे थे—"मैंने गुरु जी से कोई अनुचित बात तो कही ही नहीं, उनके निमित्त ब्रह्महत्या व्रत का करने की ही अनुमति माँगी थी, यदि मेरे वचनों में अभिमान था, तो गुरु जी का मुझे प्रेम पूर्वक समझा देना था। वे अकारण मुझ से क्रुद्ध हो गये। मनुष्य स्वभाव ही से ऐसा है। यह अपने विरुद्ध बातें सहना ही नहीं चाहता। अब मैं किसी मनुष्य को गुरु न करूँगा। अब मैं समस्त ज्ञान के प्रकाशक, जगत को ज्योति प्रदान करने वाले सर्व कर्मों के साक्षी ज्ञान स्वरूप भगवान् सविता की उपासना करूँगा और उन्हें तप से तुष्ट करके ऐसी श्रुतियों को प्राप्त करूँगा, जो मेरे गुरु के भी पास न हों।" ऐसा निश्चय करके याज्ञवल्क्य मुनि यजु, श्रुतियों की कामना से भगवान् सूर्य नारायण की आराधना करने लगे और गायत्री के सार भूत इस आशय के मंत्र से निरन्तर उनकी स्तुति करने लगे।

जो अखिल जगत् के आत्मारूप से अकेले ही ब्रह्मा से स्तम्भ पर्यन्त चतुर्विध भूतों के भीतर रहते हैं तथा सब के बाहर क्षण, लव, निमेष आदि विभागों से वृद्धि को प्राप्त संवत्सर समूह रूप से रहते हैं। जो घड़े आदि की उपाधियों के रहते हुए भी उसके भीतर बाहर आकाश के सदृश व्याप्त रहते हैं और आकाश के ही समान सब से अलिप्त रह कर प्राणियों के शरीरों से तथा जलाशयों से गुप्त रूप से जल ग्रहण करके समय आने पर उसे व-

कर लोक यात्रा का वहन करते हैं, उन ओंकार स्वरूप भगवान् सूर्यनारायण सविता देव को नमस्कार है।

हे समस्त देवताओं में श्रेष्ठ भगवान सूर्य देव! वेदविधि से उपासना करने वाले ब्राह्मण गण आपकी प्रातः मध्याह्न और सायंकाल में उपस्थानादि से उपासना करते हैं और आप भी उनके पाप कर्मों से प्राप्त हुए समस्त दुःख बीजों को भून डालते हैं। आपका जो यह अत्यन्त प्रकाशमान तेजो मंडल देदीप्यमान हो रहा है, उसका हम ध्यान करते हैं। जो आप अपने आश्रित रहने वाले स्थावर-जंगम रूप प्राणियों के मन, इन्द्रिय तथा प्राणों को जो स्वयं तो जड़ हैं, किन्तु आप ही आत्मा तथा अन्तर्यामी रूप से सब को कर्मों में प्रेरित करते हैं ऐसे आपका हम ध्यान करते हैं।

हे प्रभो! आप जो अत्यन्त करुणामय प्रभु हैं, सो अन्धकार संज्ञक अति कराल वदन वाले अजगर के मुख में पड़कर मृतक के सदृश चेतना शून्य देखकर आप ही करुणा के वशी भूत होकर अपनी दृष्टि मात्र से ही इस सम्पूर्ण लोक को उठा कर इसे नित्य प्रति तीनों कालों में अपने कल्याणकारी धर्मरूप आत्मा स्थिति में प्रवृत्त करते हैं। जिस प्रकार राजा दुष्ट पुरुषों को भय देते हुए लोक में विचरण करते हैं, वैसे ही आप भी विचरण करते रहते हैं। ये जितने लोकपाल हैं सब आपको जहाँ तहाँ चारों ओर से कमलकोश सदृश अञ्जलियों से अर्घ्य समर्पण करते हैं। हे भगवन्! उन्हीं त्रिलोक गुरुओं द्वारा वन्दित आपके युगल चरण कमलों की मैं अयातयाम यजुर्वेद की श्रुतियों की प्राप्ति की इच्छा से शरण लेता हूँ।

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! जब एकाग्रचित्त से महामुनि याज्ञवल्क्य ने समस्त कर्मों के साक्षी सम्पूर्ण जगत् को आलोक प्रदान करने वाले भगवान् सूर्यनारायण की उपासना की, तो वे अश्व का रूप रख कर मुनि के सम्मुख उपस्थित हुए सूर्यनारायण

के अश्व वेद मय हैं। अश्वरूप में सूर्य देव को सम्मुख देखकर मुनि ने उनके चरणों में प्रणाम किया और वर माँगने को कहा। तब याज्ञवल्क्य जी ने कहा—"प्रभो! मुझे यजुर्वेद की उन श्रुतियों को प्रदान करें जिन्हें मेरे गुरु भी न जानते हों।" यह सुन कर अश्वरूप धारी सूर्य ने उन्हें कभी भी व्यर्थ न होने वाली यजुर्वेद की आयातयामी श्रुतियाँ दीं। ये श्रुतियाँ असंख्यों थीं महामुनि याज्ञवल्क्य ने उन से पन्द्रह शाखायें बनायीं जो वाज (घोड़ा) के द्वारा दी जाने से वाजसनेयी शाखा के नाम से प्रसिद्ध हुईं। महामुनि वैशम्पायन का यजुर्वेद कृष्ण यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुआ और याज्ञवल्क्य मुनि को जो यजुर्वेद की श्रुतियाँ मिलीं वे शुक्ल यजुर्वेद के नाम से प्रसिद्ध हुईं। इनके कण्व और माध्यन्दिन आदि शिष्य हुए इसलिये ये शाखायें उन्हीं के नाम से प्रसिद्ध हुईं।

इस प्रकार गुरु शिष्य के वाद विवाद के कारण यजुर्वेद की दो संहितायें हुईं। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में यजुर्वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में कहा। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं।

शौनक जी ने कहा—'सूत जी! हमने आप के मुख से ऋग-वेद और यजुर्वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में तो सुना अब हम सामवेद और अथर्व वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में और सुनना चाहते हैं। साथ ही आप हमें पुराणों के सम्बन्ध में भी सुनावें। पुराण कितने हैं, पुराणों के लक्षण क्या हैं। इस प्रकार हमें आप वेदों के सदृश पुराणों का भी परिचय कराइये।"

सूत जी बोले—"महाराज ! यह विषय तो बड़ा गहन है, विस्तार के साथ तो नहीं अत्यन्त संक्षेप में मैं इस विषय को आपको सुनाता हूँ आप सब एकाग्र चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

उगले सगरे मन्त्र दिव्य दीमक बनि जीये।
तित्तिर बटु बनि गये लोभवश सब चुगि लीये ॥
तैत्तिरीय सो भई वेद की शाखा सुन्दर।
याज्ञवल्क्य ने करे तुष्ट तप करकें दिनकर ॥
अश्व रूप धरि सूर्य ने, शिक्षा द्विजवर कूँ दई।
वाजसनेयी पृथक यह, यजुर्वेद शाखा भई ॥

—::::—

साम अथर्व और पुराणों की शाखाओं का वर्णन

(१३६०)

ब्रह्मन्निदं समाख्यातं शाखाप्रणयनं मुनेः ।
शिष्यशिष्य प्रशिष्याणां ब्रह्मतेजो विवर्धनम् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ७ अ० २५ श्लो०)

छप्पय

ऐसे ही पुनि सामवेद की शाखा अगनित ।
बहु अथर्व के भये महामुनि चित्त समाहित ॥
पुनि दश आठ पुरान बनाये अति ही सुखकर ।
दश लक्षण तें युक्त जगत हितकारक मुनिवर ॥
ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव महा, शैव भागवत नारदी ।
मार्कंडेय पुरान पुनि, अग्नि, भविष्य सुशारदी ॥

जिस विषय को श्रद्धा पूर्वक श्रवण करते हैं उस विषय के कुछ न कुछ संस्कार हृदय पर अवश्य पड़ते हैं। बिना मन के भी बैठे बैठे किसी विषय को सुनते रहो तो कानों में पहुँचने पर वह

---

* श्री सूतजी कहते हैं—"ब्रह्मन् ! यह मैंने आपको भगवान् वेद व्यासजी के शिष्य, शिष्यों के भी शिष्य तथा उनके भी शिष्यों का किया हुआ वैदिक शाखाओं का विस्तार सुनाया। यह सुनने वालों के ब्रह्मतेज को बढ़ाने वाला है।"

अपना कुछ न कुछ प्रभाव अवश्य डालेगा। छोटे छोटे बच्चे जो बोलते नहीं, माता पिता समझते हैं, ये अबोध हैं कुछ नहीं जानते इसलिये उनके सम्मुख कामुक चेष्टायें करते हैं काम सम्बन्धी बातें करते हैं। यह उनकी भूल है। उन बातों का संस्कार बच्चों पर पड़ता है। जहाँ वे बड़े हुए तहाँ वैसी ही चेष्टायें करने लगते हैं। इसी प्रकार कथा वार्ता के संस्कार भी हृदय पर अपना प्रभाव जमाते हैं। मातायें कथा सत्संग में जाती हैं तो प्रायः हाथों से कुछ काम करती जाती हैं और कान से कथा सुनती हैं। इतने से ही उन्हें बहुत सी कथायें कण्ठस्थ हो जाती हैं। इसलिये वैदिक तथा पौराणिक शास्त्र साहित्य के सम्बन्ध में इच्छा न रहने पर भी उस विषय को न समझने पर भी—सुनना चाहिये। सुनते सुनते उनके संस्कार जम जाते हैं और इससे ब्रह्मतेज बढ़ता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं अत्यन्त ही संक्षेप में सामवेद की शाखाओं का वर्णन करता हूँ। भगवान् व्यासदेव ने सामवेद की संहिता को महामुनि जैमिनी को दिया। जैमिनी मुनि के सुमन्तु नामक एक सुयोग्य पुत्र था उसके भी सुन्वान् नामक पुत्र था। इसलिये उन्होंने अपने वेदकी दो शाखायें कीं। एक अपने पुत्र सुमन्तु को दी और दूसरी अपने पौत्र सुन्वान् को दी।

इन पुत्र पौत्रों के अतिरिक्त उनका सुकर्मा नामक एक तेजस्वी शिष्य था। वह बड़ा मेधावी था अपने गुरु से सामवेद पढ़कर उसने उसकी सहस्र शाखायें कीं और अपने शिष्यों को वे सब भिन्न भिन्न शाखायें पढ़ायीं। उनके जो (कोशल निवासी) हिरण्यनाभ, पौष्यञ्जि, और (अवन्ती के) आवन्त्य आदि शिष्यों ने पढ़ा। पौष्यञ्जि और आवन्त्य के पाँच सौ शिष्य उत्तर दिशा में रहकर सामगान करते थे। उदीची दिशा में रहने से यद्यपि ये औदीच्य थे फिर भी इन्हें प्राच्य सामग भी कहते हैं। पौष्यञ्जि

मुनि के शिष्यों में से प्रत्येक ने सौ सौ संहितायें पढ़ी। अब सुकर्मा के प्रथम शिष्य हिरण्यनाभ के शिष्यकृत हुए। उन्होंने भी अपने शिष्यों को चौबीस संहितायें पढ़ायीं। बहुत सी संहितायें आवन्त्य मुनि ने अपने शिष्यों को पढ़ायीं। इस प्रकार से सामवेद की बहुत सी शाखायें हुईं अब आप अथर्व वेद की शाखाओं के सम्बन्ध में भी सुनिये।

भगवान् वेदव्यास ने अथर्थवेद संहिता महामुनि सुमन्तु ऋषि को दी। उन्होंने उसे अपने शिष्य कबन्ध को पढ़ाया। कबन्ध मुनि ने उसके दो विभाग किये। एक को अपने प्रथम शिष्य पथ्य को पढ़ाया और दूसरी को अपने द्वितीय शिष्य वेद दर्श को पढ़ाया। महामुनि दर्श के चार शिष्य हुए। उनके नाम शोक्लायनि, ब्रह्मबलि, मोदोष और पिप्पलायनि थे। महामुनि पथ्य के भी तीन शिष्य थे, उनके नाम कुमुद, सुनक और जाजलि थे। इनमें शुनक मुनि के बभ्रु और सैन्धवायन ये दो शिष्य हुए। इसके अनन्तर सावर्ण्य आदि अथर्व वेद के ज्ञाता हुए तदनन्तर नक्षत्रकल्प, शान्तिकल्प, कश्यप और आङ्गिरस आदि मुनि हुए। ये सबके सब अथर्व वेद के ज्ञाता और सबके सब परम बुद्धिमान् थे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! आपने वैदिक मुनियों का वर्णन तो किया, किन्तु पौराणिक मुनियों के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा। अब कृपा करके आप हमें पौराणिक आचार्यों के सम्बन्ध में बतावें।

यह सुनकर सूतजी के नेत्रों में जल भर आया और वे बोले—"मुनियो! महाराज पृथु के यज्ञ में सौत्याहनि यज्ञ में चरु के विपर्यय होने से मेरे पिता की उत्पत्ति हुई। चरु के विपर्यय हो जाने से उनकी सूत संज्ञा हुई। वे लोमहर्षण सूत सूतवंश के प्रथम प्रवर्तक हुए। चरु के विलोम हो जाने से हो विलोम

जाति की सूतजाति हुई। इसीलिये वे अयोनिज होने पर भी वेदों के अध्यापन के अनधिकारी माने गये। भगवान् व्यासदेव ने उन्हें पुराणों का आचार्य बनाया। उन्होंने पुराणों की ६ संहितायें बनायीं। उनको त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत इन छै पौराणिक मुनियों को पढाया।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! तुम्हारे पिता पुराणाचार्य लोमहर्षण भले ही अयोनिज हैं, फिर भी वे हैं तो सूत जाति के ही। अध्ययन कराने का गुरु बनने का अधिकार तो ब्राह्मणों को ही है, अन्य जाति के लोगों को तो शिष्य करने का अधिकार नहीं, फिर तुम्हारे पिता ने इन मुनियों को अध्ययन क्यों कराया ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज वेद पुराणों के उपदेष्टा तो आप ही लोग हैं। आप जिसे अधिकार दे दें वह अनधिकारी होने पर भी अधिकारी हो जाता है। आप लोग मन्त्रों द्वारा पापाण आदि की प्रतिमाओं में प्राण प्रतिष्ठा कर देते हैं, वह जगत् पूज्य बन जाती है। इसी प्रकार सूत न होने पर भी मेरे पूज्य पिता को भगवान् वेदव्यासजी ने अपना लिया उन्हें अपना शिष्य बना लिया। उन्हें अपना शिष्य बना लिया और सूत जाति को पुराण बाँचने का अधिकार देकर मुझे उच्चासन पर बिठा दिया है। रही गुरु बनने की बात सो भगवन्! गुरु दो प्रकार के होते हैं एक शिक्षा गुरु दूसरा दीक्षा गुरु। दीक्षा गुरु ब्राह्मण ही होता है। किन्तु शिक्षा गुरु अपवाद रूप में अन्य वर्ण का भी हो सकता है। कई राजाओं के पास शिक्षा लेने बहुत से ऋषि गये हैं और शिक्षा के लिये उन्होंने उन राजाओं का शिष्यत्व स्वीकार किया है। मेरे गुरुदेव भगवान् शुकदेव के दीक्षा गुरु तो उनके पिता ही थे, किन्तु शिक्षा लेने वे राजा जनक के पास गये थे। राजा जनक ने प्रथम तो गुरुपुत्र और ब्राह्मण के नाते उनकी

पूजा की फिर शिक्षा भी दी। स्मृतियों में भी ऐसे वचन मिलते हैं, कि किसी अब्राह्मण से शिक्षा लेनी हो, तो उसे शिक्षा लेते समय प्रणाम करे, शिक्षा लेने के अनन्तर प्रणामादि न करे वाचिक आदर करे। व्यासजो ने जब मेरे पिता को पुराणाचार्य बना दिया तो उन्होंने गुरु आज्ञा से पुराणों की शिक्षा दी। मैं भी आपकी आज्ञा से शिक्षा दे रहा हूँ। मैं वेद मन्त्रों की दीक्षा नहीं दे सकता। जो अब्राह्मण होकर किसी को वेद मन्त्रों की दीक्षा देता है तो देने वाला और लेने वाला शास्त्र विधि का उल्लङ्घन करने के कारण दोनों ही नरक के अधिकारी होते हैं।

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी! पुराणों के पठन पाठन का तो आप को अधिकार ही है, आपके पिता हम लोगों को सदा पुराण सुनाया करते थे, और हम भी गुरु की भाँति उनका आदर करते थे। उन्हें उच्चासन देते थे। उनके पश्चात् इस सिंहासन पर आपको बिठाया था। आप भी पुराण के हमारे गुरु हो आप ने किससे संहितायें पढ़ीं।

सूतजी बोले—"महाराज! मैं तो सभी का शिष्य हूँ। आप की आज्ञा शिरोधार्य करके ही इस उच्चासन पर बैठा हूँ। मैंने जो भी कुछ प्राप्त किया है आप महर्षियों से ही प्राप्त किया है। जैसे पिता पुत्र को प्रथम सिखाता पढ़ाता है, फिर स्वयं ही उसे उच्चासन पर बिठाकर सुनता है प्रमुदित होता है। आप जो कहलाते हैं वह कहता हूँ। मेरे पिताजी से तो त्रय्यारुणि, कश्यप, सावर्णि, अकृतव्रण, वैशम्पायन और हारीत इन छै महर्षियों ने एक एक संहिता पढ़ी, फिर मैंने इन छैओं से सब संहितायें पढ़ी इस सम्बन्ध से तो ये छैऊ मेरे गुरु और पिता जी मेरे परम गुरु हुए। किन्तु कश्यप, सावर्णि और परशुराम जी के शिष्य अकृतव्रण तथा मैं इन चारों ने पिता जी से मूल संहितायें पढ़ी इस नाते से मेरे पिता जी मेरे गुरु हुए। मैंने श्री शुकदेव जी के मुख से गंगा

तट पर यह श्रीमद्‌भागवत-सात्वत संहिता पढ़ी इसलिये वे मेरे गुरु हैं। मैंने तो जिस महर्षि से भी प्राप्त हुई उसी से पुराण संहितायें पढ़ीं इस प्रकार मुझे अठारहों पुराण कंठस्थ हैं।"

इसपर शौनकजी ने कहा—"सूतजी! पुराण किसे कहते हैं, पुराणों के लक्षण हमें और सुना दीजिये।"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज! पुराणों के लक्षण पुराणों संख्या में तो मैं पहिले ही बता चुका हूँ।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! कलियुग का प्रभाव होने से कुछ हम लोगों की भी स्मरण शक्ति न्यून-सी हो गयी है। एक विषय को बार बार सुनने से उसकी पुनरावृत्ति हो जाती है आप पहिले बता तो चुके हैं, किन्तु एक बार फिर बता दें।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज! आप तो सर्वज्ञ हैं, आपकी स्मृति कैसे न्यून हो सकती है, आप तो लोक कल्याण के निमित्त ही एक प्रश्न को बार बार पूछते हैं। बालकी खाल निकालते हैं, जिससे सर्व साधारण की समझ में आ जाय। अच्छी बात है अब मैं वेद शास्त्रों के अनुसार ब्रह्मर्षियों के बताये हुए पुराण के लक्षणों को कहता हूँ, उन्हें आप सावधान होकर श्रवण करें।

पुराण कहते हैं, पुरानी वस्तु को जिसमें विश्व का सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशों के चरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय ये दस बातें हों वही पुराण है। महर्षियों ने पुराण के ये ही दस लक्षण बताये हैं। पुराणों में भी एक महापुराण है एक पुराण जिसमें दस लक्षण हों वह महापुराण जिसमें पाँच ही हों वह पुराण ऐसा किन्हीं महर्षियों का मत है। उपपुराण और औपपुराण भी हैं। इन सब में ये ही दस बातें हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! इन दस लक्षणों की फिर से व्याख्या और सुना दीजिये।"

सूतजी बोले—"महाराज! पीछे मैं इन दशों के लक्षण बता चुका हूँ अब अत्यन्त संक्षेप में फिर से कहता हूँ।

१—सर्ग-सर्ग कहते हैं, सृष्टि को। पुराणों में आवश्यक रूप से इस बात पर विचार किया गया है, कि यह सृष्टि कैसे होती है। जब यह दृश्य जगत् नहीं था तब तक सत् ही सत् था त्रिगुणात्मिका प्रकृति साम्यभाव में निश्चेष्ट थी। गुणों में क्षोभ होने से उनकी साम्यता नष्ट हो गयी। तीनों गुण कुछ कुछ न्यूनाधिक हुए। सृष्टि का कार्य आरम्भ हुआ। गुणों में क्षोभ होने पर सर्व प्रथम 'महान्' या महत्तत्व' की उत्पत्ति हुई। उस महत्तत्व से ही सात्विक, राजस तथा तामस तीन प्रकार के अहंतत्व की उत्पत्ति हुई। उस त्रिविध अहंकार से ही शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श ये पंचभूत तन्मात्रायें, एकादश इन्द्रियाँ तथा इनके विषयों की उत्पत्ति हुई। इस उत्पत्ति का नाम ही महर्षियों ने सर्ग रखा है।

२—विसर्ग—विशेष रूप से जीवों की सृष्टि का नाम विसर्ग है। मूल प्रकृति से महत्तत्व, अहंतत्व, इन्द्रियादि तत्व तो उत्पन्न हो गये, किन्तु इनसे विशेष सृष्टि कैसे हुई। जैसे आपका एक बीज है, उसे उर्वरा भूमि में बो दिया, उसकी प्रकृति के अनुकूल खाद जल मिला, तो उसी बीज से अंकुर होगा। फिर वृक्ष हो जायगा, फल लगेंगे। फल में फिर बहुत से बीज हो जायँगे। एक बीज का उग आना सर्ग है, एक बीज से बहुत बीज हो जाना यही विसर्ग है। इसी प्रकार ईश्वर से अनुगृहीत इन महत्तत्वादि से पूर्व जन्म की वासनाओं के अनुसार नाना प्रकार के जीव समूहों की उत्पत्ति होती है उसी को पुराणों की भाषा में विसर्ग कहा जाता है।

३—वृत्ति—जिसका जिससे निर्वाह हो उसे उसकी वृत्ति कहते हैं—जैसे गौ का निर्वाह घास से होता है जंगम प्राणियों की स्वा-

भाविकी जीविका स्थावर प्राणी हैं। मनुष्य कामवश कुछ तो अपने आप अपनी जीविका बना लेता है। कुछ के लिये शास्त्र आज्ञा देता है। इस प्रकार विहित और अविहित दो प्रकार की वृत्तियाँ हैं।

४-रक्षा—अच्छा, अब जीव तो उत्पन्न हो गये। बहुत से बर्तन जहाँ रहते हैं, परस्पर में खटकते ही हैं। इसी प्रकार जब बहुत से प्राणी हो जाते हैं, तो आपस में लड़ते हैं एक दूसरे को खा जाना चाहते हैं।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! जीव आपस में लड़ते क्यों हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! लड़ते हैं अपनी आजीविका के लिये। लड़ाई भी स्वाभाविक है। जंगम प्राणियों की आजीविका स्थावर प्राणियों से है। गाय बैल हैं, वे घास भूसा खाते हैं। मनुष्य है ओपधि अन्न, फल मूल खाकर निर्वाह करता है। कुछ बड़े जीव छोटे जीवों को खाकर जीते हैं। यह मनुष्य प्राणी साधक है। यह कुछ तो शास्त्राज्ञा से नियत की हुई जीविका से निर्वाह करता है, कुछ कामवश अपने आप ही निश्चित कर लेता है। इससे आपस में बड़े बखेड़े होते हैं। कुछ लोग कहते हैं हम धर्म को वेदाज्ञा को नहीं मानते। कुछ कहते हैं हम मानते हैं। वेद विरोधी लोग प्रबल हो जाते हैं। धर्म का ह्रास होने लगता है, साधु पुरुषों को खल पुरुष भाँति भाँति की पीड़ायें पहुँचाते हैं। तब भगवान् युग युग में अवतीर्ण होकर जो विश्व की रक्षा करते हैं। वेद विरोधियों को परास्त करते हैं उसी का नाम रक्षा है। भगवान् तिर्यक्, मनुष्य, ऋषि तथा देवताओं में अवतार धारण करके भाँति भाँति की विचित्र विचित्र क्रीड़ायें करते रहते हैं। इससे विश्व की रक्षा होती है।

५-मन्वन्तर—"एक मनु जितने दिन तक रहते हैं, उसे मन्व-

न्तर कहते हैं। ब्रह्माजी के एक दिन में चारों युग सहस्र सहस्र बार बीत जाते हैं। उनके एक दिन में १४ मन्वन्तर मनु बदल जाते हैं। एक मन्वन्तर में इकहत्तर बार चारों युग बीतते हैं। उस काल में मनु, मन्वन्तर के देवगण, इन्द्र, मनुपुत्र, सप्तर्षि और भगवान् का एक अंशावतार ये ६ रहते हैं। इन ६ के ही शासन काल का नाम मन्वन्तर है। पुराणों में समास व्यास से चौदहों मन्वन्तरों का वर्णन रहता है।

६—वंश—"ब्रह्माजी से सूर्यवंश चन्द्रवंश तथा ऋषिवंश आदि वंशों की उत्पत्ति होती है। उन ब्रह्माजी के जितने वंश धर हो गये हैं, जो हैं अथवा जो आगे होंगे उन्हें 'वंश' कहते हैं पुराणों में बहुत से वंशों का वर्णन रहता है।

७—वंशानुकथा—इन ब्रह्माजी से उत्पन्न वंशों में जो बड़े बड़े पराक्रमी ब्रह्मर्षि राजर्षि तथा अन्यान्य विशिष्ट व्यक्ति हो गये हैं, उनके तथा उनके वंशधरों के चरित्रों को 'वंशानु कथा' कहते हैं।

८—संस्था—जो उत्पन्न होगा उसका नाश अवश्य होगा। जब इस जगत की उत्पत्ति बतायी जाती है, तो संहार भी बताना आवश्यक है। देह जब उत्पन्न होती है, उसके साथ ही साथ उसकी मृत्यु भी होती है। आज हो या सौ वर्ष पश्चात् हो सर्ग प्रलय अवश्य होगी। नित्य, नैमित्तिक, प्राकृतिक और आत्यंतिक इस प्रकार प्रलय चार भाँति की बतायी गयी हैं, जिसका वर्णन पीछे प्रसंगानुसार कई बार हो चुका है। इस प्रलय को ही पौराणिक भाषा में संस्था कहते हैं।

९—हेतु—अब यह देखना है, कि कारण के बिना कोई कार्य होता नहीं। प्रयोजन के बिना मंद भी किसी काम में प्रवृत्त नहीं होता। तब इतने बड़े संसार के उत्पन्न होने का हेतु क्या है। शास्त्रकारों ने यही बताया है, कि जीव के भोग भोगने के लिये

तथा मोक्ष के निमित्त यह संसार है। यह जीव कर्मों में प्रवृत्त होता क्यों है ? इस पर बड़ा विवाद है। साधारणभूत होकर ही जीव कर्मों में प्रवृत्त होता है। जीव जड़ नहीं है वह चैतन्य प्रधान है अतः इसे कोई 'अनुशायी' कहते हैं।

ब्रह्म तो निरुपाधिक है, उसमें किसी भी प्रकार की उपाधि नहीं। किन्तु जीव उपाधि प्रधान है। इसीलिये कोई इसे अव्याकृत भी कहते हैं। जीव न हो तो इस चराचर जगत को भी प्राप्ति नहीं हो सकती। इसलिये इस सर्ग, स्थिति और प्रलय का हेतु जीव को ही बताया है।

१० —अपाश्रय—जो इस जगत् में इसी प्रकार ओतप्रोत है, जिस प्रकार पट में तन्तु तथा घट में मृत्तिका ओत प्रोत है। जो जगत में व्याप्त होने पर भी जगत से सर्वथा पृथक है। उस ब्रह्म की ही पौराणिक भाषा में अपाश्रय संज्ञा कही गयी है। जीव की तीन अवस्थायें कही गयी हैं। जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति ये तीनों मायामयी वृत्तियाँ हैं। इनमें विश्व, तैजस और प्राज्ञ रूप से ब्रह्म ही ब्रह्म है। इसी का नाम अन्वय है। जैसे सब कुछ ब्रह्म ही ब्रह्म है। इन तीनों अवस्थाओं से परे जो तुरीय रूप है वही व्यतिरेक है। जैसे अन्न ब्रह्म नहीं है, प्राण ब्रह्म नहीं है। नहीं नहीं करते करते जो बच रहे वही ब्रह्म है। अन्वय और व्यतिरेक से जो सिद्ध हो वही दशम तत्व अपाश्रय ब्रह्म है। समस्त वेद पुराण इसी दशम तत्व का प्रतिपादन करते हैं। इस दशम तत्व की विशुद्धि के निमित्त ही शेष नौ का विस्तार किया गया है। जैसे बच्चों को गौ के नीचे छोड़ना दूध दुहना, दूध को गरम करना, उसमें जामन देना, जमाना, दूसरी हंडी में डालना, रई लेकर बिलोना, मक्खन निकालना फिर उसे तपाकर घृत बनाना। ये जितनी क्रियायें हैं एकमात्र घृत निकालने के ही निमित्त हैं। घृत दुग्ध में सर्वत्र व्याप्त भी है और पृथक भी है। ऐसे ही ब्रह्म

सम्पूर्ण जगत् में व्याप्त भी है और जगत से भिन्न भी है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! एक ही वस्तु सर्वत्र व्याप्त और उससे सर्वत्र भिन्न कैसे हो सकती है?"

सूतजी ने कहा—"क्यों, महाराज! इसमें हानि ही क्या है। देखिये घड़े के अणु अणु में मृत्तिका व्याप्त है, कोई भी घड़े का स्थान ऐसा नहीं जहाँ मिट्टी न हो। इतना सब होने पर मिट्टी घड़े से पृथक् भी है। घड़े के ऊपर नीचे बाहर भीतर नाम रूप को छोड़कर—जो भी कुछ है मृत्तिका ही मृत्तिका है। मृत्तिका के अतिरिक्त उसमें कुछ भी नहीं है। उसी प्रकार जन्म से लेकर मृत्यु पर्यन्त सम्पूर्ण अवस्थाओं में अधिष्ठान रूप से ब्रह्म ही ब्रह्म है। जितने भी पिंड हैं सबमें ब्रह्म ही ब्रह्म व्याप्त है। साक्षी रूप से वही सच्चिदानन्द घन विग्रह, निरीह निर्लेप ब्रह्म सबसे पृथक् भी है। उसी की संज्ञा 'अपाश्रय' कही गयी है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जब सर्वत्र ब्रह्म ही ब्रह्म व्याप्त है। तब फिर जीव की अच्छे बुरे कर्मों में प्रवृत्ति क्यों होती है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! माया के सत्व, रज और तम ये तीन गुण ही जीवको कर्मों में प्रवृत्त कराते हैं। जब तक त्रिगुणात्मिक ऊर्मियाँ उठती रहेंगी तब तक जीव कर्मों में प्रवृत्त होता रहेगा, तब तक उसे शाश्वती शान्ति की प्राप्ति नहीं हो सकती। जिस समय चित्त सत्वादि तीनों प्रकार की वृत्तियों को त्यागकर गुणातीत बन जाता है, तब स्वयं शान्त हो जाता है। दीपक में जब तक तैल रहेगा, तब तक वह जलता रहेगा, जब तैल समाप्त हो जायगा, तब अपने आप शान्त हो जायगा। उसी प्रकार त्रिगुणात्मिका ऊर्मियों के चुक जाने पर मन शान्त हो जाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! त्रिगुणमयी ऊर्मियों का अंत कैसे हो ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! सत् असत् के विवेक से सत् वस्तु का अनुभव होने लगता है, तब असत् का अपने आप निराकरण हो जाता है। वैराग्य और विवेक के द्वारा ज्ञान हो जाता है, ज्ञान से मुक्ति होती है। ज्ञान होने पर स्वयं चित्त की वृत्तियाँ शान्त हो जाती हैं। अथवा योगाभ्यास करने से चित्त की बिखरी वृत्तियों का निरोध हो जाता है और निरुद्ध हुए चित्त का अपने स्वरूप में अवस्थान होता है। जिस किसी प्रकार आत्मतत्व का यथार्थ बोध होना चाहिये। आत्मतत्व का बोध होने पर अविद्या जनित कर्म प्रवृत्ति से चित्त अपने आप निवृत्त हो जाता है।"

इसलिये मुनियो ! सर्ग, विसर्ग, वृत्ति, रक्षा, मन्वन्तर, वंश, वंशानुचरित, संस्था, हेतु और अपाश्रय इन दश का जिनमें वर्णन हो उनका नाम पुराण है। उनके नाम मैं पीछे कई बार बता चुका हूँ। फिर भी आपको पुनः स्मरण कराये देता हूँ। ब्राह्म, पाद्म, वैष्णव, शैव, लैङ्ग, गारुड, नारदीय, भागवत, आग्नेय, स्कान्द, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, वामन, वाराह, मात्स्य, कौर्म और ब्रह्माण्ड ये अठारह पुराण हैं। मेरे पिताजी ने भगवान् व्यासजी से सब पढ़े थे। मैंने अपने पिता से तथा अन्यान्य ऋषियों से ये सबके सब पढ़े हैं। इस प्रकार व्यासजी के शिष्य प्रशिष्यों का किया हुआ वैदिक तथा पौराणिक शाखाओं का विस्तार मैंने आपसे बताया। जो कोई इस शाखा विस्तार को पढ़ता सुनता है उसका ब्रह्मतेज बढ़ता है। जो वेदों की शाखाओं को न पढ़ सके उसे इस शाखा विस्तार नामक अध्यायों को अवश्य सुन लेना चाहिये। इन ऋषियों के नाम कीर्तन का भी

बड़ा पुण्य होता है, यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में आपसे वेदों की शाखाओं का तथा पुराणों के लक्षणों का वर्णन किया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं। आप ने मेरी कथा बड़े मनोयोग के साथ सुनी भगवान् करें आपकी मार्कण्डेय के समान आयु हो।"

यह सुनकर शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! अहा, आपने अच्छा स्मरण कराया। भगवान् आपका भला करें। आप समस्त वक्ताओं में श्रेष्ठ हैं। आपका ज्ञान अमोघ है आपकी स्मरण-शक्ति अद्भुत है। परम पिता परमात्मा के पादपद्मों में हमारी पुनः पुनः प्रार्थना है, कि आपकी आयु बहुत बड़ी हो। आप भी मार्कंडेय के सदृश चिरजीवी हों। एक शंका हमको बहुत दिनों से थी, आपने मार्कंडेयजी का स्मरण करके हमारी शंका को नूतन बना दिया। अब आपसे ही हम उस शंका का समाधान करावेंगे, क्योंकि आप अपार संसार सागर में भटकते हुए प्राणियों के पथ प्रदर्शक हैं। आप कहें तो हम अपनी शंका को आपके सम्मुख प्रकट करें।"

सूतजी ने कहा—"महाराज! आप आज्ञा करें, जैसा कुछ मैंने गुरु मुख से सुना है, उसके अनुसार मैं आपकी शंका का समाधान करने की चेष्टा करूँगा। आप अपनी शंका को अवश्य कहें।"

शौनकजी बोले—"सूतजी! हमें शंका यह है, कि सब लोग मार्कंडेय मुनि को चिरायु बताते हैं। हमने ऐसा सुना है कि प्रलयकाल में यह सम्पूर्ण चराचर जगत् विलीन हो जाता है, उस समय कुछ भी शेष नहीं रहता। फिर भी सुनते हैं, कि मार्कंडेय मुनि उस प्रलयकाल में भी शेष रह जाते हैं। कई प्रलय उन्होंने देखी हैं। प्रलय होती है कल्प के अन्त में। एक कल्प में सत्य, त्रेता, द्वापर और कलियुग ये चारों युग सहस्र सहस्र बार

बीत जाते हैं। किन्तु मार्कंडेय मुनिका जन्मतो इसी कल्प में हुआ है और हमारे ही भार्गव कुल में इनका जन्म हुआ है, तबसे अब तक कोई प्रलय तो हुई नहीं। होती भी कैसे प्रलय का कोई समय ही नहीं था। फिर उन्होंने प्रलय कालीन जल में एकाकी विचरण कैसे किया? वटपत्र के पुट पर शयन करते हुए बाल मुकुन्द भगवान् के दर्शन उन्होंने कैसे किये? कैसे वे उनकी स्वाँस के साथ उनके उदर में चले गये। यह शंका हमें बड़ी भारी है। सूतजी! आप पौराणिकों में अग्रगण्य हैं। हमारी इस शंका का तो आप समाधान कर ही दें। इस विषय को श्रवण करने की हमें अत्यन्त उत्कण्ठा हो रही है। हमें बड़ी चटपटी लग रही है। अतः कृपा करके इसका उत्तर देकर हमारे संशय को दूर कीजिये।"

इस प्रश्न को सुनकर सूतजी हँस पड़े और बोले—"महाराज! मैं आपके प्रश्न का अभिप्राय समझ गया। अब आप पुराणाचार्य भगवान् मार्कंडेय का चरित्र सुनना चाहते हैं। पुराण की कथा के अन्त में मार्कंडेय जैसे चिरजीवी मुनियों का चरित्र सुनना ही चाहिये, इससे श्रोता वक्ता दोनों की ही चिरायु होती है। अच्छी बात है अब मैं आपको महामुनि मार्कंडेय का ही चरित्र सुनाता हूँ, इसे आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

ब्रह्मविवर्त पुरान लैङ्ग वाराह पुरातन।
पुनि स्कंध पुरान हु वामन कूर्म सनातन॥
मत्स्य, गरुड, ब्रह्माण्ड अठारह सब मिलि होवें।
पढ़ें सुनें नर नारि सहज जनमनि अघधोवें॥
वेद पुराननि भेद कूँ, नाम मात्र हू जे रटैं।
पढ़ैं प्रेम तैं नियम युत, तिनिके सब पातक कटैं॥

—:o:—

मार्कण्डेय मुनि की तपस्या

(१३६१)

प्राप्त द्विजाति संस्कारोमार्कण्डेयः पितुः क्रमात् ।
छन्दांस्यधीत्य धर्मेण तपः स्वाध्याय संयुतः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ८ अ० ७ श्लो०)

छप्पय

शौनक बोले—सूत ! होहु चिरजीवी भाई ।
भटकि रहे जगमाहिँ गैल अति सरल दिखाई ॥
मार्कण्डेय चिरायु तात ! कैसे कहलावें ।
कल्प प्रलय नहिँ भई प्रलय जल कस तैरावें ॥
सूत कहें—शौनक ! सुनहु, माया में संभव सकल ।
माया की ही प्रलय में, भये महामुनि अति विकल ॥

विद्या विनय को प्रदान करती है। विद्या पढ़कर जिसमें विनय नहीं आयी, वह उस भारी वृक्ष के समान है जो बढ़ तो बहुत गया है, किन्तु फल जिसमें आते ही नहीं। विनय ही विद्या को चमकाती

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! महामुनि मार्कण्डेय जी ने जब अन्य संस्कारों के क्रम से यज्ञोपवीत संस्कार को अपने पिता से प्राप्त कर लिया तब धर्मानुसार तप और स्वाध्याय से युक्त होकर वेदाध्ययन करते हुए ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करने लगे।"

है, विनय बिना विद्या व्यर्थ है निष्फल है, केवल भार है
जैसे फलवान् वृक्ष नत हो जाता है, वैसे ही विद्यावान् व्यक्ति बड़ों
सम्मुख सदा नत मस्तक रहता है। समस्त जीवधारियों में मनु
ही ऐसा प्राणी है, जिसका सिर ऊपर की ओर है और वह स्वेच्छ
से नीचा भी किया जा सकता है। ऊँचा सिर तो उसीका है जिस
आचरण विशुद्ध हो, दीनता पूर्वक वह किसी के सम्मुख नत
हो। यदि सिर नत हो तो भगवान् के देवताओं के आगे अथ
पूज्य गुरुजनों के आगे जिनका स्वभाव अभिवादन शील है। ब
को देखते ही जिनका सिर स्वतः ही झुक जाता है, दोनों हा
की अञ्जलि स्वयं बँध जाती है, उनके लिये संसार में कुछ भ
असंभव नहीं वे आयु, विद्या, तथा बल सभी कुछ गुरु जनों व
कृपा से ही प्राप्त कर सकते हैं।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! आपने मुझसे महामुनि
मार्कण्डेय का चरित्र पूछा उसे ही मैं आप से कहता हूँ। महाभा
शौनक जी ! मार्कण्डेय मुनि के सम्बन्ध का आपका प्रश्न बड़
ही महत्व पूर्ण है। बहुत से लोगों को इस विषय में शंका हो जात
है। आपके प्रश्न से बहुत लोगों का भ्रम दूर हो जायगा। मार्क
ण्डेय मुनि के प्रसङ्ग में ही मुझे श्री नरनारायण की कथा कहने का
अवसर प्राप्त हो जायगा। भगवान और भक्तों की कथायें कलि-
कल्मष को काटने वाली होती हैं।

आपके ही भृगुवंश में एक मृकण्ड नामक बड़े भारी तपस्वी
मुनि हो गये हैं। ढलती अवस्था में उन महा मुनि के एक पुत्र
उत्पन्न हुआ। उसका नाम मुनिने मार्कण्डेय रखा। तदनन्तर महा
मुनि मृकण्ड वन में रह कर वानप्रस्थान व्रत का पालन करने
लगे। बालक मार्कण्डेय अपने पिता के साथ वन में ही बड़े हुए,
वहीं वे पिता के साथ रहने लगे। बालकमार्कण्डेय बड़े ही सुन्दर,
सरल और सौम्य थे। वन में वे साक्षात् मूर्तिमान् तप ही प्रतीत

होते। उनके सभी अंग सुन्दर और सुगठित थे। जो भी उन्हें देखता वही मुग्ध हो जाता और बिना प्यार किये रह नहीं सकता।

एक दिन वे आश्रम में पिता की गोदी में बैठे खेल रहे थे, कि उसी समय एक मुनि वहाँ आये। बालक मारकंडेय को देख कर वे विमुग्ध हो गये। उस सुन्दर भोले भाले बालक ने हठात् उनके चित्त को चुरा लिया था। वे मुनि ज्योतिष विद्या में पारंगत थे। हस्तरेखा आदि सामुद्रिक शास्त्र का भी उन्हें ज्ञान था। वे बार बार बालक को नख से शिख तक चकित चकित दृष्टि से निहार रहे थे।

मृकण्ड मुनि ने विनीत भाव से पूछा—"ब्रह्मन्! आप मेरे पुत्र की ओर इस प्रकार चकित दृष्टि से क्यों देख रहे हैं।"

उन मुनि ने कहा—"ब्रह्मन्! मैं सामुद्रिक शास्त्र का ज्ञाता हूँ। आपके पुत्र के लक्षणों को देखकर मैं चकित हो रहा हूँ।"

भविष्य की बात जानने की सभी को उत्सुकता रहती है। अतः मृकण्ड मुनि ने जिज्ञासा भरी वाणी में कहा—"ब्रह्मन्! मेरे पुत्र के लक्षण कैसे हैं? आप इसकी रेखाओं को देख कर उनका शुभा शुभ फल मुझ से कहें।"

यह सुन कर वह सामुद्रिक मुनि बोले—"ब्रह्मन् मैं इस बच्चे के शुभ लक्षणों को देखकर चकित हो गया हूँ। एक मनुष्य के शरीर में एक साथ ही इतने शुभ लक्षणों का मिलना अत्यन्त कठिन है। यदि किसी दूसरे के शरीर में इतने शुभ लक्षण होते, तो निश्चय ही वह अजर अमर होता। किन्तु..." इतना कह कर वे मुनि चुप हो गये।

मृकण्ड मुनि ने कहा—"विप्रवर! किन्तु कह कर ही आप चुप क्यों हो गये। इसके आगे भी कहिये। क्या इसके कोई अशुभ लक्षण भी हैं क्या?"

खिन्न मन से मुनि ने कहा—"ब्रह्मन्! एक ऐसा अशुभ

लक्षण इसके पड़ गया है, कि उसका फल सुनकर आपको दुःख होगा।"

उत्सुकता प्रकट करते हुए मृकण्ड मुनि बोले—"हाँ. हाँ, उसे उसे भी बता दीजिये। संकोच करने का काम नहीं, स्पष्ट बता दें कौन-सा अशुभ लक्षण इसमें है।"

ब्राह्मण बोला—"मुनिवर! बताने योग्य तो बात नहीं है, किन्तु न बताने से आपकी उत्सुकता और बढ़ेगी, अतः बताये ही देता हूँ, इसकी एक विशेष रेखा है, इसका फल यह है कि आज के दिन से पूरे छः महीने पश्चात् इसकी अवश्य ही मृत्यु हो जायगी। इसे समझ कर आप ऐसा यत्न करें जिससे लोक परलोक दोनों में इसका कल्याण हो।"

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! इतना कह कर वह ब्राह्मण तो इच्छानुसार किसी दूसरे स्थान को चला गया। मृकण्ड मुनि सोचने लगे—'ऐसा कौन सा उपाय है, जिससे मेरे बच्चे की अल्पायु का योग टल जाय। अभी तो यह पाँच वर्ष का भी नहीं हुआ है। छै महीने पश्चात् इसका मृत्यु योग है पिता के सम्मुख पुत्र की मृत्यु बड़ा ही वीभत्स कार्य है. अल्पायु में ही पिता के सम्मुख पुत्रों की मृत्यु यह बड़े भारी पाप का परिणाम है। अभी तो इसका यज्ञोपवीत भी नहीं हुआ है। ब्राह्मणों का आशीर्वाद अमोघ होता है, यदि किसी प्रकार ब्राह्मण इसे चिरजीवी होने का आशीर्वाद दे दें तो इसका अल्पायु योग टल सकता है।"

यही सब सोचकर महा मुनि मृकण्ड ने अवस्था के पहिले ही इनका यज्ञो पवीत संस्कार कर दिया और फिर सदाचार सिखाते हुए उससे कहा—"देखो, बेटा! तुम जहाँ भी जैसे भी ब्राह्मण को देखो उसे श्रद्धा सहित प्रणाम करो। तुमसे जो बड़े हों सब का अभिवादन करना।"

विनयी पुत्र ने पिता की आज्ञा शिरोधार्य की। वह जहाँ भी

विप्र को देखता वहीं उसे बड़ी भक्ति के साथ विनयावनत होकर प्रणाम करता। उसे गुरुजनों को प्रणाम करने में एक प्रकार का आनन्द आने लगा। इस प्रकार करते करते इसे छै महीने हो गये। छै महीने में तीन दिन ही शेष रह गये।

एक दिन बालक 'मारकंडेय आश्रम के बाहर खड़ा था कि उसे तीर्थ यात्रा प्रसंग में विश्वामित्र, जमदग्नि, भरद्वाज, गौतम, अत्रि, वशिष्ठ और कश्यप ये सात ऋषि आते हुए दिखायी दिये। बालक मारकंडेय ने बड़े उत्साह से प्रसन्नता प्रकट करते हुए अपना नाम गोत्र लेकर इन सातों ऋषियों के पाद पद्मों में क्रमशः प्रणाम किया और सातों ने ही उसे दीर्घ जीवी होने का आशीर्वाद दिया मेखला और दण्ड धारण किये मृग चर्म पहिने हाथ में पवित्री और ब्रह्मदण्ड लिये वह छोटा सा ब्रह्मचारी मूर्तिमान त के सदृश दिखायी देता था। उन सप्तर्षियों में से महामुनि वशिष्ठ बड़े प्यार से उसकी ओर देखने लगे। सहसा वे कुछ चौंक से पड़े और सब ऋषियों को सुनाते हुए बाले—"ऋषियो! एक बड़ी भारी भूल हम लोगों से हो गयी।"

उन मुनियों ने पूछा—"कौन सी भूल हमसे बन पड़ी?"

वशिष्ठ जी ने कहा—"देखो, हम सब लोगों ने इस बालक को दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद दिया है, किन्तु इसका तोआज से तीसरे दिन मृत्युयोग है। हम लोगों को ऐसा कार्य करना चाहिये जिससे हमारा वचन सत्य हो, हमने तो कभी हँसी में भी असत्य भाषण नहीं किया है।"

उन सप्तर्षियों में से एक दूसरे मुनि बोले—"हाँ, हमारा वचन किसी भी प्रकार असत्य न होना चाहिये। ब्रह्माजी के अतिरिक्त इसके मृत्युयोग को कोई टाल नहीं सकता। अतः इस बालक को हम ब्रह्माजी के पास ले चलें।"

सब ने इस बात का समर्थन किया। अब सब ऋषिगण उस बालक को साथ लेकर ब्रह्माजी की सभा में गये। ब्रह्माजी अनेक देवता तथा ऋषियोंसे घिरे हुए अपनी सभामें बैठेथे। वहाँ जाकर सप्तर्षियों ने ब्रह्माजी के पाद पद्मों में प्रणाम किया और बालक मार्कण्डेय ने भी भक्तिभाव से लोकपिता मह ब्रह्माजी के पैर पकड़े। ब्रह्माजी ने बड़ी प्रसन्नता प्रकट करते हुए बालक को प्यार किया और दीर्घायु होने का आशीर्वाद दिया। फिर वे सप्तर्षियों से बोले—"ऋषियों! आज आप लोग सब मिलकर कहाँ से आ रहे हैं और यह ब्रह्मचर्य व्रत को धारण करने वाला सरल सौम्य शिशु कौन है। इसे आप लोग कहाँ के पकड़ लाये हैं?"

ब्रह्माजी की बात सुनकर हाथ जोड़कर वे ऋषि बोले—"भगवन्! हम तीर्थयात्रा करते हुए मृकण्ड मुनि के आश्रम के निकट गये थे, वहाँ यह बालक हमें खड़ा हुआ दिखायी दिया। इसने हम सब को श्रद्धाभक्ति पूर्वक प्रणाम किया और हम सब ने भी इसे चिरजीवी होने का वरदान दिया। पीछे इसके लक्षणों को देखकर हमने समझा कि इसकी तो आज के तीसरे दिन मृत्यु है। इसलिये इसकी मृत्यु को टालने के लिये हम तीर्थयात्रा छोड़-कर बीच में ही इसे लेकर आपकी सेवा में समुपस्थित हुए। यहाँ आने पर आपने भी इसे दीर्घजीवी होने का आशीर्वाद दिया। अब आपका यह वरदान सत्य होना चाहिये।"

यह सुनकर हँसते हुए ब्रह्माजी बोले—"ऋषियों! आप लोग सत्यवादी हैं। स्वप्न में भी आपका कहा हुआ वचन व्यर्थ नहीं हो सकता सो आपने तो इस बालक को जाग्रत अवस्था में आशी-र्वाद दिया है। एक ने नहीं आप सातों ने ही इसे चिरायु होने का वर दिया है। वह मिथ्या कैसे हो सकता है। मेरे प्रसाद से यह बालक अजर अमर हो जाय वेद वेदाङ्गों का ज्ञाता, यशस्वी,

चिरायु तथा पुराणाचार्य होगा। अब आप इसे शीघ्र ही पृथिवी पर इसके माता पिता के समीप पहुँचा दें।"

यह सुनकर सप्तर्षिगण उस बालक को लेकर तथा ब्रह्माजी को प्रणाम करके पृथिवी पर आ गये और आश्रम के निकट बालक को छोड़कर आगे बढ़ गये। इधर बालक मार्कण्डेय को न देखकर उसके माता पिता छटपटा रहे थे और चारों दिशाओं में खोजकरा रहे थे। उसी समय सहसा पुत्र को आते हुए देखकर माता पिता को परम प्रसन्नता हुई। उन्होंने बालक को गोदी में बिठाकर उसका सिर सूंघा और इतनी देर न आने का कारण पूछा। तब मार्कण्डेय जी ने आदि से अन्त तक सभी वृत्तान्त बता दिया। इसे सुनकर माता पिता को अपार हर्ष हुआ। पिता ने पूछा—"बेटा! सप्तर्षि कहाँ चले गये।"

मारकंडेयजी ने कहा—"पिताजी वे ऋषिगण मुझे आश्रम के द्वार पर छोड़कर समीप के ही कुण्ड में स्नान करने चले गये।"

इतना सुनते ही मुनि मृकण्ड दौड़कर उस कुण्ड के समीप गये, वहाँ जाकर उन्होंने सातों ऋषियों की चरणवन्दना की और कृतज्ञता प्रकट करते हुए कहा—"ऋषियो! आपने मेरा बड़ा उपकार किया है। आप मेरा आतिथ्य ग्रहण करें और मेरे योग्य कोई सेवा बतावें।"

ऋषियों ने कहा—"मुनिवर! यह सौभाग्य की बात है, कि आपका पुत्र अजर अमर हो गया। यह सब ब्रह्माजी की ही कृपा से हुआ है अतः यहाँ आप ब्रह्माजी का एक मन्दिर बनवा दें।"

ऋषियों की आज्ञा शिरोधार्य कर मृकण्ड मुनि ने ब्रह्माजी का मन्दिर बनवा दिया। इस प्रकार सबको प्रणाम करने से बालक मारकंडेय दीर्घायु हो गये। जब उन्हें दीर्घायु और पुराणाचार्य होने का आशीर्वाद मिल गया, तब वे अपने पिता से अनुमति लेकर हिमालय में तपस्या करने चले गये। पुण्यतोया भगवती

पुष्पभद्रा के तट पर रहकर वे तप और स्वाध्याय में निमग्न रहकर भगवान् का ध्यान करने लगे। उन्होंने नैष्ठिक ब्रह्मचर्य का बृहद्‌व्रत ले रखा था। वे नित्य नियम से वेदों का स्वाध्याय करते अपने व्रत की पूर्णताके लिये वे जटाओंको धारण करते। मृगचर्म ओढ़ते तथा दण्ड, कमण्डलु, ब्रह्मदण्ड, पवित्री, मूँज की मेखला रुद्राक्ष की माला और कृष्ण मृगचर्म ये ब्रह्मचारियों के उचित वस्तुओं को भी धारण करते। दोनों समय वेद मन्त्रों से सूर्य का उपस्थान करते, अग्निहोत्र करते तथा ब्राह्मणों की सेवा करते हुए अपने आत्मा में श्रीहरि की आराधना करते रहते। मध्याह्न तथा सायंकाल में भिक्षा लाकर उसे गुरुजी को अर्पण कर देते गुरुजी जो भी उसमें से दे देते उसे एक समय केवल शरीर निर्वाह के निमित्त भोजन करते। कभी कभी भिक्षा के अलाभ में या वैसे ही उपवास भी कर जाते। उन्होंने जिह्वा लोलुपता तथा इन्द्रियों को चंचलता पर विजय प्राप्त कर ली थी। तप, स्वाध्याय तथा ईश्वर प्रणिधान के द्वारा क्रियायोग का अनुष्ठान करते हुए वे निरन्तर प्रभु के ध्यान में निमग्न रहते। इस प्रकार अखिलेश अच्युत की आराधना करते हुए वे कालजित् हो गये। उन्होंने मृत्यु पर भी विजय प्राप्त करली।

मारकंडेयजी को इस प्रकार ध्यान मग्न देखकर लोक पितामह ब्रह्मा, भगवान् भृगु, मृत्युञ्जयमहादेव, प्रजापति दक्ष तथा अन्यान्य ब्रह्माजी के मानसिक पुत्र चकित हो गये। वे सबके सब मारकंडेयजी के तप स्वाध्याय की भूरि भूरि प्रशंसा करने लगे। उनका अन्तःकरण तप, स्वाध्याय और संयम के द्वारा राग-द्वेषादि मलों से विमुक्त हो गया था वे निरन्तर भगवान् के अधोक्षज के ध्यान में ही मग्न रहते थे। इस प्रकार योगाभ्यास करते करते उन्हें छै मन्वन्तर हो गये। एक मन्वन्तर में ७१ बार चारों युग बीतते हैं। इस प्रकार छै मन्वन्तर पर्यन्त वे ध्यान में ही लगे रहे। अब

जब यह सातवाँ मन्वन्तर लगा, तब इस सातवें मन्वन्तर के इन्द्र को मुनि की तपस्या पर सन्देह हुआ। इन्द्र सोचने लगे—"संभव है, कि मुनि इतना घोर तप मेरे इन्द्रासन को लेने के ही निमित्त कर रहे हों।" जब किसी को किसी पर शंका हो जाती है, और उससे अपने स्वार्थ में व्याघात पड़ने की संभावना होती है, तो सब प्रकार से उसे नीचे गिराने का वह प्रयत्न करता है। इन संसारी विषय भोगों में यही तो एक बड़ा दोष है। विषय तो भगवान् ने परिमित बनाये हैं और इनके भोग की वासनायें अपरिमित बना दी हैं। कितनी भी भोग सामग्रियाँ क्यों न मिल जायँ, उन्हें स्थायी बनाये रहने का तथा उनसे अधिक प्राप्त करने का मनुष्य सतत प्रयत्न करता ही रहता है। देवताओं के राजा इन्द्र पर भोगों की क्या कमी है। वह यह भी जानता है, जब तक मेरा पुण्य है तब तक मुझे इन्द्रासन से कोई हटा नहीं सकता। पुण्य क्षीण होने पर कोई प्रयत्न करने पर भी मुझे रख नहीं सकता। फिर भी वह जिसे अत्युत्कट तप करते देखता है, उसी को देखकर भयभीत हो जाता है और उसके चिरकाल के संचित तपरूपी धनको अपने तनिक से स्वार्थ के वशीभूत होकर मोहक विषय सामग्री भेजकर नष्ट करा देता है। इसी तनिक से स्वार्थ के निमित्त मनुष्य बड़ी बड़ी जातियों को नष्ट कर देते हैं। उनकी सत्ता को समाप्त कर देते हैं। यह स्वार्थ का भूत मनुष्यों को विवेक भ्रष्ट बना देता है। महामुनि मार्कण्डेय की भी तपस्या को भ्रमवश इन्द्र ने नष्ट करने का निश्चय कर लिया।

उन्होंने कामदेव को बुलाकर कहा—"कामदेव! प्रतीत होता है ये मार्कण्डेय मुनि मेरे इन्द्रासन को लेने के निमित्त ही घोर तप कर रहे हैं। ये मेरे प्रतिद्वन्द्वी प्रतीत होते हैं। तुम किसी प्रकार इन्हें तप से विरत करो।"

कामदेव ने कहा—"देव! जिन लोगों को देख

मिला, वे ही तपस्या कर करके शरीर को क्षीण करते हैं, जिन्हें एक बार भी मेरे आनन्द का अनुभव हो जाय वह फिर सब छोड़कर मेरी ही प्राप्ति में लग जाता है। संसार में ब्रह्मानन्द और विषयानन्द दो ही तो आनन्द हैं। ब्रह्मानन्द का रसास्वादन करने वाले कोई विरले ही होते हैं। नहीं तो लोग तपस्या भी मेरी ही प्राप्ति के लिये करते हैं। मैं कामिनियोंके हृदय में बैठकर बड़े बड़े मुनियों के मन को भी मथित कर देता हूँ। इसीलिये मेरा नाम मन्मथ है। मैं अभी अपनी सेना सहित जाता हूँ और मुनि के मन को मथित करके उन्हें तप से विरत करके-विषय में रत करके आपके समीप आता हूँ।"

इतना कहकर और इन्द्र को प्रणाम करके कामदेव अपने मन्त्री वसंत मलयानिल, रजोगुण के प्रिय पुत्र लोभ तथा मदको साथ लेकर मुनि को तप से विरत करने चला। नाचने गाने को उसने अत्यन्त सुन्दरी अप्सराओं को तथा गाने में अत्यन्त ही निपुण गन्धर्वों को भी साथ ले लिया। अप्सराओं के मन में बैठकर कामदेव मुनि के आश्रम पर पहुँचा। हिमालय का परम पावन पुण्य प्रदेश था, वसंत ऋतु ने वहाँ चारों ओर पुष्प खिला दिये। उनको स्पर्श करते हुए शीतल, मन्द सुगन्धित मलय मारुत बहने लगे। आम्र की मंजरी पर बैठकर कोकिल कुहू कुहू शब्द करके वसन्त के शुभागमन की सूचना देने लगी। प्रकृति स्तब्ध थी एकाकी अरण्य था। स्वर्ग की सर्व सुन्दरी सुरललनायें अपने नूपुरों की झनकार से उस वन्य प्रदेशों को मुखरित करने लगी। वे हावभाव कटाक्ष दिखाकर स्वर्गीय दिव्य नृत्य करने लगीं। गन्धर्वगण उनकी ताल में ताल मिलाकर स्वर्गीय वाद्यों को बजाने लगे। काम अपनी सम्पूर्ण कलाओं को प्रदर्शित करने लगा। पुण्यतोया पुष्पभद्रा नदी भी मदमाती सी बनकर हरहर शब्द करती हुई अप्सराओं की ताल में ताल मिलाकर टेढ़ी मेढ़ी होकर

अपनी तरंगों के द्वारा नृत्य करने लगी। महामुनि चित्रा नामकी शिला पर सुखासीन हुए प्रभु का ध्यान कर रहे थे। उनका पवित्र आश्रम वैसे ही बड़ा मनोरम था। वह लताओं के वितानों से वेष्ठित था। हंस सारस, मोर चकोर तथा अन्यान्य पक्षिगण कल

रव करके उस आश्रम की शोभा बढ़ा रहे थे। यत्र तत्र पवित्र और निर्मल जलाशय स्वच्छ, सुन्दर शीतल सलिल से परिपूर्ण हुए मुनि के मनका प्रतिबिम्ब दिखा रहे थे। उन जलाशयों के शीतल सुखद जल कण बहती हुई वायु में मिलकर प्राणियों के मन में कामभाव को उद्दीप्त कर रहे थे। काम की सहायिका उन अप्सराओं ने मुनि के मन को मोहने के निमित्त मोहमयी माया का जाल फैलाया। कामदेव आम्र की मंजरी में छिपकर अपने

सुमनों के बाणों को मुनि पर छोड़ रहा था। समस्त अप्सराओं में परम रूपवती पुञ्जिकस्थली अप्सरा बिजली को भाँति इधर से उधर आश्रम के शान्त वातावरण को मुखरित करती हुई घूम रही थी वक्षःस्थल के बोझिल होने से तथा कटि प्रदेश के क्षीण होने से वह स्वर्ग लतिका के समान लच जाती, वह क्षीणता तथा चापल्य दोनों का ही प्रदर्शन कर रही थी। क्रीड़ा कंदुक को उछालती हुई रति पति के मनको भी मुग्ध कर रही थी, वह कौशल से अपने उत्तमांगों को अनावृत कर रही थी मलयानिल उसके कार्य में निरन्तर सहयोग दे रहा था। नाना पुष्प मालाओं से गुम्फित उसका धम्मिल क्षीण साड़ी से आवृत था सहसा केशपाश में बँधी उसकी सुगन्धि युक्त सुमनों की माला खिसक गयी। उनपर पड़ा वस्त्र भी कंधे पर आ गया। अब उसकी चोटी कृष्णा नागिनि के सदृश हिलने लगी। उसी बीच उसकी कमर में बँधी करधनी टूट कर गिर गयी। अवसर पाकर मलयानिल ने उसकी अत्यन्त सूक्ष्म साड़ी को उड़ा दिया। कामदेव निरन्तर बाणों की वर्षा कर रहा था। महामुनि ने एक बार आँखें खोलीं और फिर बन्द करलीं। उनके ऊपर इन सब घटनाओं का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ा। कामदेव का सम्पूर्ण प्रयत्न उसी प्रकार निष्फल हुआ जिस प्रकार बालू को पेलकर उसमें से तेल निकालने का प्रयत्न निष्फल होता है अथवा जल को मथने से मक्खन निकालने का प्रयत्न होता है या भाग्यहीन का किया हुआ सम्पूर्ण उद्योग निष्फल हो जाता है।

जब कामदेव ने वहाँ अपनी दाल गलती न देखी, तो वह अत्यन्त भयभीत हुआ। उसे ऐसा लगा मानों मैंने सोते हुए विषधर को व्यर्थ जगाने का प्रयास किया है। अभी तक उसने फण नहीं उठाया है। यदि कहीं क्रुद्ध होकर उसने फुफकार मार दी तो

मेरा सर्व नाश हो जायगा। यही सब सोचकर कामदेव अपनी सेनासहित तुरन्त ही मुनि के आश्रम से लौट आया।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! कामदेव तो बड़ा प्रबल है, इसने बड़े बड़े त्यागी तपस्वियों को बात की बात में विचलित कर दिया है, यहाँ तक कि अपने पिता लोक पितामह ब्रह्माजी को भी इसने नहीं छोड़ा। काम के इतने प्रयास करने पर भी मुनि का मन मोहित क्यों नहीं हुआ? यह तो बड़े ही आश्चर्य की बात है?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! इसमें आश्चर्य की कौन सी बात है, जिनके हृदय में कामारि श्रीहरि सदा निवास करते हैं ऐसे भगवद्भक्त महा पुरुषों के लिये कुछ भी कठिन नहीं।"

शौनकजी ने पूछा—"अच्छा, तो फिर क्या हुआ? कामदेव के पराजित होकर लौटने पर मुनि ने क्या किया?

सूतजी ने कहा—"भगवन्! उनकी ऐसी घोर तपस्या को देखकर बदरी वन में रहने वाले भगवान् नर नारायण मुनि पर अत्यन्त प्रसन्न हुए। जैसे उन्होंने मुनि को दर्शन दिया उस प्रसङ्ग को आगे कहूँगा।"

छप्पय

मुनि मृकण्डु के तनय पुष्प भद्रा तट तपहित।
रहें करें व्रत सदा लगावें हरि चरननि चित॥
छै मन्वन्तर करी तपस्या मन न डिगायो।
देखि घोर तप इन्द्र हृदय में भय अति छायो॥
मलयानिल अरु अपसरा, काम, लोभ, मद, मुनि निकट।
भेजे मुनि आश्रम जहाँ, करहिँ महामुनि तप विकट॥

मार्कण्डेय मुनि को नर नारायण के दर्शन

(१३६२)

तस्यैवं युञ्जतश्चित्तं तपः स्वाध्याय संयमैः ।
अनुग्रहायाविरासीन्नरनारायणो हरिः ॥*

(श्रीभा० १२ स्क० ८ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

सब मिलि कीयो यत्न मोह मुनि मन नहिँ आयौ ।
काम सेन सँग लौटि इन्द्र कूँ वृत्त सुनायो ॥
भयो इन्द्र निस्तेज मनहिँ मन मुनिहिँ सरावै ।
महा तेज तेँ डरै निकट मुनि के नहिँ आवै ॥
मुनि तप तेँ सन्तुष्ट ह्वै, नर नारायन आइकें ।
दयो दरश जब स्वय मुनि, विनय करें सिर नाइकें ॥

विद्या का फल विनय है, धन का फल दान है, धर्म का फल दया है, बल का फल दुखियों का दुख दूर करना है, त्याग का फल शान्ति है, यज्ञ का फल उत्तम लोकों की प्राप्ति है, पांडित्य का फल

---

* श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् नर नारायण ने जब देखा कि मार्कण्डेयजी का चित्त तो निरन्तर तप, स्वाध्याय और संयम में ही निरत है तो उनके ऊपर अनुग्रह करने के निमित्त वे उनके सम्मुख प्रकट हुये।"

ज्ञान दान है, दारा का फल सन्तान है और तप का फल सफल इष्ट की प्राप्ति है। जिस तप से इष्ट की सिद्धि न हो, तप का यथार्थ फल प्राप्त न हो। इष्ट देव का साक्षात्कार न हो तो वह तप केवल इन्द्रियों का शोषण मात्र ही है। जिस इष्ट के उद्देश्य से तप किया वह इष्ट प्रत्यक्ष सम्मुख उपस्थित होकर सफल वर दे दे, तो समझना चाहिये हमारा तप सविधि और यथार्थ हुआ है। जिस तप से इष्ट प्राप्ति न हो या विपरीत फल की प्राप्ति हो तो समझो उसमें दम्भ आ गया है। तपस्या में काम क्रोधादि बड़े विघ्न होते हैं, बड़े बड़े प्रबल प्रलोभन आते हैं, उन प्रलोभनों से बच जाते हैं। वे ही अमृतोपम फल को पाते हैं नहीं तो तप करके भी लोग कोरमकोर रह जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब कामदेव पूरी शक्ति लगाकर भी मार्कण्डेय मुनि की तपस्या में विघ्न न कर सका, तो वह अपना सा मुख लेकर देवेन्द्र के समीप गया और जाकर बोला—"प्रभो! उन महामुनि की तपस्या के प्रभाव के आगे मेरी एक भी युक्ति न चली। मैं उनके मन को मथित करने में समर्थ न हो सका। उन सर्वान्तर्यामी प्रभु को धन्यवाद है, कि मैं सकुशल जीवित लौटकर आपके समीप आ गया, नहीं तो वे मुनि अपने तप के प्रभाव से मुझे भस्म कर सकते थे।"

कामदेव के मुख से मुनि का ऐसा प्रभाव सुन कर देवेन्द्र को परम विस्मय हुआ। उन्हें अपने कृत्य पर लज्जा आयी। अब उन्हें

में विकार नहीं हुआ, तो वे मेरे तुच्छ इन्द्र पद की इच्छा ही क्यों करेंगे।

इधर जब मार्कण्डेय मुनि की तपस्या परिपक्व हो गयी उनके मन में किसी प्रकार की भी सांसारिक कामना नहीं रही तो उनके तप, स्वाध्याय और संयम से सर्वेश्वर श्री नर नारायण भगवान् परम संतुष्ट हुए। उनके चित्त को सुसंयत समझ कर मुनि के ऊपर अनुग्रह करने की इच्छा से मूर्ति नन्दन धर्म सुत ऋषि रूप में अवतीर्ण नर नारायण भगवान् वहाँ प्रकट हुए। तपोधन ऋषियों का स्वरूप ही परम आकर्षक होता है, फिर साक्षात् भगवान् ही दो रूप रखकर मुनि वेष में अवतीर्ण हो जायँ, तो फिर उनकी शोभा का तो कहना ही क्या ? वे दोनों भाई एक ही रूप के थे, दोनों की ही चलन, चितवन, उठन, बैठन, हँसन, मुसकान तथा सभी चेष्टायें समान थीं। दोनों ही चतुर्भुज थे। उनमें नर शुक्ल वर्ण के थे तथा नारायण कृष्णवर्ण के थे। दोनों के ही नेत्र कमल के सदृश विकसित तथा बड़े बड़े थे, दोनों ही मुनियों के सदृश वल्कल वस्त्र पहिने हुए थे तथा कृष्ण मृग के बड़े चर्म को ओढ़े हुए थे। दोनों की ही उँगलियों में मृदुल कुशों की सुन्दरता से बनी हुई पवित्रियाँ शोभा दे रहीं थीं। सुन्दर त्रिवृत यज्ञोपवीत वे पहिने हुए थे। कण्ठ में पद्माक्ष की बड़ी बड़ी मालायें चमक रहीं थीं दोनों के हाथों में सजल कमण्डलु थे, दोनों ही सीधे बाँस का दण्ड धारण किये हुए थे। मार्ग के जीव पैरों तले दब न जायँ, इसके लिये दोनों ही अपने हाथों में जन्तु मार्जनी लिये हुये थे। पिशङ्ग वर्ण की उनकी दिव्य जटायें सूर्य के प्रकाश में विद्युत के

समान दमक रहीं थीं दोनों का ही श्री विग्रह विशाल तथा उन्नति था। दूर से देखने से यही प्रतीत होता था, मानों साक्षात् तप ही दो रूप रखकर मुनि के तप से तुष्ट होकर उन्हें दर्शन देने आ रहे हैं।

उस समय महामुनि ध्यान मग्न थे, सहसा उनका ध्यान खुला। अकस्मात् श्री हरि के स्वरूप भूत, बदरिकाश्रम के अधिष्टातृ देव भगवान् नर नारायण को अपनी ही ओर आते देखकर महामुनि व्यग्रता के साथ उनके सम्मान में उठकर खड़े हो गये इतने में ही भगवान् नर नारायण भी उनके निकट ही आ गये। अपने निकट तपस्वी वेष में भगवान् को देखकर मुनि उनके चरणों में दण्ड के सदृश पड़ गये आज मानों उन्हें अपने तप का प्रत्यक्ष फल मिल गया, आज उनकी चिरकाल की साध पूरी हुई प्रभु के दिव्य दर्शनों से उनकी समस्त इन्द्रियाँ खिल उठीं, सम्पूर्ण शरीर रोमाञ्चित हो उठा, नयनों में नेह का नीर छल छल करके छलकने लगा। अंग प्रत्यंग फड़कने लगा, संभ्रम के कारण हृदय धड़कने लगा। देह, मन तथा समस्त इन्द्रियाँ मानों शान्ति सुधा सागर में निमग्न हो गयीं। वे बार बार भगवान् नर नारायण का अपलक दृष्टि से दर्शन करना चाहते, किन्तु जब ही देखते तब ही आँखें अश्रुओं से भर जातीं दर्शनों में व्यवधान उपस्थित कर देतीं। ज्यों ही वे उन्हें पोंछकर सिर उठाते, त्यों ही वे पुनः भर जातीं, इसी कारण वे उनके भली भाँति दर्शन भी न कर सके। उनका रोम रोम इस प्रकार आकुल हो रहा था, कि भगवान् का कस कर आ-

लिंगन कर लें, उन्हें हृदय से सटाकर अपने में मिला लें। नेत्र चाहते थे, उनकी माधुरी को पी जायँ, रसना चाहती थी उनके मधुमय मकरन्द को चाट लें। अत्यंत उत्कंठा के सहित उठकर वे हाथों की अञ्जलि बाँधे हुये खड़े हो गये। वे कुछ कहना चाहते थे, किन्तु कह नहीं सकते थे वाणी गद् गद् हो रही थी। बड़े कष्ट से वे इतना ही कह सके—"नमो नमः, नमो नमः।"

नेत्रों से अधिक नीर निकलने से तथा देर तक दर्शन करते रहने से मुनि को कुछ कुछ वाह्य चेतना हुई। वे सोचने लगे—"अरे, मैंने भगवान् की पूजा तो की ही नहीं। वे कब से खड़े हैं, उन्हें बैठने को आसन भी नहीं दिया, न चरन ही पखारे न अर्घ्य तथा आचमन के लिये जल ही दिया।" इतना सोचते ही वे कुटी की ओर दौड़े, सुन्दर सा आसन उठा लाये उस पर उन्हें बड़े सत्कार से बिठाया शीघ्रता से सुन्दर गंगाजल ले आये उससे दोनों के चरण पखारे। अर्घ्य देकर आचमन कराया। चन्दन लगाया, सम्मुख धूप जलायी सुगंधित पुष्पों की माला पहिना कर यथा प्राप्त सामग्री से विधिवत् पूजा की।

भगवान् नर नारायण ने मुनि की की हुई पूजा को विधिवत स्वीकार किया, वे मुनि के दिये हुए सुखद मृदुल आसन पर प्रसन्नता पूर्वक बैठ गये। वे कृपा के सागर कृपा वारि से भरे वारिद के समान कृपा की वृष्टि करने के लिये व्यग्र से प्रतीत होते थे। वे जगद् वन्द्य मुनि रूप धारी श्री हरि मुनि को कृतार्थ करना चाहते थे। अपने इष्ट को अपने सर्वथा अनुकूल समझ कर मुनि

बारम्बार उनके अरुण चरणार विन्दों में प्रणाम करते हुए इस प्रकार गद् गद् वाणी से स्तुति करने लगे—

मार्कण्डेय-स्तुति

जग के प्रभु ! तुम एक सहारे।
माता पिता सगे सम्बन्धी, लगें न तुम बिनु प्यारे ॥१॥ जग॰
जगहित नर नारायन बनिकें, कठिन नियम व्रत धारे।
अज, सुर, नर, हर थर थर कापें, भ्रुकुटि विलास तिहारे ॥२॥ जग॰
गुन के जनक, सर्वगत, सबथल, विविध रूप तुम धारे।
सत्वमूर्ति हे सुखमय स्वामिन्, पकरे चरन तुम्हारे ॥३॥ जग॰

माया मोहित जीव न जानें, जानें श्रद्धा वारे।
वेद भेद तुमरो नहिँ पावें, नेति नेति कहि हारे ॥४॥ जग०
जानि अकिञ्चन दरशन दीयो, सब अघ कटे हमारे।
चरन कमल प्रभु पुनि पुनि बन्दत, दीन दरसतें तारे ॥५॥ जग०

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब महामुनि मार्कण्डेयजी ने इस प्रकार गद्गद् वाणी से भगवान् नर नारायण की स्तुति की तब उनमें से नर के बड़े भाई श्रीनारायणजी अत्यन्त प्रसन्नता प्रकट करते हुए मुनि को सम्बोधन करके कहने लगे—मुनिवर मार्कण्डेयजी ! आप समस्त महर्षियों में श्रेष्ठ हैं। तुमने अपने सद्गुणों द्वारा सिद्धि लाभ कर ली है। ब्रह्मन्! तपस्या के द्वारा सिद्धि प्राप्त करना अत्यन्त ही कठिन है कारण कि तपस्या में बड़े बड़े विघ्न आते हैं। तपस्या करते करते इन्द्रियों की शक्ति प्रबल हो जाती है। उस समय सामर्थ्य अधिक बढ़ जाने से नरक का तो भय रहता नहीं। काम का वेग प्रबल होता गया तो तपस्या नष्ट हो गयी। क्रोध आ गया तो तप क्षीण हो गयी, लोभ मोहादि ने धर दबाया तो सब किया कराया चौपट हो गया। तपस्या में बड़े बड़े विघ्न होते हैं, चित्त चंचल हो उठता है, कभी कभी नास्तिकता आकर घेर लेती है, कभी तप से विरत होने पर मन विषयों की ओर दौड़ता है। आपने इन सबका बड़ी तत्परता से ध्यान रखा है और इन विघ्नों पर विजय प्राप्त की है। आपने अपने चित्त की एकाग्रता को नष्ट नहीं होने दिया, मुझमें आपका भक्तिभाव निरन्तर अक्षुण्ण एक रस बना रहा। तपस्या के अतिरिक्त समय में आप निरन्तर स्वाध्याय में निरत रहे। बड़ी कठोरता से आपने इन्द्रियों का संयम किया। इन्हीं सब कारणों से आपको सुदुर्लभ सिद्धि प्राप्त हुई। तपस्या में एक बड़ा विघ्न होता है। यह कामदेव तपस्वियों को आकर बहुत पीड़ा पहुँचाता

है। ऐसा प्रतीत होता है, कि इस कामदेव को तपस्या से वैर है। जहाँ तप का तनिक भी आकर्षण हुआ कि न जाने कहाँ से यह स्त्रियाँ को भेज देता है। यदि कोई साहसी संयमी तपस्वी साधारण स्त्रियों की ओर चित्त नहीं चलाता तो स्वर्गीय परम सुन्दरी अप्सराओं को संग में लेकर चढ़ाई करता है। इन्द्र इस कामदेव को उकसाता रहता है। कितने भी बड़े से बड़े तपस्वी हों जहाँ इस काम ने अपनी माया फैलायी तहाँ वे सब तपस्या आदि को ताक पर रखकर विषयों के दास बन जाते हैं। काम के आगे सभी ने घुटने टेक दिये हैं, किन्तु आपके सम्मुख काम की भी दाल नहीं गली। वह अपना सा मुँह लेकर आपके यहाँ से निराश ही लौट गया। यह आपके निष्कपट संयम का ही प्रभाव है इसलिये मैं आपके इस नैष्ठिक ब्रह्मचर्य के कारण और भी अधिक सन्तुष्ट हूँ।"

हाथ जोड़े हुए मार्कण्डेय मुनि बोले—"प्रभो! मैं क्या कर सकता हूँ करने कराने वाले सब आ रहे हो! जिसको आप उबारना चाहें हाथ पकड़ कर उबार लें। जिसे फँसाना चाहें जाल से निकालकर फँसा दें। नारद और पर्वत तो अम्बरीष राजा की लड़की श्रीमती के फंदे मे फस ही गये थे। उनको आपने धनुष बाण धारण करके उबार लिया। सौभरि ऋषि तो जगत से आँख मीच कर जमुना जल के भीतर सहस्रों वर्ष तपस्या करते थे आपने उनके पचास विवाह करा दिये। मैं नैष्ठिक व्रत का पालन करने वाला कौन होता हूँ। आप ही पालन करावें तब हो सकता है।"

भगवान नारायण बोले—"मुनिवर! आपका कथन सत्य है, जिनकी मुझमें सदा अनुरण भक्ति बनी रहती है, उनका सर्वथा पतन नहीं होता। अच्छा मैं तुमसे सन्तुष्ट हूँ। मेरे आशीर्वाद से तुम्हारा सदा मङ्गल ही होगा। अब तुम मुझसे जो भी अपना अभीष्ट वर हो उसे माँग लो।"

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—"प्रभो ! आप समस्त देवताओं के अधीश्वर देवेन्द्र के भी ईश्वर हैं आप अपने शरणागतों के भय को सदा भंजन करते रहते हैं, आप अपने आश्रितों की रक्षा करते हैं। आप अनादि अच्युत और अखिलेश्वर हैं। आप जो मुझे वर माँगने की आज्ञा दे रहे हैं यह आपकी महत्ता ही है। जब समस्त जगत के जगदीश्वर ही मुझ पर प्रसन्न हैं, तो फिर मुझे अब अन्य सांसारिक वरों की ही क्या आवश्यकता है। आपकी कृपा दृष्टि बनी रहे यही वर मेरे लिये यथेष्ट है।"

भगवान् ने कहा—"मुनिवर ! कृपा तो मेरी तुम्हारे ऊपर है ही। फिर भी संसार में जितने वर देने वाले हैं, मैं उन सबका ईश्वर हूँ, जब सर्वसाधारण स्वामियों का सेवकों को कुछ दिये बिना मन नहीं भरता, तो मेरा मन कैसे भरेगा। तुम्हें कुछ न कुछ वर तो मुझसे माँगना ही चाहिये।"

मार्कण्डेयजी ने विनीत भाव से कहा—"अब महाराज ! मैं क्या वरदान माँगू यह मेरी बुद्धि में ही नहीं समाता। आपने मुझे दर्शन दिया। इससे बढ़कर और क्या होगा। बड़े बड़े देवगण ! समाधि में जिनके चरणार विन्दों का ध्यान करते हैं और ध्यान करते करते जब उनका मन योगधारणा में पूर्ण परिपक्व हो जाता है, तब उन्हें आपके दिव्य चिन्मय चरणारविन्दों का ही दर्शन होता है, किन्तु मेरे नयनों के सम्मुख तो भगवान् प्रत्यक्ष सशरीर विराजमान हैं। अब भी मेरे लिये कुछ माँगने को अवशेष रह गया क्या।"

भगवान् ने कहा—"हाँ, यह सब तो सत्य ही है, फिर तुम मेरी आज्ञा से अपना कोई इच्छित वर माँग ही लो। इससे मुझे प्रसन्नता होगी।"

भगवान् का ऐसा आग्रह देखकर महामुनि विवश हुए। वे

कुछ देर तक सोचते रहे और फिर बोले—"भगवन्! आप नहीं मानते हैं, तो मेरी एक इच्छा है?"

भगवान् ने कहा—"हाँ, हाँ, अपनी उस इच्छा को मुझसे अवश्य कहो उसकी पूर्ति मैं अवश्य करूँगा।"

इस पर महामुनि मार्कण्डेय बोले—"भगवन्! आप जगत् में जितने पवित्र कीर्ति पुरुष हैं, उनके शिरोमणि हैं। मैंने भगवन् आपकी कृपा से आपके तो दर्शन किये, किन्तु आपकी माया के दर्शन नहीं किये। मै आपकी माया के दर्शन करना चाहता हूँ।"

यह सुनकर भगवान् हँस पड़े और हँसते हुए बोले—"मुनिवर! मेरी माया तो बड़ी दुर्बोध है। उसका दर्शन करके तुम क्या करोगे, मेरे दर्शन हो गये ये ही पर्याप्त हैं। माया राँड़ में क्या रखा है, उसका क्या देखोगे?"

मार्कण्डेय मुनि बोले—"भगवन्! यही तो मुझे भी कौतूहल है, कि लोकपालों के सहित यह सम्पूर्ण लोक जिस आपकी माया से मोहित होकर सत्य वस्तु में भेदभाव देखते हैं।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, तुम नहीं मानते तो तुम्हें मेरी माया का दर्शन हो जायगा।" इतना कहकर भगवान् चलने को प्रस्तुत हो गये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब मार्कंडेयजी ने देखा, भगवान् तो अब प्रस्थान करना चाहते हैं, तो उन्होंने फिर से भगवान् की उत्तर पूजा की। मुनि की पूजा को स्वीकार करके और अत्यन्त प्रसन्नता प्रदर्शित करते हुए दोनों मुनीश्वर अपने आश्रम

बदरी वन की ओर चले गये। अब जिस प्रकार मार्कंडेयजी को माया के दर्शन होंगे, उस प्रसङ्ग को मैं आगे कहूँगा।

छप्पय

मुनि की इस्तुति सुनी कहन नारायन लागे।
सिद्ध भये मुनिराज! तिहारे सब भय भागे॥
माँगो जो वरदान देहिँ हम जो तुम चाश्रो।
हमकूँ कछु न अदेय न मन में मुनि सकुचाओ॥
भये दरश सब वर मिले, परसे पद पुनि का कहूँ।
तुमरी माया मोहिनी, कमल नयन! देखन चहूँ॥

—::o::—

मार्कण्डेय मुनि को माया के दर्शन

(१३६३)

तस्यैकदा भृगुश्रेष्ठ पुष्पभद्रातटे मुनेः।
उपासीनस्य सन्ध्यायां ब्रह्मन्वायुरभून्महान् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ९ अ० १० श्लो०)

छप्पय

एवमस्तु कहि भये तिरोहित नर नारायन।
मुनि प्रसन्न अति भये करयो मनको पारायन॥
अति उत्कंठित भये निहारूँ माया अबई।
बरषा भई प्रचण्ड चराचर डूबे सबई॥
सुत मृकण्डु के ही बचे, बहत प्रलय जलमें सतत।
सबरो जग जलमय भयो, भूख प्यास तैं मुनि दुखित॥

भगवान् की माया कैसी विचित्र है। भगवान् ने इसका पार पाया हो तो भले ही पाया हो नहीं तो देव, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, गुह्यक, किंपुरुष, किन्नर, दानव दैत्य असुर, ऋषि, मुनि यहाँ तक

---

* सूतजी कह रहे हैं—"भृगुवंशावतंस शौनकजी हे ब्रह्मन्! एक दिन मार्कण्डेय महामुनि पुष्पभद्रा नदी के तट पर सन्ध्या के समय बैठे हुए भगवान् की उपासना कर रहे थे, कि उसी समय वहाँ परम प्रचण्ड पवन चलने लगा।"

कि लोक पितामह ब्रह्माजी ने भी इसका पार नहीं पाया। वृन्दावन विहारी को वन में बाल क्रीड़ा को देखकर चतुर्मुख ब्रह्माजी भी माया के चक्कर में फँस गये। इन्द्र भी माया मोहित हो गये। माया में कोई बात असंभव नहीं। जैसे मन से चाहें जितनी मिठाइयाँ बना लो उनमें कुछ लगता नहीं। स्वप्न में क्षण भर में कुछ का कुछ हो जाय इसमें कुछ भी प्रयास नहीं प्रयत्न नहीं। इसी प्रकार माया में क्षण भर में सृष्टि हो जाय क्षण भर में विलीन हो जाय। माया का कुछ दार्शनिकों ने अर्थ किया है या मा अर्थात् जो कुछ न होते हुए भी भासित हो उसे माया कहते हैं। जैसे बाजीगर तुरन्त आम की गुठली से पेड़ बना देता है, पत्ता लगा देता है, फल लगा देता है, फिर कुछ नहीं। इसी प्रकार माया में सब कुछ दीखता है, किन्तु तत्वतः विचार करो तो कुछ भी नहीं है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! जब भगवान् नर नारायण महामुनि मार्कंडेय को माया दर्शन का वरदान देकर बदरिकाश्रम को चले गये, तब मुनिवर अपने आश्रम में आकर सुखपूर्वक रहने लगे। उनके मनमें चटपटी लगी हुई थी, कि कब भगवान् की माया के दर्शन हों।

वे नित्य नियमानुसार पूर्ववत् सूर्य, चन्द्रमा, पृथिवी, जल, तेज, वायु आकाश तथा चित्त में सर्वत्र श्रीहरि का ही ध्यान करने लगे। वे सब में अपने इष्ट का ध्यान करते थे। अब वे कृतकृत्य हो चुके थे, उन्हें भगवान् के दर्शन मिल चुके थे, इसलिये उनका हृदय प्रेम से परिपूर्ण हो गया। पूजा करते करते कभी कभी उनके हृदय में प्रेम का प्रवाह इतना उमड़ता कि उसमें वह जाते, प्रेमार्णव में निमग्न हो जाते, उस समय उन्हें बाह्य जगत् का भान ही नहीं होता था, वे बाह्य पूजा पाठ सभी को भूल जाते, किन्तु वे माया के दर्शनों को उत्सुक बने रहते।

एक दिन की बात है, कि वे सायंकालीन सन्ध्या करने के लिये पुण्य सलिला भगवती पुष्पभद्रा के तट पर बैठे हुए थे। वे भगवान् के ध्यान में निमग्न थे, उसी समय उन्हें दिखायी दिया कि बड़े प्रबल वेग से आँधी आ रही है। पवन के प्रचण्ड वेग से दशों दिशायें व्याप्त हैं, केवल आँधी ही आकर रह जाय, सो भी बात नहीं है, उस परम प्रचण्ड महा भयंकर वायु के पीछे जल भरे मेघ आकाशमें इस प्रकार उमड़ घुमड़ रहे हैं जैसे बड़े बड़े डील डौल वाले काले काले हाथी आकाश में उड़ते हुए चिंघाड़ मार रहे हों। मेघों में से बिजली उसी प्रकार कड़क रही थी मानों घोर अंधकार में उल्कामुख प्रेत नृत्य कर रहे हों। कुछ ही काल में बड़ी भयंकर मूसलाधार वर्षा होने लगी। हाथी की सूँड़ के समान, अन्न के छिद्र में से गिरती हुई धारा के समान जल की मोटी मोटी धारायें अविरल गिरने लगीं। क्षण भर में समस्त पृथिवी जलमयी बन गयी। अब न तो मनुष्य, पशु, पक्षी तथा अन्यान्य जन्तु ही दिखायी देते थे और न वृक्ष, पर्वत तथा अन्यान्य पार्थिव पदार्थ। चारों समुद्र मिलकर एक हो गये थे। वायु के प्रबल वेग से उठती हुई उत्ताल तरंगें आकाश को स्पर्श कर रही थीं तरंगों के टकराने से घोर गम्भीर घोष होरहा था। समस्त पृथिवी को सलिल ने ग्रस लिया था। अंडों से उत्पन्न होने वाले पक्षी सर्प आदि, स्वेद (पसीना) से उत्पन्न होने वाले खटमल जूँआ आदि, जरा नाम की झिल्ली से लिपट कर उत्पन्न होने वाले मनुष्य पशु आदि तथा पृथिवी को फोड़कर उत्पन्न होने वाले वृक्ष आदि ये चारों ही प्रकार के जीव जल में विलीन हो गये थे, प्रचण्ड पवन, मेघों के गर्जन का भयंकर शब्द तथा प्रलय कारिणी विद्युत् की भयावनी चमक दमक से महामुनि मार्कंडेयजी अत्यन्त ही व्यथित हुए। वे पुष्पभद्रा तट पर बैठे थे, उनके देखते देखते समस्त चराचर जगत् जल में विलीन हो रहा था, किन्तु वे स्वयं सावधान हुए अपने

आश्रम के निकट सरिता के तट पर अटल आसन लगाये यह दृश्य देख रहे थे।

प्रलय का रोमाञ्चकारी दृश्य उन्होंने स्वयं अपनी आँखों से देखा था। प्रथम उन्होंने देखा बड़े वेग से पवन चला है, फिर भयंकर वर्षा हुई है, चारों समुद्र मिलकर एक में हो गये हैं। प्रलय कालीन अपार जल राशि आँधी के कारण क्षुभित हो रही है ऊँची ऊँची तरंगोंने उमड़ घुमड़कर द्वीप और वर्षों की सीमा को तोड़ दिया है। पृथिवी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, ग्रह, नक्षत्र, तारागण तथा दशों दिशाओं का विभाग नहीं रहा है। जिधर देखो तिधर जल ही जल दिखायी देता है। मार्कंडेयजी ने देखा केवल मुझे छोड़कर संसार में कुछ भी शेष नहीं है। इस पूरे संसार में केवल मार्कंडेय मुनि ही बचे हुए हैं। इतने में ही एक बड़ी सी लहर आयी वह महामुनि मार्कंडेय को भी बहा ले गयी। अब तो मुनि उस अपार समुद्र में उसी प्रकार तैरने लगे जिस प्रकार कोई जल जन्तु समुद्र के ऊपर तैर रहा हो। मुनि की बड़ी बड़ी सुनहरी जटायें अस्त व्यस्त हुई इधर उधर छिटक रहीं थी। वे यह नहीं समझ सके मैं क्यों बहा जा रहा हूँ, किस ओर जा रहा हूँ। भगवान् की माया से डूबते तो नहीं थे, किन्तु प्रचंड तरंगों की चपेट से इधर से उधर बह जाते। उन्हें दिशाओं का ज्ञान नहीं रहा, कर्म करने की उनकी शक्ति नष्ट हो गयी, वे जडान्धवत् इधर उधर भ्रमण करने लगे।

समुद्र में कहीं बड़ी बड़ी मछलियाँ दिखायी देती थीं कहीं द्वीपों के समान मकर, कच्छप तिमिङ्गिल आदि भयंकर जीव जन्तु दृष्टिगोचर होते थे चारों ओर उठे बवंडर के घोर तम में, आँधी से अपहृत अपार अंधकार में दैवेच्छा से भटकने लगे। वे क्षुधा पिपासा से व्याकुल बने हुए थे, मकर तिमिङ्गलों के भय से भयभीत हो रहे थे तरंगों की चपेटों से श्रान्त बन गये थे, अप्रत्याशित घटना से विमूढ़ से बन गये थे। इस प्रकार वे पृथिवी तथा

आकाश के ज्ञान से विहीन होकर प्रवाह में तैरने उतरने लगे। कभी वे जल के भयंकर आवर्तों में पड़ जाते, कभी उत्ताल तरङ्गों से ताड़ित होकर तट की खोज करते, किन्तु वहाँ तट कहाँ था, वहाँ तो सर्वत्र अपार अगाध जलराशि ही जलराशि थी। वे चारों ओर जल ही जल देखकर कभी शोकाकुल हो जाते, कभी आश्रम की याद आ जाती, भजन पूजन के छुट जाने से संमोह हो जाता, कभी आपस में ही एक दूसरे को खाकर जीने वाले जल जन्तुओं को देखकर भयभीत हो जाते दुःख सागर में निमग्न हो जाते। कभी सोचते इतनी भारी भारी लहरें उठ रही हैं, किंतु मैं डूबता नहीं, मेरे मुख में पानी भी नहीं भरता, मुझे कोई जलजन्तु खाता भी नहीं, इन बातों को सोचकर कभी आन्तरिक सुख भी होता। कभी फिर अपार जलराशि को देखकर काँपने लगते, कभी कभी ऐसा प्रतीत होता कि मैं मृत्यु के मुख में जा ही रहा हूँ, किंतु फिर बच जाते। कभी शरीर में खारा जल लगकर चिर चिराने लगता। कभी जल से शरीर शून्य सा हो जाता, तथा कभी और भी नाना प्रकार की व्याधियाँ शरीर में प्रकट हो जातीं। उन नाना भाँति की व्याधियों से प्रपीड़ित होकर मुनिवर व्याकुल हो जाते।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! इस प्रकार मार्कंडेय जी उस प्रलय सागर में सैकड़ों सहस्रों तथा लाखों वर्षों तक ये चक्कर ही लगाते रहे। उन्हें पता ही नहीं चला मैं कितने युगों तक इस जल में घूमा हूँ।

एक दिन की बात है, कि महामुनि उस अगाध जलराशि में बहते बहते बहुत दूर पहुँच गये। वहाँ उनको समुद्र के बीच में एक टीला सा दिखायी दिया। चिरकाल के पश्चात् पृथिवी को देखकर मुनि का मनमुकुर खिल उठा। उन्होंने ध्यानपूर्वक देखा उसी टीले पर नीले नीले पत्तों वाला एक नन्हा सा वटवृक्ष है। उसमें बड़े चौड़े चौड़े अत्यन्त ही कोमल नवीन दो तीन पत्ते लगे

हुए हैं। वह अक्षयवट इतना सुन्दर और सलौना था, कि उसके दर्शन मात्र से ही मुनि के समस्त ताप संताप मिट गये। उस वट-वृक्ष की उत्तर पूर्व की शाखा पर एक पुट पत्र में मुनि ने एक नन्हें

से सुन्दर से सलौने से शिशु को क्रीड़ा करते देखा। वट पुट पत्र पर अपने करारविन्द से पदारविन्द को पकड़कर मुखारविन्द में रखकर चूमते हुए उस अद्भुत शिशु को देखकर मुनि अत्यंत ही विस्मित हुए।

वह बालक अद्भुत था, उसकी शोभा अवर्णनीय थी, उसके सर्वाङ्ग सुन्दर, सुडौल और सलौने थे, वह अपनी दिव्य कान्ति से वहाँ के तम को दूर भगाये हुए था। उसका निर्मल वर्ण महा-मरकत मणि के समान श्याम था। मुखार विन्द अत्यंत ही

आकर्षक तथा मनोरम था । छोटी सी सुडौल ग्रीवा शंख के समान उतार चढ़ाव की थी । अन्य अङ्गों की अपेक्षा उसका वक्षः स्थल विशाल तथा शोभायुक्त था । सुन्दर छोटी सी नुकीली नासिका से मुखारविन्द की शोभा अत्यंत बढ़ गयी थी । बड़े बड़े विशाल प्रफुल्ल नयनों के ऊपर धनुषाकार टेढ़ी भौंहें अत्यंत ही भली प्रतीत होती थीं । मुखारविन्द पर छोटी छोटी घुँघराली लटें लटक रही थीं । वे श्वास प्रश्वास लेने से हिल रही थीं । मानो नृत्य कर रहीं हों । उस सुघड़ शिशु के दोनों कान शंख के समान भीतर से वलयाकार थे, उनमें अर्धप्रफुटित अनार के पुष्प सुर से हुए थे । मुख पर सुधासदृश मंद मंद मुसकान छिटक रही थी जब वह श्वेत वर्ण की आभा विद्रुम के सदृश रक्तवर्ण के गुदगुदे रसीले अधरों की आभा से टकराती तो एक अरुण वर्ण की विचित्र ही आभा प्रस्फुटित होती । विशाल और बड़े बड़े कमल नयनों के कोये कमल के भीतरी भाग सदृश कोमल चिकने और लाल वर्ण के थे । उसकी चितवन में टोना था वह जिधर ही देख देता मानों रस का स्रोत ही बहा रहा हो । उसका सुन्दर उदर पीपल के पत्ते के सदृश गोल तथा मनोहर था, उसमें वलयाकार गंभीर नाभि अत्यंत ही भली प्रतीत होती थी । बार बार श्वास प्रश्वास लेने से उदर में पड़ी त्रिवली हिल रही थी, इससे वह चंचलमीन के फुदकने के कारण हिलते हुए सरोवर के जल के समान चंचल प्रतीत होता था । मुनि ने देखा, वह नन्हा-सा बालक निर्भय होकर उस वट के पुट पत्र पर अपने हाथ से पैर के अँगूठे को मुख में देकर स्वाद के सहित उसे चुचुर चुचुर करके चूम रहा है । मुनि तो निर्णय ही न कर सके कि यह बालक कौन है । इस वृक्ष के पत्ते पर एकाकी यहाँ क्यों पड़ा है । यह रोता नहीं हँस रहा है । इसे भय नहीं किन्तु सभी भयों को रहा है ।

उस बालक के दर्शन करते ही मुनि के शोक, मोह, दुःख, भय तथा सभी प्रकार के पाप संताप नष्ट हो गये। इतने दिनों तक वे जो उत्ताल तरंगों की चपेट खाते खाते श्रमित हो गये थे, अब उनका सभी श्रम जाता रहा। हृदय आनंद में विभोर हो गया, म्लान मुख प्रफुल्लित तथा विकसित हो उठा नेत्र आनन्द से चमकने लगे, समस्त शरीर रोमाञ्चित हो गया। वे निर्णय ही न कर सके कि मैं क्या देख रहा हूँ। बालक देखने में तो छोटा लगता था, किन्तु उसकी सभी चेष्टायें अलौकिक थीं, सभी भाव अद्भुत थे। अब वे उससे कुछ पूछने की बात मन में सोचने लगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब जिस प्रकार मार्कण्डेय महामुनि को बालमुकुन्द भगवान् के उदर में विश्वरूप का दर्शन होगा, उस प्रसंग को मैं आगे कहूँगा। आप सब समाहित चित्त से इस पुण्य प्रसंग को सुनने की कृपा करें।"

छप्पय

निरख्यो तब वट वृक्ष फिरत जब इतउत भटकत।
मरकत मनि के सरिस सुघर शिशु तापै विहरत॥
परे पत्रपुट श्याम चरन कूँ मुख तैं चूसत।
चितवत ह्वै अति चकित प्रभा तैं सब अँग विकसत॥
करि दरशन संतापश्रम, शोक, मोह सब नसि गये।
श्याम सलौने सुघर शिशु, मुनि के मन में बसि गये।

—::::—

बालमुकुन्द के उदर में विश्वरूप दर्शन

(१३६४)

तावच्छिशोर्वै श्वसितेन भार्गवः,
सोऽन्तः शरीरं मशको यथाविशत् ।
तत्राप्यदोन्यस्तमचष्टकृत्स्नशो-
यथा पुरामुह्यदतीव विस्मितः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ६ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

ज्यों ही सम्मुख गये श्वाँस तब शिशु ने लीन्हीं ।
घुसे नासिका द्वार सृष्टि भीतर सब चीन्हीं ॥
भू, नभ, ग्रह, गिरि, द्वीप, असुर सुर सबहिँ निहारे ।
मुनि अति विस्मित भये श्वाँस तजि फेरि निकारे ॥
देख्यो मुनि वट प्रलय जल, शिशु मन हर क्रीड़ा करत ।
दौरे आलिङ्गन निमित, लीन भयो वट शिशु तुरत ॥

जो सर्वज्ञ है सर्वमय है उसमें भीतर बाहर का भेदभाव नहीं रहता। अग्नि का जलता हुआ अंगार है उसके भीतर भी अग्नि है बाहर भी अग्नि है। जमें हुए जल की शिला है, उसके भीतर

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महामुनि मार्कण्डेय जी ज्यों ही कुछ पूछने उन बालमुकुन्द शिशु के सम्मुख गये, त्यों ही उनकी श्वास से मुनि मच्छर के सदृश उनके उदर में चले गये। उदर में जाकर उन्होंने इस जगत् को ज्यों का त्यों वहाँ वैसा ही देखा जैसा प्रलय से पूर्व बाहर देखा था। इसे देखकर वे परम विस्मित हुए और मोहित भी हो गये।"

भी जल है बाहर भी जल है, जल के अतिरिक्त उसमें कुछ भी नहीं है। भीतर बाहर का भेद भी कल्पित ही है। इसी प्रकार इस जगत् में भीतर बाहर सर्वत्र वे ही श्रीहरि व्याप्त हैं। लोग उनकी मोहिनी माया के चक्कर में फँसकर जगत् को श्रीहरि से भिन्न भिन्न देखते हैं। जो माया के स्वरूप को भली भाँति जान गया, वह मायापति को भी जान जायगा। संसार में देश, काल तथा कार्य कारण भाव की कल्पना माया से ही है। शुद्ध ब्रह्म में तो न देश है न काल है, न कार्य है न कारण। वहाँ तो आनन्द ही आनन्द है। निरानन्द की सृष्टि तो इस राँड़ माया ने कर दी है। इस ठगिनी के यथार्थरूप को जो जान जाता है, उससे यह लजा जाती है। घूँघट काढ़ लेती है, फिर मुँह नहीं दिखाती। दौड़ कर घर में छिप जाती है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! प्रलय सागर में जब महामुनि मार्कण्डेय जी ने बाल मुकुन्द भगवान् के वट पत्र पर दर्शन किये तो वे कुछ पूछने के निमित्त उनके सम्मुख आये। वे कुछ पूछना चाहते ही थे, तभी तक बालक ने एक स्वाँस छोड़ी। श्वास छोड़ कर ज्योंही प्रश्वास ली त्यों ही मार्कण्डेय जी मच्छर के समान नासिका द्वार से उन बालक के उदर में चले गये।

मुनि की स्मृति नष्ट नहीं हुई थी, उन्हें सब ज्ञान था, प्रलय कालीन एकार्णव हुए सलिल में कितने दिन घूमे इसका भी उन्हें बोध था और अब नासिका द्वार से इस मनोहर बालक के उदर में प्रवेश कर गये हैं यह भी उन्हें ज्ञात था। भीतर जाकर जो

उन्होंने देखा उसे देखकर तो वे अत्यन्त ही विस्मित हुए। प्रलय से पूर्व जैसा संसार उन्होंने बाहर देखा था, वैसे का वैसा ही संसार इस शिशु के उदर में विद्यमान है। वैसा ही आकाश है, वैसा ही पवन चल रहा है। वैसे ही सूर्य चन्द्र तथा अग्नि विद्यमान हैं। कूप, नदी, नद तथा समुद्रों में वैसा ही जल भरा है। वैसी ही

शस्यश्यामला और ऊबर खाबर भूमि है। पुर, नगर, खेट, खर्वट, ग्राम, व्रज, घोष तथा अरण्य आदि विद्यमान हैं। स्वर्ग, नरक, ग्रह, नक्षत्र, तारागण, पर्वत, सागर, द्वीप, वर्ष, दिशा, विदिशा, देश, पुर, पत्तन, आश्रम, वर्ण, मनुष्य, पशु, पक्षी, वृक्ष, सरीसृप,

यज्ञ, व्यापार, शासन, नीति, सेवा, शब्द, रूप, रस, गंध, स्पर्श, कहाँ तक गिनावें संसार में जो भी कुछ होता है, वह सब बालक के उदर में अवस्थित है। पञ्चभूत तथा भूतों से निर्मित भौतिक पदार्थ, क्षण, लव, निमेष, पल, घड़ी, प्रहर, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, युग, मन्वन्तर तथा कल्पों की कल्पना से युक्त काल का वहाँ व्यवहार हो रहा है। जो भी उन्हें दिखायी दे रहा था, सत्य के ही सदृश दीखता था। उसमें तनिक भी बनावट नहीं थी। भीतर भी उन्होंने बड़े बड़े शृगों वाले हिमालय पर्वत को भी देखा, जिसमें से असंख्यों झरने झर रहे हैं, बहुत-सी नदियाँ निकल रही हैं। उन नदियों में उन्होंने अपनी पुण्य भद्रा नदी को भी देखा। उसमें जो जो मुनि निवास करते थे, वे भी सबके सब दिखायी दिये। कोई भी ऐसी बात नहीं थी जो बाहर न देखी हो। सम्पूर्ण चराचर विश्व उन्हें बाल मुकुन्द भगवान् के उदर में दिखायी दिया। ज्यों ही वे चकित दृष्टि से अपने आश्रम को निहार रहे थे, त्यों ही बालक ने फिर स्वाँस छोड़ी। उसके स्वाँस के साथ नासिका द्वार से फिर बाहर आ गये। बाहर आकर क्या देखते हैं, कि वही प्रलय कालीन समुद्र हिलोरें मार रहा है। वे समुद्र के जल में गिर गये। वही टीला उस पर वही नन्हा सा वट वृक्ष, वृक्ष के पत्र पुट पर शयन करता हुआ वही सलौना शिशु उन्हें दिखायी दिया। फिर बालक ने प्रस्वास ली तो फिर उसके उदर में चले गये, जब उसने स्वाँस छोड़ी, तो फिर बाहर आ गये। इस प्रकार वे छई बार भीतर बाहर हुए। सातवीं बार उन्होंने बालक को देखा

वे अपनी प्रेमामृतमयी मुसकान के सहित कटाक्ष दृष्टि से मुनि को निहार रहे हैं। इतना प्रेम प्रकट कर रहे हैं, मानों मुनि को पी जायँगे बालककी वह अद्भुत छटा नयनों द्वारा मुनिके हृदय में प्रवेश कर गयी, वे अपने प्रेमावेग को सम्हालने में समर्थ न हो सके। दौड़कर ज्यों ही वे उस शिशु को हृदय से सटाना चाहते थे, ज्यों ही वे उनका दृढ़तर आलिंगन करने को बड़े क्लेश से आगे बढ़े त्यों ही न वहाँ वह बालक है न टीला और न वह वट वृक्ष ही वह सम्पूर्ण लीला ही समाप्त हो गयी। जिस प्रकार किसी अत्यंत भूखे पुरुष के सम्मुख से परसी हुई थाली उठा ली जाय, जिस प्रकार दरिद्र को अनंत धनराशि देकर तत्काल ही उससे छिनाली जाय, जिस प्रकार अत्यंत कामातुरा के सम्मुख से उसका प्राणपति हटा दिया जाय, जिस प्रकार अत्यंत पिपासित को सुन्दर शीतल जल दिखाकर फिर उस घड़े को उसके सम्मुख फोड़ दिया जाय, इन सब की जैसी दशा होती है, वैसी ही दशा उस समय महामुनि मार्कण्डेय जी की हुई। अपने सम्मुख उन वट पत्र पुटशायी श्याम शिशु को न देखकर वे भौचक्के से बने इधर उधर निहारने लगे। अब तो उनके आश्चर्य का ठिकाना ही न रहा, न तो वहाँ प्रलय कालीन समुद्र है, न बालक न वट वृक्ष, मुनिवर अपने आश्रम के समीप पुष्प भद्रा नदी के तट पर बैठे हुए सन्ध्या कर रहे हैं। प्रलय का दृश्य देखने के पूर्व जो उन्होंने पुष्पों के सहित अर्घ्य दिया था वे अर्घ्य पुष्प पुष्प भद्रा नदी में अठखेलियाँ कर रहे थे। कहाँ तो सातबार प्रलय हो गयी, करोड़ों अरबों वर्ष बीत

गये, कहाँ अभी एक क्षण भी नहीं हुआ। वे उठकर अपने आश्रम में चले गये। आश्रमस्थित मुनियों ने कहा—"ब्रह्मन्! आज आप अत्यंत ही शीघ्र नदी से लौट आये। नित्य तो बड़ी देर से लौटते थे क्या आज सायंकालीन जप नहीं किया।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! अपने आश्रम के ऋषियों के मुख से ऐसा प्रश्न सुनकर मार्कण्डेय जी को और भी अधिक विस्मय हुआ। अब वे समझ गये, यह सब श्रीमन्नारायणका रचा हुआ योगमाया का वैभव है। यही भगवान् की दैवी माया है। मैंने जो भगवान् से माया दर्शन की इच्छा की थी, वही, कृपा करके उन्होंने पूरी की। अब मैं और किनकी शरण में जाऊँ, जो इस माया के ईश हैं। जिनकी यह माया चेरी है उन मायेश की ही शरण में मैं जाता हूँ। वे ही मेरी रक्षा करेंगे, वे ही मुझे अपने चरणों की सन्निधि में रखेंगे। "हे प्रभो! आपकी माया अपरम्पार है, ब्रह्मादिक देव भी उसका पार नहीं पा सकते। बड़े से बड़े ज्ञानी भी आपकी माया में मोहित हो जाते हैं, क्योंकि यह माया सर्वथा सत्य-ही प्रतीत होती है। किसी को इस भ्रम का भेद प्रतीत नहीं होता, किन्तु जो शरणागत है, जिन्होंने एकमात्र आपके ही चरणों की शरण गह ली है, उनका यह माया कुछ भी बिगाड़ नहीं सकती, क्योंकि आपका नाम शरणागत प्रति पालक है, जो सब कुछ छोड़कर एकमात्र आपकी ही शरण में आ जाते हैं। उनका प्रतिपालन करने के लिये तो आप को विवश होना ही पड़ता है। उनके दुःखों को दूर करने को तो आप बाध्य ही हैं। ये जो आपके युगल मृदुल चरण हैं इनमें शरणागतों को

सदा से आश्रय मिलता आया है, अतः मैं इन्हीं की शरण लेता हूँ हे हरि ! मेरी रक्षा करो।" इस प्रकार मुनिवर मार्कण्डेय मन से ही भगवान् की स्तुति करने लगे। मुनि को माया के दर्शन भगवान् नारायण की कृपा से हुए थे। भगवान् से उन्होंने माया दर्शन का वर प्राप्त किया था। जिस प्रकार मुनिवर हरि ने कृपा की उसी प्रकार सदाशिव भोलेनाथ पार्वती पति हर ने भी कृपा की। मायादर्शन के अनंतर उन्हें पार्वती सहित वृषभध्वज भगवान् शङ्कर के भी दर्शन हुए। जिन पर घनश्याम की कृपा हो जाती है, उनपर सभी कृपा करते हैं। सभी उन पर अनुग्रह की वृष्टि करते हैं।"

यह सुनकर शौनक जी ने पूछा—सूतजी ! हमारे वंशज महामुनि मार्कण्डेय पर भगवान् महादेव ने कैसे कृपा की ? किस प्रकार पार्वती सहित परमेश्वर ने उन्हें दर्शन दिये। कृपा कर लगे हाथों इस पुण्य प्रसङ्ग को भी हमें सुना दें। मार्कण्डेय जी की कथा तो बड़ी ही अद्भुत है यह तो श्रोता वक्ता दोनों के ही लिये परमहित कर है, इसके श्रवण से तो माया जनित संसार की निवृत्ति होती है। भगवान् वासुदेव के चरणों में अनुराग होता है।

सूतजी ने कहा—"अच्छी बात है, महाराज भगवान् शङ्कर ने मार्कण्डेय मुनि पर कैसे कृपा की अब मैं इसी पुण्य प्रसंग को सुनाता हूँ, आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

प्रलय-सलिल नहि रह्यो पूर्ववत जगत लखायो।
माया दरशन समुझि श्याम चरननि सिर नायो॥
अक्षयवट पुट पत्र करें क्रीड़ा शिशु के सम।
उदर माँहि सब दृश्य होहिँ मायाते जगभ्रम॥
माया लखी महेश की, भये फेरि मुनि भ्रम रहित।
तब वृष चढ़ि शङ्कर तहाँ, आये पारवती सहित॥

—:o:—

मार्कण्डेय मुनिपर कपर्दी की कृपा

(१३६५)

तमेवं निभृतात्मानं वृषेण दिविपर्यटन् ।
रुद्राण्या भगवान् रुद्रो ददर्श स्वगणैर्वृतः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १० अ० ३ श्लो०)

छप्पय

शिव कहें-'सरवेस ! भक्त मुनि कूँ वर देवें ।
शिव बोले-'ये भक्त मोक्ष तक कूँ नहिं लेवें ॥
हरिहिय धारे इननि फेरि का इनिकूँ दुक्खो ।
साधु समागम लोभ बात कछु सुखद करुक्खो ॥
मुनि ध्यावैं सरवेश कूँ, इष्ट नहीं जब हिय लखे ।
खोलि नयन सम्मुख तबहिं, शिवा सहित शंकर दिखे ॥

भक्त और भगवान में भक्त को ही बड़ा बताया है, क्योंकि भगवान् भक्त से कुछ चाहते हैं। भगवान् चाहते हैं भक्त अपना तन, मन, धन, तथा अन्य सभी वस्तुओं को मुझे समर्पण करदे।

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! जब मार्कण्डेयजी को भगवान् की माया के दर्शन हो गये तब वे एकाग्र चित्त से अपने आश्रम में बैठे थे तभी अपने गणों से घिरे हुए नन्दी पर चढ़े पार्वती सहित शिवजी ने उन्हें देखा। वे पार्वती के सहित आकाश मार्ग से कहीं घूम रहे थे।"

माता, पिता, भाई, बन्धु, कुटुम्ब, परिवार सभी से नाता तोड़कर मुझसे ही सम्बन्ध जोड़ ले। समर्पण में तनिक-सी भी त्रुटि होती है, तो भगवान् नाक भौं सिकोड़ने लगते हैं। दानवीर बलि को बाँधते समय ब्रह्माजी से भगवान् ने स्पष्ट कह दिया था—"ब्रह्मन्! जिस पर मैं कृपा करता हूँ, उसका सम्पूर्ण धन अपहरण कर लेता हूँ, क्योंकि धन मद से उन्मत्त होकर पुरुप मेरा तथा पुण्य लोकों का तिरस्कार करने लगता है।" भगवान् पक्के व्यापारी हैं, जबतक दो अंगुल की भी त्रुटि होती है, तब तक बन्धन में नहीं बँधते। वे कहते हैं—"देखो, भैया! मुझे छल कपट अच्छा नहीं लगता मुझे तो निरमल मन वाला पुरुप प्यारा लगता है। मैं जिस पर कृपा करूँगा उसका सर्व प्रथम सर्वस्व हथिया लूँगा।"

इस प्रकार भगवान् तो भक्त का सर्वस्व चाहते हैं, किन्तु भक्त भगवान से कभी भी कुछ चाहता नहीं। जो भगवान् से जितना ही चाहता है उसकी भक्ति में उतनी ही त्रुटि है। प्रह्लाद पर प्रभु प्रसन्न हुए और उनसे वर माँगने को कहा। उन्होंने बहुत मना किया—"महाराज, कृपा करो, आप अपना काम करो, मुझे वर फर कुछ भी नहीं चाहिये।" भगवान् अड़ गये। उसकी चिरौरी विनती करने लगे—"भैया! कुछ तो माँग ले। अपने लिये न सही मेरे ही ऊपर कृपा कर। तू कुछ माँग लेगा तो मुझे सन्तोप हो जायगा।" भगवान् का हृदय धुकुर पुकुर कर रहा था, कि मैं जहाँ जाता हूँ वहीं हाथ पसार देता हूँ यदि भक्त ने कुछ न माँगा, तो सदा मेरी आँखें नीची ही बनी रहेंगी। मँगता की आँखें ऊपर उठ ही नहीं सकती। हाँ बदले में यह भी कुछ माँग ले तो दोनों बराबर हो जायँ। भगवान् यही दाँव पेच लगा रहे थे, कि प्रह्लाद कुछ माँगले। इसी लिये वे बार बार उनसे वर माँगने का आग्रह कर रहे थे।

भगवान् जब बहुत विवश करने लगे, तब पहिले तो प्रह्लाद जी ने एक मीठी सी डाँट बतायी—"क्या महाराज! आप रट लगा रहे हो, "माँगलो माँगलो" आपने हमें बनिया समझ रखा है। यह तो मोल भाव हुआ। सौदा लेने वाला सदा घाटा में रहेगा। क्यों कि जो बेचेगा वह रुपये की वस्तु के सवा सोलह आने अवश्य लेगा। पौने सोलह में नहीं देगा। भक्ति के बदले में जो आपसे कामना पूर्ति की इच्छा रखता है वह तो सेवक नहीं कोरा व्यापारी है।"

भगवान् सिटिपिटा गये और बोले—"अरे, भैया! ऐसी बात नहीं। कुछ मुझसे माँग अवश्य लो। इस समय मुझे दिवास लगी है। कुछ देने के लिये मैं व्याकुल बना हूँ।"

प्रह्लादजी ने कहा—"अच्छा, यदि आप नहीं ही मानते हैं, कुछ देना ही चाहते हैं, तो यही वर मुझे दे दो कि मेरे मन में कभी कुछ माँगने की कामना ही न उठे।"

भगवान् ने अपने बड़े बड़े तीक्ष्ण नखों वाले पंजे से अपना माथा ठोंका, कि यह तो मेरा भी बाबा गुरु निकला। इसने तो जड़ ही काट दी। भगवान् की आँखें नीची हो गयीं। इसी लिये भगवान भक्तों के कभी सम्मुख नहीं आते। सम्मुख आते हुए वे लजाते हैं। भक्तों के ऋणिया जो ठहरे उनसे आँखें नहीं मिलाते। चुपके चुपके उनके पीछे पीछे फिरते रहते हैं, उनके चरणों की धूलि को अपने घुँघराले काले काले बालों में भरते रहते हैं। जैसे भक्त भगवान् को अपना इष्ट मानते हैं उसी प्रकार भगवान् भी भक्तों को अपना इष्ट मानते हैं। उनका काम करके प्रसन्नता का अनुभव करते हैं, उनकी छोटी से छोटी सेवा को भी सहर्ष करते हैं। इसी लिये कहा है राम से बड़ा राम का दास है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! माया के दर्शन करके महामुनि मार्कण्डेयजी का मन शान्त हो गया। अब उनके मन में कोई भी

इच्छा शेष नहीं रही। वे अपने आश्रम में एकाग्र चित्त से बैठे थे, कि उसी समय अपने गणों से घिरे हुए नन्दी पर चढ़े हुए पार्वती सहित भगवान् सदा शिव वहाँ आ पहुँचे। सन्ध्या के समय भगवान् सदा शिव सभी प्राणियों को देखने के लिये अपने भूत प्रेतादि गणों के साथ तीनों लोकों में घूमा करते हैं। दयामयी माँ पार्वती जी प्राणियों को दुखी देखकर अपने प्राणनाथ से उनके दुखों को दूर करने की प्रार्थना करती हैं। औवढ़ दानी आशुतोष अपनी प्रिया के आग्रह को टालते नहीं अतः वे कभी कभी अयोग्य को भी विपुल सम्पत्ति दे देते हैं अनेकों ऐसी कथायें हैं कि पार्वती जी ने किसी को दुखी देखकर शिवजी से प्रार्थना की। पहिले तो शिवजी ने टालमटोल की और कह दिया—"यह तो संसार है इस में कोई सुखी है कोई दुखी है, सभी अपने अपने कर्मों के अधीन हैं।" किन्तु जब भगवती गिरिराज किशोरी ने बहुत प्रार्थना की, तो उसके दुख को दूर कर दिया। भक्तों के ऊपर भी कृपा करने के लिये दयामयी माँ शिवजी को प्रेरित करती रहती हैं। इसीलिये भक्तगण शंकरजी से पूर्व भगवती गौरी का नाम लगाकर जप करते हैं। पहिले माता तब पिता। माता का ही हृदय अत्यन्त ममता पूर्ण होता है।

महामुनि मार्कण्डेय शान्त भाव से आसन पर बैठकर भगवान् का ध्यान कर रहे थे, कि उसी समय स्वर्ग से शिवजी पार्वती सहित आ रहे थे। माता पार्वती जी की दृष्टि मुनि पर पड़ी। शान्त गम्भीर भाव से ध्यान में मुनि को मग्न देखकर जगन्माता जगत् पिता भगवान् भोले नाथ से बोलीं—"प्रभो! आप इस तपस्वी मुनि को देख रहे हैं, जो पुष्प भद्रा नदी के तट पर बैठा हुआ है।"

भगवान् शंकर बोले—"क्या बात है, बहुत से मुनि

तपस्या करते हैं, यह भी तप कर रहा है इसमें विशेष बात क्या है ?"

पार्वती जी ने कहा—"महाराज ! आप ध्यान पूर्वक देखिये। इस तपस्वी का चित्त कितना शान्त हो गया है। तालाब में जब मछलियाँ इधर से उधर फुदकती हैं, तो जल में चञ्चलता आ जाती है, तरंगें उठने लगती हैं, जब मछलियाँ शान्त हो जाती हैं और वायु भी नहीं चलती, उस समय जैसे सरोवर का जल शान्त हो जाता है, उसी प्रकार इस ब्राह्मण का भी शरीर, इन्द्रियाँ तथा अन्तःकरण ऊर्मि रहित बन गया है। इसने अपने मन को जीत लिया है। मन को जीतना ही सबसे कठिन कार्य है।"

शिवजी ने कहा—"तो तुम्हारा अभिप्राय क्या है ? तुम चाहती क्या हो ?"

भगवती पार्वती ने कहा—"महाराज ! मैं यही चाहती हूँ, कि आप सभी कर्मों के फल दाता हैं। इस ब्राह्मण की तपस्या की ओर भी दृष्टि पात कीजिये और इसके तप का प्रत्यक्ष फल प्रदान कीजिये। आप समस्त सिद्धियों के स्वामी हैं। इन्हें भी कोई सिद्धि दे दीजिये।"

पार्वती जीः की बात सुनकर उमापति भगवान् शङ्कर हँस पड़े और हँसते हुए कहने लगे—"प्रिये ! इन महात्मा को मैं कुछ दे देता, तो मैं स्वयं कृतार्थ हो जाता।"

पार्वती जी ने कहा—"तो फिर देते क्यों नहीं ? कुछ दे दो।"

शिवजी ने बात पर बल देते हुए कहा—"दूँ कैसे ? जब ये लें तब तो।"

पार्वती जी ने पूछा—"ये लेते क्यों नहीं। तपस्या तो कुछ प्राप्त करने के लिये ही की जाती है तप करके ही लोग इन्द्रपद, ब्रह्मपद, तथा स्वर्गीय सुखों को प्राप्त करते हैं।"

शिवजी ने कहा—"हाँ, सकाम तप करने वाले भोगों की इच्छा से ही तप करते हैं, किन्तु ये तो निष्काम तपस्वी हैं। ये कभी स्वप्न में भी भोगों की इच्छा नहीं करते।"

पार्वती जी ने कहा—"न सही भोग, आप तो मोक्ष के भी स्वामी हैं, इन्हें मोक्ष ही दे दीजिये।"

शिवजी ने हँसकर कहा—"प्रिये! ये लोग मोक्ष भी नहीं चाहते।"

पार्वती ने आश्चर्य से पूछा—"महाराज! मोक्ष भी नहीं चाहते, तो और चाहते क्या हैं। धर्म, अर्थ और काम इन तीनों को तो पुरुषार्थ कहा है और मोक्ष को परम पुरुषार्थ माना है। मोक्ष से बढ़कर तो कोई वस्तु ही नहीं। संसार में मोक्ष ही अंतिम पुरुषार्थ है।"

शिवजी ने कहा—"प्रिये! मोक्ष से बढ़कर भी एक वस्तु है। जिसे पंचम पुरुषार्थ भी कहा है, उसे भगवान् पुरुषोत्तम की पराभक्ति कहो अथवा 'प्रेम' कहो एक ही बात है। जिन को भगवान् की पराभक्ति प्राप्त हो गयी है उन्हें भगवान् चार प्रकार की मुक्ति भी देते हैं तो वे सेवा के बिना मुक्ति को भी स्वीकार नहीं करते। वे तो कुछ चाहते ही नहीं यही चाहते हैं, कि इसी प्रकार सदा भगवान् की सेवा में ही संलग्न रहें।"

पार्वती जी ने कहा—"अच्छा, ये भगवान् के भक्त ऐसे निस्पृह होते हैं, जब ये कुछ चाहते ही नहीं तो आप भी इनसे बातें न करेंगे?"

शीघ्रता के साथ शङ्कर जी ने कहा—"नहिँ देवि! ऐसी बात नहीं है। यद्यपि ये कुछ चाहते नहीं तो भी मैं इनसे वार्तालाप अवश्य करूँगा।"

पार्वती जी ने कहा—"जो कुछ चाहता ही नहीं उससे वार्तालाप करने से लाभ ही क्या?"

हँसकर शिवजी ने कहा—"देवि ! रुपये पैसे की प्राप्ति अथवा मान सम्मान, स्वर्ग अपवर्ग का मिलना इसी को लाभ नहीं कहते हैं। संसार में सबसे बड़ा लाभ तो साधु समागम ही है। जिन्हें साधुओं के दर्शन हो गये उनका जीवन धन्य हो गया, जिन्होंने साधुओं का स्पर्श कर लिया उनका शरीर शुद्ध हो गया, जिन्होंने वार्तालाप कर लिया उनका मन विशुद्ध बन गया और जिन्होंने उनकी सेवा करली उन्होंने मनुष्य जीवन का पूर्ण फल प्राप्त कर लिया ये महामुनि मार्कण्डेय जी साधुओं में श्रेष्ठ हैं, इनसे वार्तालाप करने से मुझे परम लाभ होगा।"

पार्वती जी ने कहा—"अच्छी बात है, महाराज चलिये। मैं भी आज भक्त और भगवान के मिलन को देखूँगी। भक्त आपकी प्रशंसा करते नहीं अघाते और आप भक्तों की प्रशंसा करते करते नहीं अघाते। इससे मैं तो निर्णय ही नहीं कर सकती कि आप बड़े हैं या भक्त बड़े हैं। चलिये, मुझे भी इन भक्तवर की बातें सुनने की चट पटी लगी हुई है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जब पार्वती जी ने अत्यन्त उत्सुकता दिखायी तब शिवजी मुनि के समीप गये। महाराज ! देखिये भक्त की कितनी ऊँची पदवी है। जो शङ्कर सर्व विद्याओं के प्रवर्तक हैं, समस्त चराचर प्राणियों की पशु संज्ञा है, उन समस्त पशुओं के जो पति हैं, वे ही साधु जनों के एक मात्र आश्रय पशुपति भगवान् भोले नाथ आज हर्ष के साथ साधु दर्शनों के लिये जा रहे हैं। शिवजी ने आश्रम में जाकर देखा मार्कण्डेय मुनि पाषाण की प्रतिमा के सदृश स्थिर बैठे हैं, वे न हिलते हैं न डुलते हैं। उन्हें अपने शरीर का अथवा बाह्य जगत् का कुछ भान ही नहीं है। क्योंकि उन्होंने सभी ओर से अपने अन्तःकरण की वृत्तियों को रोक लिया था। वे समाधि सुख का अनुभव कर रहे थे। ध्यान मग्न होने के कारण उन्हें जगदात्मा विश्वनाथ भगवान्

पार्वती पति के पधारने का पता भी न चला। शिवजी शिवा के सहित उनके सम्मुख खड़े हैं और वे स्थिर भाव से समाधि में स्थित हैं।

शिवजी तो समस्त योगों के एकमात्र आचार्य ही ठहरे। वे समझ गये मुनिवर ध्यान में मग्न हैं, अतः वे अपनी योग माया के प्रभाव से उनके हृदयाकाश में उसी प्रकार प्रवेश कर गये, जिस प्रकार रिक्त स्थान में वायु प्रवेश कर जाती है। अब मुनि को अपने हृदय में साक्षात् शंकर के दिव्य दर्शन होने लगे। उन्होंने देखा विद्युत के समान चमचमाते हुए एक अत्यन्त मनोहर देव हृदय में हँस रहे हैं। उनकी पिंगल वर्ण की जटायें विद्युत के प्रकाश में दम दम कर के दमक रही हैं, उनका मनोहर मुखारविन्द बाल सूर्य के सदृश शोभित हो रहा है। अत्यन्त मनोहर उन्नत काय के ऊपर व्याघ्र चर्म की शोभा अकथनीय है। वे दश हाथों में क्रमशः त्रिशूल, धनुष, बाण, खड्ग, ढाल, अक्षमाला, डमरू, कपाल और परशु धारण किये हुए हैं। एक हस्त से भक्तों को अभय दान दे रहे हैं। उनकी मनोहर मुखाकृति अत्यन्त ही लुभावनी है, वे विश्व के कल्याण का ही चिन्तन कर रहे हैं।

ऐसी दिव्य मूर्ति को अपने हृदय में सहसा प्रकटित हुई देख कर महामुनि परम विस्मित हुए। वे बार बार विचार करने लगे, ये कौन हैं, ये कौन हैं, सहसा मेरे अन्तःकरण में कैसे घुस आये। अवाक होकर मुनि ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि तुरन्त वह मनोहर मूर्ति अन्तर्हित हो गयी। उसी हड़बड़ाहट में उनकी समाधि खुल गयी। आँख खोलकर वे देखते हैं, कि जिस मूर्ति के अन्तःकरण में दर्शन हुए थे वही मूर्ति प्रत्यक्ष सम्मुख खड़ी है। पार्वती सहित परमेश्वर श्री शंकर सम्मुख खड़े खड़े हँस रहे हैं। वे पर्वत के शिखर के समान नन्दीश्वर के पीठ पर पार्वती सहित

विराजमान हैं। उनके गण उन्हें चारों ओर से घेरे हुये खड़े हैं।

सम्मुख शिवजी को देख कर मुनि सहसा उठकर खड़े हो गये, उन्होंने भूमि में लोट कर भगवान् भूत नाथ के पाद पद्मों में साष्टाङ्ग प्रणाम किया। वे सहसा निर्णय ही न कर सके मैं क्या करूँ। बार बार प्रणाम करने लगे। प्रणाम करते फिर उठकर खड़े हो जाते फिर प्रणाम करते शिवजी नन्दीश्वर की पीठ से उतर कर उनके सम्मुख आ गये। अब मुनि को ध्यान आया—"अरे मैंने भगवान् पार्वती पति की पूजा तो की ही नहीं। दौड़कर कुटी में गये आसन उठा लाये, अर्घ्य की समस्त सामग्री ले आये, फल, मूल, धूप, पुष्प, माला जो भी कुछ कुटी में था उठाकर ले आये। आसन, पाद्य, अर्घ्य, गन्ध, पुष्प, माला, बिल्वपत्र धूप दीप नैवेद्य तथा फल आदि से विधिवत् पार्वती सहित शिवजी की पूजा की। उनके गणों की भी यथोचित पूजा अर्चा की। फिर हाथ जोड़ कर वे शिवजी की स्तुति करने लगे। मुनि ने नेत्रों में प्रेमाश्रु भर कर यह स्तुति गायी--

शिवस्तुति

करें हर कैसे विनय तिहारी।
सुख स्वरूप सर्वज्ञ सर्वगत, सब जग के संहारी ॥१॥ करें०
ज्ञानरूप तुम घट घट वासी, सीमित बुद्धि हमारी।
दया दृष्टि तें हरो अविद्या, हे शङ्कर त्रिपुरारी ॥२॥ करें०
निरगुन शान्त त्रिगुनमय स्वामी, तुम लीला धारी।
पालो, रचो, फेरि, संहारो, बनि अज, रुद्र, मुरारी ॥३॥ करें०
पुनि पुनि चरन सरोरुह बन्दौं, माँ गिरिराजकुमारी।
जननी जनक स्वयं शिशु सम्मुख, आये जग सुखकारी ॥४॥ करें०

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! जब महामुनि मार्कण्डेय ने पूजा के अनन्तर भगवान आशुतोष की इस प्रकार से स्तुति की, तो उन की स्तुति से परम सन्तुष्ट होकर साधु पुरुषों की एक मात्र गति भगवान् आदि देव महादेव हँसते हुए मुनि से बोले—"मुनिवर ! मैं तुम से तुम्हारे नियम व्रत तथा सदाचार से परम सन्तुष्ट हूँ तुम मुझसे अपनी इच्छानुसार कोई वर माँगलो।"

वरदान की बात सुनकर महामुनि संकोच में पड़ गये और लजाते हुए बोले—"प्रभो ! मैं क्या वर माँगूँ ?"

भगवान् बोले—"जो भी तुम्हारी इच्छा हो वही माँग लो। देखो हम त्रिदेव समस्त वर देने वालों में श्रेष्ठ हैं। हम अमोघ दर्शन कहलाते हैं, हमारा दर्शन कभी व्यर्थ नहीं जाता। इसलिये तुम हम से कुछ न कुछ अवश्य माँग लो।"

यह सुनकर महामुनि मार्कंण्डेय जी बोले—"प्रभो ! मैं सदा आपका पूजन, वन्दन तथा भजन करता रहूँ, यही वर आप मुझे दें।"

यह सुन कर भगवान् शङ्कर हँस पड़े। उनकी हास्य की धवलिमा से दशों दिशायें धवलित हो गयीं। वे हँसते हुए बोले—"मुनिवर ! आपही समस्त जीवों द्वारा पूजित, वन्दित तथा उपासना करने योग्य हैं।"

मुनि बोले—"प्रभो ! यह आप कैसी उलटी गंगा बहा रहे हैं, कैसी विपरीत बातें कह रहे हैं।"

शङ्कर जी ने कहा—"मुनिवर ! मैं विपरीत बात नहीं कह रहा हूँ, सत्य सत्य ही बात बता रहा हूँ। जो ब्राह्मण सज्जन हैं, शान्त स्वभाव के हैं, सभी प्रकार के संगों से रहित हैं, जो बिना भेद भाव के सभी प्राणियों पर कृपा करते हैं। जो सरल साधु स्वभाव तथा सर्व भूतों के हित में रत रहते हैं, जो कभी किसी से वैर भाव नहीं रखते। जो शत्रु, मित्र तथा उदासीन सभी को एक ही दृष्टि

से देखते हैं, जो हम त्रिदेवों के अनन्योपासक हैं ऐसे साधु पुरुषों की वन्दना, पूजा तथा उपासना तो सम्पूर्ण लोकपालों के सहित सभी प्राणी करते हैं, वे सब पूज्य माने जाते हैं। मैं तो ऐसे सरल संतों का सदा भजन करता हूँ। मैं ही नहीं लोकपितामह ब्रह्माजी उनके भी जनक भगवान् विष्णु भी ऐसे सन्तों का भजन करते हैं। बात यह है कि सन्त जनों के दृष्टि में द्वैत रहता ही नहीं। वे मुझ शंकर में, पद्म गर्भ ब्रह्मा में तथा पद्मनाभ विष्णु में, समस्त प्राणियों में और अपने में अणुमात्र भी भेद नहीं समझते। जिनका भेद भाव सर्वथा विलीन हो गया है ऐसे समदर्शी सन्त तो हम लोगों को भजनीय बन ही जाते हैं। वे सम्पूर्ण भुवन को पवित्र करने में समर्थ होते हैं।"

हाथ जोड़े हुए विनीत भाव से मार्कण्डेय मुनि बोले—"प्रभो! पावन करने का काम तीर्थों का है। प्राणियों को पवित्र तो तीर्थ ही करते हैं।"

हँसकर शिवजी बोले—"मुनिवर! आपका कथन सत्य है। तीर्थ ही पवित्र करते हैं। किन्तु आप तीर्थ किसे कहते हैं? क्या नदी, तालाब, सरोवर, खात आदि जलमय जलाशय ही तीर्थ हैं, क्या पाषाण, मृत्तिका, धातु तथा चित्र आदि की मूर्तियाँ ही तीर्थ हैं?"

मार्कण्डेय जी ने कहा—"तो क्या भगवन्! गंगादि पवित्र नदियाँ, श्री बद्रीनाथ, श्री रामेश्वर आदि प्राणियों को पावन बनाने वाले तीर्थ नहीं हैं?"

शङ्कर जी ने कहा—"मुनिवर! मेरा अभिप्राय यह नहीं है कि गंगादि पवित्र जलाशय, जगन्नाथ जी, रामेश्वर तथा बद्री-नारायण आदि की मूर्तियाँ तीर्थ नहीं हैं। ये तीर्थ हैं, अवश्य हैं, इनके सेवन से प्राणी पावन भी होते हैं, किन्तु चिर काल तक इनका सेवन किया जाय, तब ये फल देते हैं, तब ये प्राणियों को

पवित्र करते हैं, किन्तु सन्त रूप प्रत्यक्ष चलते फिरते सजीव तीर्थ तो दर्शन मात्र से ही प्राणियों को पवित्र कर देते हैं। अतः ये सब से बड़े तीर्थ हैं। सोचिये मुनिवर ! जो सन्तजन नाना भाँति के यमनियमों का पालन करके अपने अत्यन्त चञ्चल चित्त को एकाग्र करते हैं जो संसारी भोगों की इच्छा न रखकर निरन्तर तप और स्वाध्याय में ही निरत रहते हैं जो शौच संयमादि से हमारे वेदत्रयी रूप देह को अपने हृदय में धारण करते हैं, ऐसे ब्राह्मणों को कौन पावन तीर्थ नहीं कहेगा उनके चरणों में कौन प्रणाम न करेगा। ब्रह्मा, विष्णु तथा मैं ऐसे निस्पृह ब्राह्मणों को नित्य नमस्कार करते हैं। महा पापी चाण्डाल को भी आप जैसे सन्तों के दर्शन हो जायँ, तो वे पवित्र बन जाते हैं; फिर जो आपके समीप रहते हैं आपसे सम्भाषण करते हैं, उनकी तो बात ही क्या ? मैं जानता था आपको किसी प्रकार के वर की इच्छा नहीं है, फिर भी आप से वार्तालाप करने के लोभ से अपने को पवित्र बनाने के अभिप्राय से मैं आपके समीप आया था। आपके दर्शन से मुझे बड़ा सन्तोष हुआ।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! अत्यन्त प्रेम नम्रता तथा स्नेह में सने शङ्कर जी के परममधुर वचनोंको सुनकर मार्कण्डेय मुनि के रोम रोम खिल उठे। उन्हें ऐसा अनुभव होने लगा मानों मेरे श्रवण पुटों में कोई निरन्तर अमृत उड़ेल रहा है। शङ्कर जी की दिव्य वाणी सुनते-सुनते उनकी तृप्तीही नहीं हो रही थी। अब तक तो वे भगवान् की माया के फन्दे में पड़कर क्लान्त से हो रहे थे। प्रलय कालीन समुद्र की चपेटों से अत्यन्त श्रमित हो गये थे। जैसे कोई सूखे वृक्ष पर अमृत उड़ेल दे और वह पुनः हरा भरा हो जाय उसी प्रकार श्री शङ्कर भगवान् के वचनामृत से उनके क्लेश पुञ्ज क्षीण हो गये थे। शङ्कर जी के विनीत वचनों से उनका हृदय भर आया वाणी रुद्ध हो गयी। बड़े कष्ट से वे दोनों हाथों की अञ्जलि

बाँध कर कहने लगे—"प्रभो! आपकी लीला अपरम्पार है। कोई भी आपकी लीला का पार नहीं पा सकता। भला बताइये जो सब का स्वामी है, सबके जनक, पालक तथा रक्षक हैं, जो सबके शास्ता हैं, मुझ जैसे अगणित जीव जिनके शासन में सदा रहते हैं जैसे सूत्रधार पुतलियों को अपने संकेत पर नचा रहे हैं, वे ही सब के एक मात्र स्वामी हम जैसे क्षुद्र जीवों की वन्दना और स्तुति करें, यह विडम्बना नहीं तो क्या है।"

हँस कर शिव जी ने कहा—"तो क्या मुनिवर आप हमारी इस नमस्कार स्तुति में बनावट समझते हैं।"

शीघ्रता से मार्कण्डेय मुनि बोले—"नहीं नहीं भगवन्! आप में भला कभी बनावट हो सकती हैं। जैसे पिता पुत्र को खिलते समय उसे राजा कहता है, सिर पर चढ़ा लेता है उसके पैरों को मस्तक पर रख लेता है, तो यह उसका केवल विनोद ही है। बहुत से सिद्ध पुरुष ऐसे होते हैं, कि उन्हें धर्माचरण की कुछ भी आवश्यकता नहीं। वे धर्म, अधर्म, विधि निषेध से परे होते हैं। फिर भी धर्मोपदेशक के नाते धर्म का स्वयं आचरण करते हैं और उसका अनुमोदन तथा समर्थन भी करते हैं। धर्म का आचरण करते हैं उनकी प्रशंसा भी करते हैं। यह सब वे अपने लिये नहीं करते स्वयं तो उनके लिये कुछ कर्तव्य रहता ही नहीं! उसी प्रकार आपभी लोकशिक्षा के निमित्त ऐसा करते हैं। आप जो हमें नमस्कार आदि करते हैं, इससे आपके बड़प्पन में किसी प्रकार की न्यूनता नहीं आती। क्यों कि आप अपनी माया मयी वृत्तियों को स्वीकार करके ऐसा आचरण करते हैं। कोई मायावी है, वह माया से नाना वेष बना लेता है, दूसरे उसे देखकर भले ही मोहित हो जायँ, किन्तु उस माया से स्वयं उसके प्रभाव में कोई अन्तर नहीं आता, वह तो ज्योंका त्यों अपने स्वरूप में ही स्थित रहता है, प्रभो! आप नमस्कारादि करके जीवों को नमन की विधि सिखा रहे हैं। जैसे

स्वप्न में पुरुष मन से ही समस्त पदार्थों की कल्पना करता है, फिर उन वस्तुओं से होने वाले सुख दुखों को स्वयं कर्ता के समान भोगता-सा प्रतीत होता है उसी प्रकार आप सम्पूर्णविश्व प्रपञ्च को रचकर उनमें अनुप्रविष्ट होकर गुणों की की हुई क्रियाओं से स्वयं कर्ता के सदृश प्रतीत होते हैं। आप समस्त गुणों के नियन्ता हैं, आप ब्रह्म स्वरूप हैं निष्कल हैं, केवल हैं, अद्वितीय हैं, सर्व साक्षी हैं, चराचर जगत् के गुरु हैं, ऐसे कल्याण स्वरूप परमात्मा के पाद पद्मों में मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।"

शिव जी ने कहा—"मुनिवर! नमस्कार प्रणाम तो हो चुके। इन शिष्टाचार की बातों को छोड़ो, अब तुम मुझ से कोई अभीष्ट वर माँगो।"

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—"प्रभो! क्या अब भी मुझे कुछ माँगने को अवशेष रह गया क्या? जिन बड़ भागियों को आपके देव दुर्लभ दर्शन हो जाते हैं, उन्हें सभी प्रकार के आनन्द प्राप्त हो जाते हैं, वे आप्त काम बन जाते हैं। दर्शन मात्र से ही सब कुछ देने वालों से अब मैं और क्या मागूँ?"

शिव जी ने कहा—"नहीं, तो भी कुछ तुम अवश्य ही मुझ से माँग लो।"

मार्कण्डेय मुनि ने कहा—"अच्छी बात है, आपकी आज्ञा ही है, तो मुझे यही वर दीजिये कि भगवान् में, भगवत् भक्तों में तथा आप में मेरी अविचल भक्ति हो। प्रभो! आप मेरी इस कामना को पूर्ण कर दें, क्यों कि आपतो सम्पूर्ण कामनाओं की वृष्टि करने वाले परिपूर्ण प्रभु हैं। आपके द्वार से कोई भी रिक्त हस्त नहीं लौटता।"

सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! महा मुनि की ऐसी बात सुन कर उमापति त्रिलोचन भगवान् भोले नाथ हँसे, वे मुनि की पूजा, स्तुति, विनय और निस्पृहता पर सन्तुष्ट हो गये थे। पार्वती जी ने कहा—"यह तपस्वी मुनि जो भी माँगता है उसी को आप

दीजिये।" अपनी प्रिया पार्वती की अनुमति पाकर शिव जी बोले—"मुनिवर ! भक्ति का आशीर्वाद तुम्हें क्या दूँ।" भक्ति तो तुम्हें स्वतः ही प्राप्त है भगवान् नर नारायण ने प्रथम ही तुम पर कृपा की है। जिसको भगवान् में भक्ति है, उसकी कोई भी कामना शेष नहीं रहती। वह जो चाहता है, वही हो जाता है। तुम जो भी कामना करोगे वही पूरी होगी, मेरे आशीर्वाद से तुम्हें कल्पान्त यश प्राप्त होगा, तुमको परम पुण्य और अजर अमरता भी प्राप्त होगी, तुम सदा ब्रह्म तेज से देदीप्यमान् रहोगे, तुम्हें भूत, भविष्य तथा वर्तमान का सब ज्ञान प्राप्त होगा, तीनों लोकों में तुम्हारे लिये कुछ भी अज्ञेय न रहेगा। तुम्हें वैराग्ययुक्त विज्ञान की प्राप्ति होगी और संसार में तुम पुराणा चार्य विख्यात होगे।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! एक साथ इतने वर पाकर मार-कंडेय जी का हृदय भर आया, उन्होंने पार्वती पति के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम किया। शिव जी ने भी उन्हें सब प्रकार से सन्तुष्ट किया और फिर मुनि से अनुमति लेकर अपनी प्रिया पार्वती तथा अपने गणों के सहित कैलाश की ओर चल दिये। मार्ग में पार्वती जी से मुनि के सम्बन्ध की बातें करते गये। किस प्रकार इन मुनि ने ब्राह्मणों को प्रणाम करके अजर अमरता प्राप्त की है, कैसा कैसा घोर तप किया है ये ही बातें सम्पूर्ण मार्ग में बताते गये।"

इधर महामुनि मार्कण्डेय जी भी शिव जी से सम्पूर्ण योग सम्पत्ति पाकर भगवान् के चरणार विन्दों में अनुरक्त होकर इच्छानुसार पृथिवी पर विचरण करने लगे।"

सो मुनियो ! मार्कण्डेय जी ने जिस प्रलय के दर्शन किये थे, वह वास्तविक प्रलय नहीं थी भगवान् की आकस्मिक माया थी। जिस प्रकार ब्राह्मण श्रेष्ठ सोमशर्मा को भगवान् की कृपा से माया

के दर्शन हुए थे उसी प्रकार मार्कण्डेय मुनि को भी माया के दर्शन हुए थे।

इस पर शौनक जी ने पूछा—"सूत जी! ये सोम शर्मा ब्राह्मण कौन थे, इन्हें भगवान् की माया के दर्शन कैसे हुए, इन्होंने माया देखने की इच्छा प्रकट क्यों की और इन्होंने भगवान् की माया में क्या देखा? कृपा करके इस आख्यान को भी हमें सुनाइये।"

यह सुनकर सूत जी बोले—"ब्रह्मन्! भगवान् की दैवी माया अचिन्त्य है, इसमें सब कुछ सम्भव है। माया के दर्शन नित्य ही सभी करते हैं, किन्तु जो मायेश की कृपा से माया दर्शन होते हैं, वे माया के समुद्र को पार कर जाते हैं। अच्छी बात है, मैं आपको सोम शर्मा विप्र के आख्यान को सुनाता हूँ।

सोम शर्मा एक अत्यन्त ही शान्त, दान्त, तेजस्वी तपस्वी थे। वे चिरकाल तक कठिन नियमों का पालन करते हुए तीव्र तप करने लगे। उनके तप से तप पति भगवान् विष्णु सन्तुष्ट हुए और उन्हें आकर दर्शन दिया। भगवान् के दर्शन पाकर ब्राह्मण परम सन्तुष्ट हुए। भगवान् ने कहा—"ब्रह्मन्! मैं तुम्हारे तप से सन्तुष्ट हूँ तुम धन, रत्न, स्त्री, बच्चे, राज्य, स्वर्ग तथा और भी जो कुछ चाहते हो मुझ से कहो। मैं तुम्हें तुम्हारी इच्छित वस्तु दूँगा।"

इस पर उस ब्राह्मण ने कहा—"प्रभो! मुझे धन, रत्न, स्त्री, बच्चे तथा स्वर्गादि सुख कुछ भी नहीं चाहिये। मुझे यदि आप कुछ देना ही चाहते हैं, तो अपनी माया के दर्शन करा दें।"

भगवान् ने हँस कर कहा—"अरे, ब्राह्मण! तुम सिर्री हो गये हो क्या। मेरी माया तो बड़ी दुर्लभ है। बड़े बड़े देवता, लोकपाल भी इसका पार नहीं पा सकते। मेरी माया देखकर क्या करोगे, कोई अन्य वरदान माँग लो।"

ब्राह्मण ने कहा—"नहीं, प्रभो ! मुझे तो आपकी माया की देखने की ही इच्छा है यदि आपकी मेरे ऊपर कृपा है, तो आप मुझे अपनी माया के दर्शन अवश्य करा दें।"

यह सुन कर भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, तुम नहीं मानते हो, तो तुम्हें मैं अपनी माया के दर्शन कराऊँगा। तुम हरिद्वार चले जाओ। वहाँ मायापुर एक स्थान है, वहीं तुम्हें मेरी माया के दर्शन हो जायँगे।"

इतना कह कर भगवान् तो अन्तर्धान हो गये और सोमशर्मा अपने दंड कमंडलु लेकर हरिद्वार की ओर चल दिये। कुछ दिनों में मायापुर के समीप पहुँचे। किनारे पर दंड कमंडलु और वस्त्र रख कर गंगा जी में स्नान करने को घुसे ज्यों ही उन्होंने गंगा जी में गोता लगाया, त्यों ही क्या देखते हैं, कि वे एक मल्लाहिनि के गर्भ में आ गये हैं। उन्हें इस बात का पूर्ण स्मरण था कि मैं तपस्वी सोम शर्मा हूँ, किन्तु उनका शरीर गर्भगत बालिका का बन गया। मल मूत्र के थैलों के पास गर्भाशय में वे सिकुड़ कर बड़े कष्ट से रहने लगे। वहाँ चारों ओर से दुर्गन्ध आती थी। वह मल्लाहिनि जब मिरचा खा लेती तो सम्पूर्ण शरीर में दाह होने लगती। भीतर मल मूत्र तथा रज वीर्य के कीड़े काटते। गर्भ के क्लेशों से दुखी होकर मुनि सोचने लगे—"हाय ! मैंने ऐसे कौन से पाप किये, जो इस निषाद की स्त्री के गर्भ में आ गया। यह सड़ी मछलियों को खाती है, इसके सम्पूर्ण अंगों से मछली की दुर्गन्ध निकलती है। इसके पेट में कितनी दुर्गन्ध है। हाय ! ब्राह्मण होकर मैं इस नरक में कैसे आ गया। मेरे शुभ कर्मों को, संयम और सदाचार को तपस्य, और व्रतादि को धिक्कार है, जिनके फल स्वरूप मुझे इस घृणित दुर्गन्त पूर्ण स्थान में अत्यन्त कष्ट से समय बिताना पड़ता है। यहाँ मैं हिल डुल भी नहीं सकता। न किसी से कुछ कह सकता हूँ, न अपनी रक्षा ही कर

सकता हूँ, यह मल्लाहिनि दिन भर अंट संट खाती पीती है, इसे मेरे क्लेश का क्या पता यहाँ कितना दुगन्ध युक्त मल भरा है मांस और रक्त की कीच हो रही है, वात पित्त और कफ की चारों ओर भर मार है। हाय ! मुझे भगवान् के दर्शन हुए थे, वे भगवान् कहाँ गये ? हाय ! मैं नित्य गंगा जी में स्नान करता था, वे गंगा जी कहाँ गयीं। कैसे करूँ, कहाँ जाऊँ, कौन मेरी रक्षा करेगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! गर्भ में पड़ा वह ब्राह्मण दिन रात्रि यही सोचता था, कि सहसा एक दिन पेट में प्रसूति मारुत बढ़ा। मल्लाहिनि पीड़ा के मारे चिल्लाने लगी छट पटाने लगी, उसी समय बालिका बने वे ब्राह्मण जनन द्वार से बाहर आये। बाहर आकर वे सब कुछ भूल गये। निषाद के घर में बढ़ने लगे। निषाद की प्यारी दुलारी कन्या बन गये। अब प्रेम से यथेष्ट मछली खाते, मांस उड़ाते, सुरापान भी करते। नदी में जाकर मछलियों को पकड़ लाते कच्ची मछलियों को खा जाते, कभी भूनकर नमक मिलाकर खाते।

जब वह कन्या बड़ी हुई, तो उस मल्लाह ने एक दूसरे मल्लाह के लड़के के साथ उसका विवाह कर दिया। दोनों ही युवावस्थापन्न थे सर्वथा रङ्ग रेलियाँ करते रहते थे, खाद्याखाद्य पेयापेय, तथा गम्यागम्य का कुछ भी विचार नहीं रहा। प्रत्येक वर्ष में एक सन्तान हो जाती। बहुत से लड़का लड़की हो गये। किसी को स्तन पिलाती किसी को गोदी में बिठाती किसी को खाट पर लिटाती। लड़का लड़की वस्त्रों पर ही मलमूत्र कर देते। सब वस्त्र मल मूत्र में सन जाते। कोई भोजन करते समय ही ऊपर मूँत देता, कोई टट्टी कर देता। मैले कुचैले कपड़े पहिने सड़ी मछलियों का झोल खाकर उन बच्चे कच्चों में भी वह अपने को सुखी समझती।

एक दिन बच्चों ने सब कपड़े गंदे कर दिये। मलमूत्र से सने

बहुत से मैले पुराने कपड़ों को धोने की इच्छा से वह मल्लाहिनि गङ्गाजी के किनारे आये। बड़ी गरमी पड़ रही थी। शरीर पसीने से भीग गया था. मल्लाहिनि ने सोचा—"लाओ, आज शिर से स्नान कर लूँ।" ऐसा विचार कर ज्यों ही उसने गङ्गाजी में डुबकी मारी त्यों ही वह स्त्री से फिर सोमशर्मा हो गये. जल से उछल कर वे देखते हैं, कि जहाँ उन्होंने अपना दंड रखा था, वहीं दंड रखा है। वहीं कमंडलु रखा है। वस्त्र ज्यों के त्यों रखे हैं। उन्हें अपने तप स्वाध्याय का पूर्ववत स्मरण है। उन्होंने गीले वस्त्रों को उतार कर वस्त्र बदले। गङ्गारज लगायी। दंड को धारण किया और ब्रह्म का चिन्तन करने लगे। उन्हें अपनी स्त्री शरीर की सब बातें स्मरण थीं। वे सोचने लगे—"मेरा ऐसा कौन सा पाप उदय हुआ कि मुझे मल्लाह के घर में जन्म लेना पड़ा। सो भी पुरुष न होकर स्त्री बना। मैंने कितनी जीवों की हिंसा की। कितने अभक्ष्य पदार्थों को भक्षण किया कितने अपेय पदार्थ पिये। नहीं गमन करने योग्य पुरुषों के साथ गमन किया। मुख से कितनी गालियाँ बकीं। निषाद के संग से कितने पुत्र पुत्री पैदा कीं। ऐसे कौन से ऐसे दुष्कर्म उदित हुए कि इस दशा को मुझे प्राप्त होना पड़ा, ऐसी ऐसी नारकीय यातनायें सहनी पड़ीं।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! तपस्वी सोम शर्मा ऐसा विचार कर ही रहे थे, कि उसी समय उस मल्लाहिनि का पति अत्यन्त क्रोध में भरा दुःखित चित्त से गङ्गा तट पर आया। उसके साथ कई छोटे बड़े बच्चे थे। आकर वह इधर उधर अपनी स्त्री को खोजने लगा। जब उसे स्त्री नहीं दीखी, तो वह अत्यन्त घबराया। सम्मुख उसने उस घड़े को देखा जिसे भरने स्त्री आयी थी। घड़ा गङ्गा तीर पर खाली पड़ा था मैले वस्त्रों का ढेर वहाँ लगा हुआ था। इसे देखकर तो मल्लाह की छाती फटने लगी। वह ढाह मार कर मुक्त कंठ से रुदन करने लगा। वह बार बार कहता—

"प्रिये ! तू कहाँ गयी ? देख, ये तेरे बच्चे कब से भूखे रो रहे हैं, छोटा बच्चा तो स्तन के दूध के अतिरिक्त कुछ खाता पीता ही नहीं हाय ! यह तेरे बिना कैसे जीवेगा। मेरा सर्वस्व लुट गया, इस कच्ची गृहस्थी का पालन मैं अकेला कैसे करूँगा।"

उसके करुण क्रन्दन को सुनकर बहुत से स्त्री पुरुष एकत्रित हो गये। किसी ने कहा—"पैर फिसल गया होगा, डूब गयी होगी।"

रोते रोते मल्लाह ने कहा—"वह तो तैरना जानती थी, इतने लोग आस पास स्नान कर रहे हैं, डूबती तो चिल्लाती। य' उसकी देह तो मिलती। अभी अभी तो वह आयी थी। ऐसा लगता है कोई मगर उसे निगल गया। तुरन्त उसे लीलकर चला गया होगा।"

इस पर किसी बूढ़ी सी स्त्री ने पूछा—"कुछ घर में खटपट तो नहीं हुई थी, तुमने उससे कुछ कहा सुना तो नहीं था ?"

इस पर रोते रोते मल्लाह बोला—"मैं तो उसे प्राणों से भी अधिक प्यार करता था। जागृत की तो कौन कहे मैंने तो कभी स्वप्न में भी उससे कड़ी बात नहीं कही ! हाय ! मेरा सर्वस्व लुट गया मैं कहीं का भी नहीं रहा। किस दोष से मेरी स्त्री नष्ट हो गयी। इन मातृहीन बालकों का मैं विधुर होकर कैसे पालन करूँगा।"

उस धीवर के करुण क्रंदन को सुनकर बहुत से लोग उसके प्रतिसहानुभूति प्रकट करने लगे। बहुत से धैर्य बँधाने लगे। बहुत से स्नान करके चले गये।

सोम शर्मा जो मल्लाहिन से फिर ब्राह्मण हो गये थे, वे उस मल्लाह से बोले—"अरे, भैया ! अब रोने धोने से क्या होता है, इन बालकों को तुम ले जाओ इनका पालन करो। भावी प्रबल है, अब तुम्हारी स्त्री मिलेगी नहीं।"

ब्राह्मण के वचन सुनकर मल्लाह ने कहा—"ब्रह्मन्! आप कौन हैं, आप तो मुझे अत्यन्त मधुर वाणी में सान्त्वना दे रहे हैं।"

ब्राह्मण ने कहा—"भैया ! मैं ही तुम्हारी स्त्री मल्लाहिनि हूँ।"

यह सुनकर चौंककर मल्लाह बोला—"विश्वदेव ! मैं तो स्वयं ही दुखी हूँ, आप मेरी हँसी क्यों उड़ा रहे हैं ?'

ब्राह्मण ने कहा—"भैया ! मैं तेरी हँसी नहीं उड़ाता। मैं तो सत्य बात कहता हूँ। मैं तपस्वी ब्राह्मण था, गङ्गाजी में स्नान करने आया था। गङ्गाजी में डुबकी लगाते ही मैं एक मल्लाहिनि के गर्भ में चला गया। लड़की होकर पैदा हुआ। कुछ दिनों के पश्चात् तुम्हारे साथ मेरा विवाह हुआ। ३ कन्या तथा ३ पुत्र मेरे पैदा हुए। पचास वर्ष मैं इस प्रकार स्त्री रहा। आज स्नान करने आया, ज्यों ही गङ्गाजी में डुबकी लगायी, फिर मैं जैसा का तैसा हो गया। जहाँ मैं अपने कपड़े दंड कमण्डलु रख गया था, वे ज्यों के त्यों उसी दशा में रखे मिले। पचास वर्ष तक ये कपड़े ज्यों के त्यों कैसे रखे रहे। न मैले हुए न गङ्गाजी की बाढ़ ने इन्हें बहाया। यह कैसे आश्चर्य की बात है।"

ब्राह्मण उस धीवर से ऐसा कह ही रहा था, कि उसी समय वहाँ न धीवर था न उसके बाल बच्चे। इतने में ही कुछ ब्राह्मण मिलकर आये और उस तपस्वी ब्राह्मण से बोले—"ब्रह्मन्! आज प्रातःकाल आप आये थे, अपने दंड कमण्डलु को वहाँ रखकर स्नान करने चले आये आपको स्नान करते करते बड़ी देर हो गयी, आप अपने वस्त्रों को उठा लावें।"

यह सुनकर तपस्वी ब्राह्मण बड़े विस्मय में पड़ गये वे सोचने लगे—"मुझे तो पचास वर्ष हो गये, ये ब्राह्मण कहते हैं मैं प्रातः ही गया था। ब्राह्मण चिन्ता कर ही रहा था, कि भगवान् उसके

सम्मुख प्रकट हुए। उसने रो रोकर अपना दुःख सुनाया और पूछा—"प्रभो ! किस पाप से मुझे मल्लाहिनि बनकर ये यातनायें सहनी पड़ीं।"

हँसकर भगवान ने कहा—"ब्रह्मन् ! आप तो निष्पाप हैं, आपने कुछ पाप नहीं किया। यह तो मेरी माया थी। आपने माया के दर्शन करने की इच्छा प्रकट की थी, इसीलिये मैंने अपनी माया आपको दिखा दी। अब जाओ, तुम्हें मेरी माया क्लेश न देगी।" इतना कहकर भगवान् अन्तर्धान हो गये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! जिस प्रकार कुछ ही घड़ी में सोमशर्मा को भगवान् ने पचास वर्ष की माया दिखा दी, उसी प्रकार मार्कंडेय जी को प्रलय के कई दृश्य दिखा दिये। वास्तव में यह भगवान् की माया थी, कल्प आदि तब से कुछ भी नहीं व्यतीत हुआ। मार्कंडेयजी तो इसी कल्प में आपके वंश में ही हुए हैं। ब्रह्मन् ! माया का स्वरूप दुर्बोध है। जो भी कुछ हो रहा है माया में ही हो रहा है गरमियों में जो गरमी पड़ती है, वर्षा में जो मेघ बरसते हैं जाड़ों में जो जाड़े होते हैं, सूखे तालाब जो जल से भर जाते हैं, भरे तालाब जो सूख जाते हैं। पूर्णिमा को जो चन्द्रमा पूर्ण हो जाता है, वही अमावस्या को पुनः क्षीण हो जाता है, प्रातःकाल जो पूर्व में सूर्य उदय होता है, मध्यान्ह में सिर पर आकर सायंकाल में जो अस्त हो जाता है। गरमियों में कूओं का जल ठंडा हो जाता है और जाड़ों में गरम हो जाता है यह सब भगवान् की माया है। मुनिवर ! देखिये एक नन्हें से वट के बीज से कितना विशाल वृक्ष बन जाता है यह भगवान् की माया का ही चमत्कार है। स्त्री पुरुषों के रक्तवीर्य के बिन्दुओं से कितने बड़े बड़े स्त्री पुरुष बन जाते हैं। पैदा होते समय कितने नन्हे से बालक होते हैं, बढ़ते बढ़ते कितने बढ़ जाते हैं, यह सब भगवान् की माया है कहाँ तक कहें। मन से इन्द्रियों से जो भी कुछ देखा,

सुना और चिन्तन किया जाता है सब माया का ही पसारा है। यह विश्व प्रपञ्च भगवान की माया के ही सहारे चल रहा है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! मार्कंडेयजी ने जो भी प्रलय का दृश्य देखा था सब भगवान् की माया का ही खेल था, किन्तु जो लोग इस रहस्य को नहीं जानते वे इसी को सात कल्पों की सात प्रलय कहकर वर्णन करते हैं। यह मैंने अत्यन्त ही संक्षेप में भगवान् मार्कंडेयजी के पुण्य चरित्र का वर्णन किया। जो भगवान् के प्रभाव से प्रभावित इस पावन चरित्र को पढ़ेंगे सुनेंगे तथा अन्य लोगों को सुनावेंगे, उनकी कर्म वासनायें समूल नष्ट हो जायँगी, वे जन्म मरण रूप संसार चक्र से सदा के लिये मुक्त हो जायगे उनका पुनर्जन्म न होगा। यह मार्कंडेयजी का चरित्र धन्य है, यश और कीर्ति को देने वाला है, इससे श्रोता तथा वक्ताओं की आयु वृद्धि होती है, संसार जनित क्लेश उनके सदा के लिये छुट जाते हैं। यह मैंने भागवती कथा के उपसंहार में दीर्घजीवी मार्कंडेयजी का चरित्र मंगल के निमित्त कहा। अब आप और क्या सुनना चाहते हैं।

इस पर शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! हम भगवान् के अङ्ग उपाङ्ग और आयुधों के विषय में जानना चाहते हैं। किन किन तत्वों से भगवान् के किन किन अंग उपाङ्ग और आयुधों की कल्पना करते हैं।

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! यह विषय बड़ा गूढ़ है। यह एक बड़ा गूढ़ शास्त्र ही है। केवल परिचय के लिये मैं अत्यन्त

संक्षेप में इस विषय का दिग्दर्शन मात्र ही कराये देता हूँ। आप समाहित चित्त से श्रवण करें।"

छप्पय

हर प्रसन्न अति भये भक्ति वर मुनिकूँ दीयो।
बाढ्यो मुनि मन मोद यथोचित पूजन कीयो॥
महिमा शिवने अधिक भक्त सन्तनि की गाई।
शिव मुख तें सुनि विनय लाज मुनिकूँ अति आई॥
पूजित ह्वैकें शिवा सँग, पुनि शिव अन्तरहित भये।
बिना प्रलय ही ध्यान में, मुनि माया दरशन किये॥

—:०:—

भगवान् की अङ्ग उपाङ्ग आयुधादि रूपा विभूति

(१३६६)

नमस्कृत्य गुरून्वक्ष्ये विभूतीर्वैष्णवीरपि ।
याः प्रोक्ता वेदतन्त्राभ्यामाचार्यैः पद्मजादिभिः ॥

(श्री० भा० १२ स्क० ११ अ० ४ श्लोक)

छप्पय

शौनक पूछें—सूत ! पादपद्मादि वन्दना ।
अंग उपांगनि सहित करें कस हरि अर्चना ॥
क्रियायोग कूं फेरि हमें विस्तार बतावें ।
सूत कहें—"मुनि धर्म अखंड को पार न पावें ॥
हरिमय जग कूँ मानिकें, करें वन्दना मग में ।
तपन भावनि के सहित, पूजें सब कूँ मन में ॥

मृत्तिका के द्वारा निर्मित समस्त पदार्थ मिट्टी मय ही होंगे । लकड़ी की बनी वस्तुओं में ऊपर नीचे ही लकड़ी होगी, चाँदी के बने खिलौनों में ऊपर नीचे बाहर भीतर चाँदी ही चाँदी होगी

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! अब मैं गुरुओं को नमस्कार करके उन भगवान् विष्णु की विभूतियों का वर्णन करता हूँ, जिनका ब्रह्मादि आचार्यों ने वेद और शास्त्रों में निरूपण किया है ।"

इसी प्रकार विष्णु भगवान् से निर्मित इस समस्त जगत् में विष्णु ही व्याप्त हैं, उनकी अचिन्त्य शक्ति महा विभूति ही सर्वत्र कार्य कर रही है। इसलिये भगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग, अस्त्र आयुधों के साथ सम्पूर्ण जगत् के मुख्य तत्वों के साथ तुलना की गयी है।"

सूतजी ने कहा—"मुनियो ! आपने मुझसे भगवान् के कर, चरण आदि अंग, गरुड़ आदि उपाङ्ग, सुदर्शन, असि शार्ङ्ग धनु आदि आयुध तथा कौस्तुभ, मुकुटादि आभूषणों की कल्पना जगत् के किन किन तत्वों के साथ की जाती है, यह प्रश्न किया था, इसका मैं संक्षेप में उत्तर देता हूँ।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! यह विश्व वास्तव में है क्या ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! यह सब भगवान् की माया का पसारा है। प्रकृति ही विकृत रूप से इस विश्व ब्रह्माण्ड के रूप में दिखाई देने लगती है। चेतना के अधिष्ठान से यह विश्व चैतन्य दिखायी देता है। दार्शनिकों ने इसमें मुख्य पच्चीस तत्व माने हैं। प्रकृति, सूत्रात्मा, महत्तत्व, अहंकार, शब्द, रूप, रस, गन्ध और स्पर्श नौ तो ये हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, मन, पृथिवी, जल, तेज, वायु और आकाश ये पंच भूत ऐसे सोलह ये। सब मिलकर पच्चीस हुए। इसी में यह सम्पूर्ण दृश्य प्रपञ्च बना है। इसी को भगवत् स्वरूप में देखना है। यही चरम साधना है यही परम पुरुषार्थ है। भगवान् के अङ्ग, उपाङ्ग, आभूषण और आयुधों में इन तत्वों की कल्पना करनी है। यह सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड उन अचिन्त्य भीमा विराट् पुरुष का साकार स्वरूप है।

शौनकजी ने कहा—"तो हाँ, सूतजी पहिले भगवान् के

अंगों को ही बताइये किस अंग में किस तत्व की कल्पना करें।"

सूतजी बोले—"महाराज ! अंगों के गणना की दो कल्पनायें हैं। कोई शिखा से लेकर नख तक वर्णन करते हैं। कोई नख से लेकर क्रमशः शिखा तक मैं भगवान् के चरणों से ही आरम्भ करता हूँ। पृथिवी तत्व ही भगवान् के चरण हैं। भगवान् के चरणों में पृथिवी की कल्पना करे। उपस्थ में प्रजापति ब्रह्मा की कल्पना करे, गुदा में मृत्यु को, नाभि में आकाश की, चार लोकपाल ही चार भुजाओं को समझे। भगवान् का नीचे का ओंठ लोभ है, ऊपर का ओंठ लज्जा है। चन्द्रिका दाँत हैं, भ्रम को मुसकान माने, वायु नासिका है, सूर्य नेत्र है, दिशायें कान हैं। यमराज भौंहें हैं। स्वर्ग शिर है, मेघ केश कलाप हैं तथा वृक्ष उनकी रोमावली है। चन्द्रमा भगवान् का मन स्थानीय बताया है। इस प्रकार जो व्यष्टि में है वही समष्टि में भी है जो पिंड में है वही ब्रह्माण्ड में है। सभी पुरुष अपनी बालिस्तिका से सात् बालिस्त के होते हैं। अर्थात् साढ़े तीन हाथ के। यह लोक में महत्व अहंतत्व और पंचभूत ये सात वितस्ति हैं। इतने ही नाप का यह ब्रह्माण्ड है। यह तो मैं संक्षेप में भगवान् के अंगों में जिन तत्वों की कल्पना की जाती है उसका वर्णन किया। अब इन अंगों में जो मुख्य मुख्य भगवान् आभूषण पहिनते हैं उनके सम्बन्ध में भी सुन लीजिये।"

भगवान् का मुख्य आभूषण है कौस्तुभ मणि। मणि क्या है वह उन प्रभु की अपनी विशुद्ध आत्मज्योति ही है। आत्मज्योति रूप से उसकी कल्पना करे। भगवान् के वक्षःस्थल में श्रीवत्सकालांछन यह मुख्य शोभा है। सर्व व्यापनी प्रभा में उस श्रीवत्स की कल्पना करे। भगवान् की आपाद लम्बिनी

जो वनमाला है वह भी परम शोभा युक्त है, उनकी इस नाना गुणमयी माया को वनमाला के रूप में ध्यान करे। भगवान् का जो पीताम्बर है वह वेदमय है। जैसे वेद प्रकाश करता है उसी प्रकार प्रकार पीताम्बर की प्रभा भी भक्तों के हृदयाकाश के अंधकार को दूर करती है।

भगवान् का जो तीन लरों वाला यज्ञोपवीत है उसे तीन वर्ण वाले ओंकार के रूप में समझे। भगवान के दोनों कानों में जो दिव्य मकराकृत कुण्डल हैं उन्हें सांख्य और योग रूप में माने भगवान् का जो दिव्य चमचमाता हुआ मनोहर मुकुट है उसमें ब्रह्मपद की कल्पना करे। भगवान् शेष शैया पर विराजमान रहते हैं। मूल प्रकृति ही उनका अनन्त नामक आसन है। एक हाथ से भगवान् क्रीड़ा कमल को घुमाते रहते हैं। धर्मज्ञानादि वाला सत्व गुण ही उनका कमल है। अब आप उनके आयुधों के सम्बन्ध में भी सुन लें।

भगवान् के हाथ में रक्त से सनी गदा रहती है। वह उनका मुख्य आयुध है। यह जो ओज सह और बल युक्त प्राण तत्व है, वही उनकी कौमोदिकी गदा है। जल तत्व ही पाञ्चजन्य शंख है। तेजस्तत्व का प्रतीक सुदर्शन चक्र है। जहाँ भगवान् के अष्ट बाहु माने गये हैं वहाँ चार हाथों में तो शंख, चक्र, गदा और पद्म ये चार वस्तु हैं शेष चार में खड्ग, ढाल, धनुष और बाण ये आयुध हैं। चार का वर्णन तो हो ही चुका अब शेष चार में खड्ग को आकाश तत्व, अंधकार के चर्म, काल को शार्ङ्ग धनुष तथा इन्द्रियों को बाण कहा है। जिसमें बाण रखे रहते हैं उस तरकश को कर्म रूप से माना गया है।

भगवान् को रथ में विराजमान बताया गया है। क्रिया शक्ति युक्त मन ही उनका रथ है। पञ्च तन्मात्रायें रथ का बाहरी भाग हैं। भगवान् जो अभय आदि मुद्राओं को धारण करके विराज-

मान रहते हैं उन मुद्राओं को रथ की क्रिया शीलता के स्थान में बताया गया है। सूर्य अथवा अग्नि मंडल को भगवान् की पूजा का स्थान, चित्त की जो शुद्धि है वही मंत्रदीक्षा के स्थान में है। पापों के नाश करने को भगवान् की सेवा समझना चाहिये।

मुनियो! आप भगवान् शब्द का अर्थ तो जानते ही हैं। ऐश्वर्य, धर्म, यश, श्री, ज्ञान और वैराग्य इन छैः वस्तुओं का नाम भग हैं। ये समग्र रूप से जिनमें रहें उन्हीं का नाम भगवान् है। भगवान् जो क्रीड़ा कमल धारण करते हैं वे ही उनके ऐश्वर्यादि छैः गुण हैं। धर्म और यश को चमर तथा व्यजन रूप से समझना चाहिये। रथ का जो छत्र है वही मानों भगवान् का वैकुण्ठ धाम है।

अब उपाङ्गों को भी सुनिये। ऋक् यजु और साम इनको वेदत्रयी कहते हैं। गरुड ही वेदत्रयी स्थानीय हैं जो उन यज्ञ पुरुष भगवान् को वहन करता है। उन चिद्रूप परमात्मा की अविचल शक्ति का ही नाम भगवती लक्ष्मी है। विश्वक्सेन भगवान् के सभी पार्षदों में श्रेष्ठ माने गये हैं। ये जो पाञ्चरात्रादि आगम हैं वही मानों विश्वक्सेन हैं। अणिमामहिमा आदि जो अष्ट सिद्धियाँ हैं उन्हीं को नन्द सुनन्दादि अष्ट द्वारपाल कहा गया है।

भगवान् की चतुर्व्यूह रूप से पूजा की जाती है। वासुदेव, सङ्कर्षण, प्रद्युम्न और अनिरुद्ध ये ही चतुर्व्यूह हैं, इन्हीं चार रूपों से भक्तों द्वारा उनकी उपासना की जाती है। अर्थ, इन्द्रिय, आश्रय और ज्ञान रूप से विश्व, तैजस, प्राज्ञ और तुरीय इन वृत्तियों द्वारा उनकी भावना की जाती है। ये षडैश्वर्य सम्पन्न चतुर्व्यूह भगवान् अङ्ग, उपाङ्ग, आयुध और आभूषण से युक्त

होकर विश्व तैजस प्राज्ञ और तुरीय इन चार स्वरूपों को धारण करते हैं।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आपने इस विषय को

इतने सूक्ष्म रूप से कहा कि इसे हम भली भाँति समझ भी न सके।"

हँसकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! आप तो सब कुछ समझे बूझे हैं, किन्तु वास्तव में यह विषय अत्यन्त ही गूढ़ है। जो समस्त वेदों के उद्भव स्थान हैं, जिन्हें प्रकाशित करने के लिये अन्य किसी उपकरण की अपेक्षा नहीं जो स्वयं प्रकाश स्वरूप हैं। जो अपनी महिमा से स्वयं ही परिपूर्ण हैं, उनके

विषय में यह क्षुद्र प्राणी तर्क वितर्क कर ही क्या सकता है। यद्यपि वे एक हैं फिर भी सर्ग स्थिति और प्रलय के निमित्त ब्रह्मा, विष्णु और महेश इन नामों को धारण करते हैं। किसी भी दशा में उनका ज्ञान आवृत नहीं होता। वे सदा अखंड, एक रस अद्वय तथा केवल बने रहते हैं। भिन्न भिन्न शास्त्रों में ब्रह्मा, विष्णु तथा रुद्र रूप से उनका भिन्न के समान वर्णन किया गया है। पुराणों में ऐसी अनेकों कथायें हैं, कि ब्रह्मा विष्णु महेश आपस में लड़ पड़े उन्होंने उनपर प्रहार किया, उन्हाने उनको नीचा दिखाया, किन्तु यह सब वर्णन की शैली है चरित्र वृद्धि का प्रकार है। तीन होते हुए भी वे अपने भक्तों को आत्म स्वरूप से प्राप्त होते हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! ये अंग, उपाङ्ग आयुध और आभूषणों की कल्पना क्लिष्ट है यह हमारे मन में सरलता से बैठती नहीं कोई सरलसा पूजा का उपाय बताइये।"

सूतजी बोले—"महाराज! सरल से सरल उपाय तो यह है कि भगवान् के नामों का उच्चारण करता रहे। बार बार कहे—"हे श्रीकृष्ण! हे अर्जुन के सखा सारथी! वृष्णि वंशावतंस, हे पृथिवी के भारभूत भूपालों के वंश को भस्म करने वाले! हे अक्षुण्ण पराक्रम! हे गोविन्द! हे गोपाङ्गनाओं के सर्वस्व! भक्तों के भजनीय! हे पुण्यश्लोक! हे गोपाल! हे श्रवण मंगल! आप हम सब सेवकों की रक्षा कीजिये रक्षा कीजिये।" इन नामों के उच्चारण से ही सब कल्याण होगा। यह जो मैंने पाञ्चरात्र विधि से चतुर्व्यूह उपासना बतायी है इस परम पुरुष परमात्मा के स्वरूप जो पुरुष प्रातःकाल उठकर स्नानादि से पवित्र होकर एकाग्र चित्त से भगवान् में मन लगाकर जप करेगा। वह अपने अन्तःकरण में विराजमान उन प्रभु के ज्ञान को प्राप्त कर लेगा। यह मैंने

अत्यन्त संक्षेप में क्रियायोग का वर्णन किया अब आप और क्या सुनना चाहते हैं ?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आपने हमें अव्यक्त परब्रह्म परमात्मा के विषय में बताया सो तो ठीक है, किन्तु वेद पुराणों में तो इन प्रत्यक्ष देव सूर्य को ही नारायण कहा गया है, वेदज्ञ ब्राह्मण इन्हीं की उपासना करते हैं, इन्हीं को सायं प्रातः और मध्यान्ह में अर्घ्य देते हैं इन्हीं का उपस्थान करते हैं। गायत्री मंत्र द्वारा इन्हीं सविता देवता की महिमा गायी है, इन्हीं से बुद्धि को शुभ कार्यों में प्रेरित करने की प्रार्थना की गयी है, उन सूर्यदेव के विषय में हम विशेष जानना चाहते हैं।"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! मैं प्रसंग वश पीछे बता चुका हूँ, कि बारह महीनों के बारह सूर्य होते हैं, वे अपने सात सात गणों के साथ एक महीने तक एक राशि पर रहते हैं, फिर दूसरी राशि के सूर्य आ जाते हैं। प्रत्येक सूर्य के साथ ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और देवता रहते हैं।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी ! इसी विषय को हम विस्तार से सुनना चाहते हैं। जैसे प्रत्येक महीने के सूर्य का क्या नाम है, कौन से सूर्य के साथ कौन से ऋषि रहते हैं, कौन गंधर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, राक्षस और देवतागण रहते हैं, इन सबका काम क्या होता है, सूर्य के साथ रहकर क्या क्या करते रहते हैं। चैत्र मास से लेकर फाल्गुन मास के बारहों सूर्यों का उनके गणों सहित वर्णन करें।"

सूतजी ने कहा—"ब्रह्मन् ! आप प्रश्न तो बहुत गूढ़ कर देते

हैं और समय तथा स्थल अब अत्यन्त न्यून है, फिर भी मैं इस विषय को संकेत रूप से ही सुनाता हूँ। इसका विस्तार करूँ तो बहुत समय लग जाय। सुनिये, अब मैं सूर्य स्वरूप श्रीहरि के व्यूह का वर्णन करता हूँ, आप सब श्रद्धा सहित इसे श्रवण करें।"

छप्पय

अण्ड माहिँ जो रहैं वही ब्रह्माण्ड बनावैं।
रचि पचि जग कूँ फेरि स्वय तामें घुसि जावैं॥
द्वापर युग में क्रियायोग बहु विधि तैं गायो।
केवल कलि में कृष्ण नाम अति गम सुबतायो॥
करें ध्यान भगवान् को, जे नामनि कूँ गायँगे।
ते मख, पूजा पाठ को, सबहिँ सहज फल पायँगे॥

—::o::—

द्वादशादित्य-गण वर्णन

(१३६७)

मध्वादिषु द्वादशसु भगवान् काल रूप धृक् ।
लोकतन्त्राय चरति पृथग द्वादशभिर्गणैः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० ११ अ० ३२ श्लो०)

छप्पय

शौनक पूछें—सूत ! कहे द्वादश रवि तुमने ।
सब के सतक कहो सुने पहिले हू हमने ॥
कहें सूत—"प्रति मास रहें रवि सात सहायक ।
नाग अप्सरा, यक्ष, राक्षस, ऋषि, सुर, गायक ॥
चैत्र मास धाता रहें, माधव में रवि अर्यमा ।
ज्येष्ठ मित्र नामक तपें, वरुन तपें आषाढ़ मा ॥

वास्तव में काल तो अव्याकृत है, उसमें न विभाग है, न भेद । सूर्य नारायण के उदय अस्त से ही काल के विभाग की कल्पना करते हैं। सूर्य उदय न हों तो हम कैसे समझें कि आज प्रतिपदा

---

*सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! भगवान् सूर्य ही काल रूप धारण करते हैं, अर्थात् सूर्यदेव से ही काल का विभाग होता है। वे लोक यात्रा की प्रवृत्ति के निमित्त चैत्र आदि बारहो महीनों में विभिन्न द्वादश गणों के साथ घूमा करते हैं।"

है आज द्वितीया है, अब चैत्र है अब वैशाख है। काल का विभाग सूर्य ही करते हैं। सूर्य उदय हो गये, प्रातः काल हो गया, सूर्य सिर के ऊपर आ गये, मध्याह्न काल हो गया, सूर्य अस्त हो गये सायंकाल हो गया। सूर्य प्रत्यक्ष देव हैं, इसीलिये ब्राह्मणगण वेद मन्त्रों से तीनों काल में सूर्य का श्रद्धा सहित नित्य उपस्थान करते हैं। हमें जिन सूर्य के दर्शन होते हैं, वह तो उनका मंडल है; उसमें उनका विशाल रथ है, उस पर उस लोक के अधिष्ठातृदेव परम यशस्वी सूर्य नारायण विराजमान रहते हैं। पहिले सूर्यदेव एक ही थे। उनका तेज असह्य था, यहाँ तक कि उनकी पत्नी संज्ञा भी उनके तेज को न सह सकने के कारण भाग गयी। फिर इनके ससुर विश्व कर्मा ने इनके बारह रूप बना दिये। बारह भागों में बँट जाने से इनका तेज सह्य हो गया। इसीलिये प्रत्येक मास में सूर्य बदलते रहते हैं। सूर्य ही नहीं बदलते, उनका जितना मंत्रिमंडल और कार्य वाहक दल है वह भी बदल जाता है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं आपको सूर्य सप्तकों के सम्बन्ध में संक्षेप से सुनाता हूँ। यह लोक तन्त्र भगवान् विष्णु की अनादि अविद्या से रचित है। इसमें क्षण, लव, पल, घडी, मुहूर्त, दिन, रात्रि, पक्ष, मास, वर्ष, युग, मन्वन्तर, कल्प तथा महा-कल्पादि होते हैं। इस प्रकार समय विभाग न हो तो यह लोक तन्त्र चले ही नहीं। काल की कल्पना से ही समस्त व्यवहार होते हैं। इस व्यवहार को प्रवृत्त कराने वाले एक मात्र सूर्य हैं। वे ही काल स्वरूप, सर्व कर्मों के साक्षी सूर्य लोकों के व्यवहारों को देखते हुए द्रष्टा रूप से घूमते रहते हैं। सूर्य नारायण भगवान् से भिन्न नहीं। सम्पूर्ण लोकों के आत्मा और आदि कर्ता श्री हरि ही सूर्य रूप से प्रकाशित होते हैं। जितनी भी वैदिक क्रियायें होती हैं, वे समस्त सूर्य देव द्वारा ही सम्पन्न होती हैं। समस्त कर्मों के वे ही मूल कारण हैं। एक हैं सत् हैं उन्हें ही वेदज्ञविप्र गण

प्रकार से वर्णन किया करते हैं। यज्ञादि और उसके समस्त काय रूप में भगवान् सूर्य ही हैं। यज्ञादि कर्मों में इतने उपकरण होवे हैं। सर्व प्रथम काल का विचार किया जाता है। किस काल में कौन सा कार्य करना चाहिये। फिर देश का विचार होता है, किस देश में कार्य करने से वह सफल होगा। फिर यज्ञादि अनुष्ठान जो किया है वह की जाती है। यज्ञादि कर्म में कर्ता की भी प्रधानता होती है, फिर उस क्रिया को करने को करण चाहिये जैसे स्रुक स्रुवा, आज्यस्थाली आदि यज्ञ पात्र। तब कर्म होता है अश्वमेध, राजसूय आदि याग। यज्ञ यागादि वेद मन्त्रों से होते हैं। वेद मन्त्र न हो तो ये कर्म कैसे हों। यज्ञीय द्रव्य भी चाहिये जैसे तिल, जव, चावल आदि आदि। फिर भी देखना होता है कि इस कर्म का फल क्या हुआ। इस प्रकार काल, देश, क्रिया, कर्ता, करण, कर्म, वेद मन्त्र द्रव्य और फल ये नौ रूप उन सर्वात्मा भगवान् सूर्य देव के ही हैं। काल रूप धारी भगवान् सविता बारहों महीना में बारह रूपों से अपने गणों के साथ विचरते रहते हैं। उन्हीं के बारहों रूपों को आप सुनें।

शौनक जी ने पूछा—"अच्छा सूतजी! चैत्र के सूर्य का नाम क्या है और उनके गण कौन कौन हैं?"

सूत जी बोले—"महाराज! यह तो मैं पहिले ही बता चुका हूँ, कि प्रत्येक सूर्य के साथ एक एक ऋषि, गन्धर्व, नाग, अप्सरा, यक्ष, और राक्षस ये ६ रहते हैं। सूर्य देव को यह सप्तक हो जाता है। अब इन ६ ६ का वर्णन सुनिये। चैत्र मास के सूर्य का नाम धाता है। इनके साथ कृतस्थली अप्सरा, हेति नामक राक्षस, वासुकि नामक सर्प, रथकृत नामक यक्ष, पुलस्त्य नामक ऋषि तुम्बुरु नामक गन्धर्व ये ६ रहते हैं इनके साथ धाता नामक सूर्य चैत्र मास को व्यतीत करते हैं। इनका समय समाप्त हो जाता है, तो फिर वैशाख के सूर्य अपने दल बल के सहित सूर्य के रथ

पर अधिकार कर लेते हैं। चैत्र के सूर्य इन्हें सब कार्य सौंप कर अपने दल के सहित विश्राम करने चले जाते हैं।

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी वैशाख के सूर्य का क्या नाम है। उनके छैः गणों को भी बताइये।"

सूत जी बोले—"महाराज! वैशाख के सूर्य का नाम है अर्यमा। इनके साथ में पुलह ऋषि, अथौजा यक्ष, प्रहेति राक्षस, पुञ्जिकस्थली अप्सरा, नारद गन्धर्व और कच्छनीर नामक नाग रहते हैं, फिर ज्येष्ठ के सूर्य आ जाते हैं।"

शौनक जी ने कहा—"ज्येष्ठ के सूर्य का भी वर्णन कीजिये सूत जी।"

सूत जी बोले—"महाराज! ज्येष्ठ के सूर्य का नाम है मित्र। इनके साथ अत्रि ऋषि, पौरुषेय राक्षस, तक्षक सर्प, मेनका अप्सरा, हाहा गन्धर्व और रथस्वन यक्ष ये रहते हैं। फिर आ जाते हैं आषाढ़ के सूर्य।"

आषाढ़ के सूर्य का नाम है वरुण। इनके साथ वसिष्ठ ऋषि, रम्भा अप्सरा, सहजन्य यक्ष, हूहू गन्धर्व, शुक नामक नाग और चित्रस्वन नामक राक्षस रहते हैं इनके साथ ये आषाढ़ मास को बिताते हैं, फिर आ जाते हैं श्रावण के सूर्य।

श्रावण के सूर्य का नाम है इन्द्र। इनके साथ अङ्गिरा ऋषि, विश्वावसु गन्धर्व, श्रोता यक्ष, एलापत्र नाग, प्रम्लोचा अप्सरा और वर्य राक्षस ये सब मिल कर श्रावण मास का कार्य चलाते हैं। जब श्रावण समाप्त हो जाता है, तब भाद्रपद के सूर्य आ जाते हैं।

भाद्रपद के सूर्य का नाम है विवस्वान्। इन के साथ भृगु ऋषि रहते हैं, इनके संग में उग्रसेन गन्धर्व, व्याघ्र राक्षस, आसारण यक्ष, अनुम्लोचा अप्सरा तथा शङ्खपाल नामक नाग

रहते हैं। इनसब के साथ विवस्वन् परे भाद्रपद मास को समाप्त करते हैं, तब आते हैं आश्विन के सूर्य नारायण।

आश्विन के सूर्य का नाम त्वष्टा है। इनके साथ जमदग्नि ऋषि रहते हैं। कम्बल नाग, ब्रह्मापेत राक्षस, धृतराष्ट्र गन्धर्व शतजित यक्ष और तिलोत्तमा अप्सरा, ये सब इनकी सेवा में सर्वथा समुपस्थित रहते हैं। इनके साथ ये आश्विन के कार्य को सम्पन्न करते हैं। इनके समय समाप्त के अनन्तर फिर कार्तिक के सूर्य आते हैं।

कार्तिक के सूर्य का नाम है विष्णु। इनके साथ विश्वामित्र ऋषि रहते हैं। अश्वतर नाग रम्भा नाम की अप्सरा, सूर्य वर्चा गन्धर्व, सत्याजित यक्ष, और मखापेत राक्षस ये इनके सम्पर्क में हैं। इनकी सहायता से ये कार्तिक मास का निर्वाह करते हैं। तदनन्तर मार्गशीर्ष के सूर्य समुपस्थित हो जाते हैं।

मार्गशीर्ष के सूर्य का नाम है अंशु। इनके साथ कश्यप मुनि रहते हैं तथा इनके गण में तार्क्ष्य यक्ष, ऋतसेन गन्धर्व, उर्वशी अप्सरा, विद्युच्छत्रु राक्षस तथा महाशंख नाग ये प्रसिद्ध हैं। जब तक इनका कार्य काल रहता है, तबतक ये अपने सहयोगियों के साथ कार्य चलाते हैं। कार्य काल समाप्त होते ही पौष के सूर्य आ जाते हैं।

पौष के सूर्य का नाम है भग। इनके साथ आयु नामक ऋषि रहते हैं। स्फूर्ज राक्षस, अरिष्ट नेमि गन्धर्व, ऊर्णयक्ष, कर्कोटक नाग तथा पूर्व चित्ति अप्सरा ये इनके गण हैं। इनके सहित ये पौष मास की परि समाप्ति करते हैं तदनन्तर आ जाते हैं माघ के सूर्य।

माघ के सूर्य का नाम है पूषा। इनके साथ गौतम ऋषि रहते हैं। इनके गण में धनञ्जय नाग, वात राक्षस, सुषेणगन्धर्व सुरुचि यक्ष तथा घृताची अप्सरा हैं। फिर फाल्गुन के सूर्य आते हैं।

फाल्गुन के सूर्य का नाम है पर्जन्य। उनके साथ भरद्वाज ऋषि, क्रतुनामक यक्ष, वर्चा नामक राक्षस, सेनजित् अप्सरा, विश्व गन्धर्व और ऐरावत नामक नाग रहते हैं। इस प्रकार मुनिवर! ये बारह मासों के बारह सूर्य लोकयात्रा चलाते हैं। ये बारह भगवान् विष्णु की विभूतियाँ हैं। भगवान् ने ही इस लोक व्यव-

हार को चलाने के लिये बारह रूप रख लिये हैं। इसलिये सभी को सायंकाल और प्रातः काल सूर्य नारायण की पूजा करनी चाहिये, उन्हें अर्घ्य देना चाहिये तथा स्तुति करनी चाहिये। जो इस प्रकार समस्त कर्मों के साक्षी भगवान् सूर्य नारायण की उपासना करते हैं उनके सम्पूर्ण पाप नष्ट हो जाते हैं।
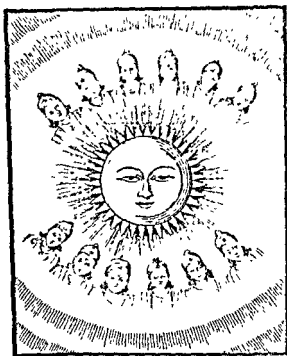
शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ये सूर्यनारायण भगवान् क्या करते हैं ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! ये सूर्यनारायण ही तो सब कुछ करते हैं। ये ही समुद्रों में से जल लेते हैं, ये ही वर्षा वर्षाते हैं। ये ही सब को प्रकाश तथा जीवन दान देते हैं। अपने छै गणों के साथ लिये बारहो महीने सर्वत्र घूमा करते हैं तथा लोक परलोक में सुमति का प्रसार करते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! ये जो सूर्य के छै गण हैं इनका काम क्या है ? कौन कौन किस किस काम को किया करते हैं ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! सूर्यदेव का बड़ा भारी रथ है। उसमें बैठकर भगवान् सविता यात्रा करते हैं। जो ऋषि होते हैं, वे वेदत्रयी से उनका स्तवन करते हैं। गन्धर्व उनके समीप रहकर सुन्दर स्वर में स्वर ताल के सहित गायन करते हैं। अप्सरायें सूर्यदेव का मनोरञ्जन करने को नृत्य किया करती हैं। रथ ढीला न हो जाय उसमें किसी प्रकार की त्रुटि न आ जाय इसका भार नागों पर रहता है, वे रथ को कसे रहते हैं, जिससे कभी भी यात्रा में व्यति क्रम न पड़े। रथ का जो साज है उसे सजाने तथा सम्हाले रहने का काम यक्षों का है। उस विभाग की देखदेख यक्ष करते हैं। रथ के छन्दोमय अश्वों को श्रम न हो इसलिये राक्षस रथ को पीछे से धकेलते रहते हैं। ये गण तो ऐसे हैं, कि प्रति-मास बदलते रहते हैं। इनके अतिरिक्त साठ सहस्र निर्मल स्व-भाव के बालखिल्य नामक महर्षिगण भी सदा सूर्य मंडल में ही रहते हैं। सूर्यनारायण की ओर मुख करके आगे आगे उनकी स्तुति करते हुए चलते हैं। किसी भी मास के सूर्य हों ये एक रस भाव से सबकी स्तुति करते हैं। यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में बारह महीनों के सूर्य के गणों तथा उनके कार्यों का वर्णन किया। मुनियो!

"आदि अन्त से रहित अजन्मा भगवान् क्रीड़ा के निमित्त प्रत्येक कल्प में स्वयं ही अपना विभाग करके क्रीड़ा करते रहते हैं तथा समस्त लोकों का पालन करते हैं। अनन्त विभूति भगवान् वासुदेव की महिमा अनन्त है, उसका पार पाना प्राणियों के लिये बड़ा ही दुष्कर है। इसलिये संसार में जो भी कुछ है उसे भगवान् का ही रूप समझ कर प्रणाम करना चाहिये। सबका श्रद्धा सहित सत्कार करना चाहिये। मुझसे कुछ बना वैसा आपके प्रश्नों का उत्तर दिया। अब आप और क्या पूछना चाहते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आपकी बड़ी आयु हो। महाभाग आपने बड़ी ही बुद्धिमानी के साथ हमारे सभी प्रश्नों का उत्तर दिया। अब हमको कुछ पूछना शेष नहीं है। अब आपकी कुछ और इच्छा हो तो सुना दें, नहीं तो अब आप कुछ दिन विश्राम करें। तीर्थयात्रा कर आवें। जलवायु बदल आवें। एक स्थान पर रहते रहते कुछ चित्त ऊब भी जाता है। आजकल पृथिवी पर कलियुग छा गया है। राजवंश नष्ट हो गये हैं। धर्महीन लुटेरे शासक बन गये हैं। धर्म प्रधान पवित्र भारत भूमि पर आजकल अधर्म का प्राबल्य हो रहा है। धर्म और अधर्म दोनों ही भगवान् से उत्पन्न हुए हैं दोनों का ही समय समय पर प्राबल्य होता है। अब अधर्म का ही समय है, अधर्म और कलियुग में पुरानी मित्रता ही है। अधर्मी लोगों को भी आप कलियुग से बचने का उपाय बताइये। कथाकीर्तन का महत्त्व समझा आइये।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज! समझाने से कौन समझता

है। सभी स्वकर्म सूत्र में आबद्ध होकर कर्म कर रहे हैं। हाँ, एक बात और शेष रह गयी मैंने अपनी बुद्धि के अनुसार भागवत की कथायें तो सुना दीं। अब जो बीच के भूगोल, खगोल, दर्शन, कर्म, ज्ञान, भक्ति, स्तुति, व्रत तीर्थ आदि विषयों पर कुछ कहना है उसे फिर कभी अवसर मिलने पर सुनाऊँगा। मेरी भी इच्छा अब कुछ विश्राम करने की है, किन्तु मैंने आपको अभी भागवती कथाओं की अनुक्रमणिका नहीं सुनायी। ग्रन्थ की विषय सूची जब तक न हो, तब तक वह पूरा नहीं माना जाता। अब तो प्रथा ऐसी चल गयी है, कि ग्रन्थ के आदि में ही विषय सूची दे देते हैं। प्राचीन प्रथा अन्त में ही देने की है, आप आज्ञा दें तो मैं विषय सूची और सुना दूँ।"

शौनकजी कहा—"अहा, सूतजी! इसे तो हम भूल ही गये, यह तो अत्यावश्यक विषय है। विषय सूची हमें अवश्य सुनावें।"

सूतजी बोले—"महाराज! विषय सूची कैसे सुनाऊँ? प्रत्येक खंड की सुनाऊँ तब तो बहुत विस्तार होजायगा। महाराज परीक्षित् को मेरे भगवान् गुरुदेव शुक ने सात दिनमें भागवत सुनायी थी इसीलिये भागवतका सप्ताह होता है। प्रभुदत्त ने भी भाषा में जो "भागवत चरित" लिखा है वह भी सप्ताह क्रम में ही है। उसी का विस्तार भागवती कथा में है। कहना चाहिये भागवती कथा भागवत चरित का भाष्य ही है। अतः मैं प्रथम लेखक के सम्बन्ध में कहकर तब सप्ताह क्रम से ही विषय सूची सुनाऊँगा।

शौनक जी ने कहा—"सूतजी ! जैसी आपकी इच्छा । क्रम से ही उचित होगा । सुनाइये ।"

सूतजी बोले—"अच्छा, सुनिये महाराज !"

छप्पय

श्रावन में रवि इन्द्र भाद्र में विवस्वान रवि ।
त्वष्टा आश्विन रहें विष्णु की कातिक में छवि ॥
मार्गशीर्ष में अंशु पौष के भग हैं नामी ।
फागुन के परिजन्य माघ के पूषा स्वामी ॥
सब मासनि के पृथक रवि, पृथक पृथक गन सबनि के ।
स्वयं सच्चिदानन्द हरि, स्वामी सबई गुणनि के ॥

—:o:—

लेखक के सम्बन्ध में

(१३६८)

अत्र ब्रह्म परं गुह्यं जगतः प्रभवाप्ययम् ।
ज्ञानं च तदुपाख्यानं प्रोक्तं विज्ञान संयुतम् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ४ श्लो०)

छप्पय

निज मति के अनुसार कथा मुनिवर ! शुभ भाखी ।
अन्तरयामी श्याम सकल जीवनि के साखी ॥
भई कथा तो पूर्ण विषय सूची अब भाखूँ ।
सब मिलि देहिँ अशीष सदा हिय में हरि राखूँ ॥
धर्म, कृष्ण अरु व्यास, शुक, सब के पुनि पुनि पग परूँ ।
पुन्य भागवत चरित की, अनुक्रमिका बरनन करूँ ॥

प्राचीन परिपाटी ऐसी थी, कि सब काम करने के अनंतर पिछले सब विषयों पर एक विहंगम दृष्टि डालते थे। यात्रा की समस्त तैयारियाँ कर लेने पर फिर एकबार सब वस्तुओं पर एक

---

*सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थ में जगत् की उत्पत्ति और प्रलय के स्थान परम गुह्य ब्रह्म और उनको प्राप्त कराने वाले विज्ञान सहित ज्ञान का वर्णन किया गया है।"

दृष्टि डाल ली जाती है, कि सब आवश्यक सामान आ गया है या नहीं। वाहन से उतरने पर भी फिर सब वस्तुएँ सम्हाल ली जाती हैं, कि कोई वस्तु छूट तो नहीं गयी। इसी प्रकार सम्पूर्ण ग्रन्थ कहने के अनन्तर फिर से उसके सब विषयों का वाचन किया जाता है, कि हमने क्या क्या कहा। इससे कहने वाले को तथा पाठकों को सभी को सुविधा होती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भागवती कथा तो समाप्त हो गयी, अब मैंने जिस जिस खण्ड में जो जो भगवत् चरित्र कहे हैं, उनकी एक छोटी सी तालिका में आप लोगों को और सुनाता हूँ।"

शौनक जी ने कहा—"हाँ, सूतजी! विषय सूची हमें आप अवश्य सुनावें। सर्व प्रथम आप प्रथमाह की ही विषय सूची कहें।"

सूतजी बोले—"महाराज! इस ग्रन्थ में सब धर्म संगत ही बातें हैं। यह विशुद्ध निर्व्यलीक धर्म ग्रन्थ है, धर्म इस ग्रन्थ में साक्षात् मूर्तिमान् होकर विराजते हैं, अतः सर्व प्रथम मैं हरिभक्ति रूप अत्युत्तम महान भागवत धर्म को प्रणाम करता हूँ। इस ग्रन्थ के आदि अन्त में सर्वत्र श्री हरि का ही वर्णन है अतः कल्याण कारी सकल कल्मषहारी श्री कृष्ण चन्द्र भगवान् के पाद पद्मों में भी प्रणाम करता हूँ, आप सब ब्राह्मणों ने बड़ी श्रद्धा से इन पुण्य कथाओं को श्रवण किया है, अतः समस्त ब्राह्मणों का भी मैं अभिवादन करता हूँ। सबको प्रणाम करके अब मैं ग्रन्थोक्त सत्य सनातन धर्म के विषयों को कहता हूँ।

मुनियो! समस्त सृष्टि के समस्त कर्मकाण्ड उपासना तथा भक्ति के प्रवर्तक श्री हरि ही हैं। यह सम्पूर्ण जगत् हरिमय ही है। श्री हरि ही लीला विलास के लिये जगन्मय बन गये हैं। सर्वत्र श्री हरि ही हरि हैं। हरि के बिना किसी का अस्तित्व नहीं।

वे ही माया हैं, वे ही विद्या हैं, वे ही अविद्या हैं, वे ही लक्ष्मी हैं, वे ही नारायण हैं। वे ही श्री कृष्ण हैं वे ही श्रीमती राधा हैं। अनन्त कोटि ब्रह्माण्ड उन्ही से उत्पन्न होते हैं। उन्हीं में विलीन हो जाते हैं।

इस ब्रह्माण्ड को उत्पन्न करने के लिये पहिले भगवान् विष्णु बने, फिर स्वयं ही ब्रह्मा बन गये। अब एक से दो हो गये। ज्ञान अज्ञान का भेदभाव हुआ। ब्रह्माजी को कुछ सूझता ही नहीं था। वे कल्याण का मार्ग खोजने लगे। भागवत धर्म की उनके मन में जिज्ञासा हुई। ब्रह्मा रूप से शिष्यत्व धारण किया, विष्णु रूप से गुरु हो गये। भगवान् ब्रह्मा शिष्य रूप से गुरु रूप हो भगवान् विष्णु की शरण में गये। भागवत् धर्मों की जिज्ञासा की। तब उन्होंने 'तप' इन दो शब्दों में भागवत धर्म का उपदेश दिया। तप करते करते भगवान् ब्रह्मा जी के हृदय में उत्पन्न हुए। उन्हें समस्त भागवत धर्मों का ज्ञान हो गया। फिर ब्रह्मा जी के मानस पुत्र नारद जी को भागवत धर्म की जिज्ञासा हुई। नारद जी की बुद्धि ब्रह्मा जी से कुछ स्थूल ही थी, अतः ब्रह्माजी ने पाँच श्लोकों में समस्त भागवत धर्म का उन्हें उपदेश दिया। फिर पराशर नन्दन व्यास को जिज्ञासा हुई। तब कृपा कर के नारद जी ने कई अध्यायों में उन्हें उपदेश देकर आज्ञा दी—"देखो, मैंने तो तुम्हें संकेत मात्र कर दिया है। तुम समाधि में भगवान् की सब चेष्टाओं का अनुभव करो और उन्हें लोक कल्याण के निमित्त विस्तार से वर्णन करो। जिससे सर्व साधारण लोग इस ज्ञान को समझ लें।"

भगवान् व्यास ने अपने गुरुदेव की आज्ञा शिरोधार्य की और इस भागवत संहिता की रचना की। परमहंस चक्र चूड़ामणि मेरे गुरुदेव भगवान् शुक ने अपने पिता भगवान् व्यास से इस संहिता को पढ़ा। जब राजा परीक्षित् को उन्होंने इस सात्वत संहिता को

सुनाया तब उसका और विस्तार हुआ। उस सभा में मैंने भी उसे सुना और सुनते सुनते ही सबको धारण किया। नैमिषारण्य में आकर मैंने आप सबको सुनाया उस समय और भी विस्तार हो गया। तब मेरे मन में गुरु कृपा से एक भावना उठी। मैंने सोचा—"अब तक तो सभी लोग निर्मल बुद्धि के होते रहे हैं, उनकी धारणा शक्ति विपुल और तीव्र होती रही है। आगे कलियुगी लोग क्षुद्र बुद्धि तथा मंद बुद्धि वाले होंगे। मैं क्यों नहीं इस व्यास कृत संहिता को लिपिबद्ध कर लूँ।" यही सोचकर मैंने इस संहिता को लिपि बद्ध कर लिया। फिर भी मेरे मन में संशय रह गया, कि कहीं इसमें कुछ त्रुटि तो नहीं रह गयी है। अतः मैं इसे लेकर अपने गुरुके भी गुरु जगद्गुरु भगवान् व्यास के समीप ले गया। भगवान् व्यास ने आदि से अंत तक इस संहिता का अवलोकन किया और अत्यन्त ही प्रसन्नता प्रकट करते हुए बोले—"सूत! तुमने यह बहुत ही सुन्दर काम किया। मेरी संहिता को तुमने ज्यों का त्यों लिपिबद्ध कर लिया। अब यह सर्वसाधारण के काम की हो गयी। इस अठारह सहस्र श्लोक वाली मेरी संहिता का संसार में सर्वत्र प्रचार होगा। मुक्त, मुमुक्षु तथा संसारी बद्ध प्राणी सभी इसे सुनकर प्रसन्न होंगे। अब कलियुग आ गया है, तुम इस संहिता को यहीं छोड़कर ऊर्ध्व रेता ऋषियों के संग जनलोक में चले जाओ। कलियुग आने पर ये नैमिषारण्य के अठासी सहस्र ऋषिजन लोक में चले जाते हैं। तुम उन्हें वहाँ जाकर इस कथा को और भी विस्तार के साथ सुनाना।"

अपने परम गुरु भगवान् व्यास की आज्ञा शिरोधार्य करके मुनियो! मैं आप सब को कथा सुनाने यहाँ चला आया। तब तक पृथिवी पर सर्वत्र कलियुग का प्रभाव छा गया। जब तक कलि के पाँच सहस्र वर्ष नहीं हुए थे तब तक इतना अधर्म नहीं था। अब तो सभी लोग अर्थ परायण हो गये प्रभावशाली कोई उत्पन्न ही

नहीं होना। राजा नष्ट हो गये। विद्वान रहे नहीं। तपस्वियों के दर्शन दुर्लभ हो गये। लोग आठों प्रहर अन्न की चिन्ता में व्यस्त रहने लगे। सद्गुण तो रहे नहीं। कोई प्रभावशाली राजा सम्राट् भी नहीं रहा। सभी शासक बनने की धुन में गुट बनाने लगे। सभी अपने को बुद्धिमान समझने लगे। संस्कृत देववाणी का पठन पाठन छूट गया। सभी विदेशी भाषा पढ़ने में अपना गौरव मानने लगे। जो भौतिक विज्ञान द्वारा अधिक जनसंहारक तथा विषयवर्धक वस्तुओं का आविष्कार कर सके उसी को लोग विज्ञानी कहने लगे। भगवत् चर्चा की ओर से लोग पराङ्मुख हो गये।

तब मुझे बड़ी चिन्ता हुई कि भागवत धर्मों का कैसे अस्तित्व रहेगा। भागवती कथाओं का कैसे प्रचार होगा। सब लोग उपन्यासों की कल्पित दूषित कहानियों के पढ़ने में ही लगे रहेंगे तो उनका कल्याण कैसे होगा। लोग परमार्थ पथ को भूल जायँगे क्या ?" जनलोक में भी मुझे यही चिन्ता बनी रहती थी और आपलोगों को देववाणी में मैं कथा सुनाया करता था। एक दिन घूमते फिरते नारद मुनि जनलोक में आये। आप सब लोगों ने उनका स्वागत सत्कार किया मैं ने भी उनकी अभ्यर्चना की। नारद जी ने मुझसे पूछा—"सूत ! तुम उदास क्यों हो ? ऐसा लगता है, तुम्हें कोई मानसिक चिन्ता है ?"

मैंने कहा—"भगवन् ! आप त्रिकालज्ञ हैं, सबके घट घट की जानने वाले हैं। मेरी मानसिक चिन्ता आप से छिपी थोड़े ही रह सकती है। आप इस समय कहाँ से पधार रहे हैं ?"

नारद जी ने कहा—"मैं सीधा अभी भारतवर्ष से आ रहा हूँ।"

मैंने पूछा—"कहिये, पुण्य-भूमि भारतवर्ष का क्या हाल चाल है ?"

नारद जी ने कहा—"भारतवर्ष का हाल चाल क्या पूछते हो सूतजी ! जिस पुण्य भूमि मे निरन्तर यज्ञ, याग, पर्व उत्सव होते रहते थे, उस भूमि पर न कहीं कृष्ण कथा है न कृष्ण कीर्तन। क्षुद्र धर्मी भौतिकवादी विदेशियों का बोल बाला है उन्हीं की सभ्यता सर्व श्रेष्ठ समझी जाती है, लोग प्राचीन इतिहास पुराणों की खिल्लियाँ उड़ाते हैं। कृष्ण कीर्तन करते समय लजाते हैं। भागवती कथाओं को कपोल कल्पित बताते हैं। साहित्य के नाम से दुराचार का सर्वत्र प्रचार हो रहा है।'

दुखी होकर मैंने कहा—"महाराज ! किसी का इसमें क्या दोष है. समय का प्रभाव है। कलियुग की और अधर्म की घनिष्ट मित्रता है। कलियुग में तो अधर्म बढ़ेगा ही।"

नारदजी ने कहा—"सूतजी ! आपका कथन सत्य है। कलि-युगी लोगों की अधर्म में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। फिर भी कुछ लोग कथा कीर्तन के लिये उत्सुक रहते हैं। क्योंकि कभी भी किसी वस्तु का बीज नाश नहीं होता। अब भी भारतवर्ष में समय समय पर संत महात्मा भगवत् भक्त उत्पन्न होते हैं और ये नाम संकीर्तन नाम जप का प्रचार करते हैं। कुछ लोग भगवन्नामों का कीर्तन भी करते हैं। धर्म का सर्वथा लोप नहीं हुआ है। कहीं कहीं यज्ञयाग भी सुनायी देते हैं। भगवन्नाम संकीर्तन के महोत्सव भी होते हैं। किन्तु भागवती कथाओं का उतना प्रचार नहीं है। इसमें उनका भी दोष नहीं उनके पास साधन नहीं हैं।"

मैंने कहा—"महाराज ! लोगों की मूर्खता है, मैं कितनी सुन्दर भागवती संहिता लिपिबद्ध करके छोड़ आया हूँ। लोग उसी का पाठ करें उसी का सप्ताह करें उससे प्राणी मात्र का कल्याण हो सकता है। श्री मद्भागवत में तो भगवान् व्यास ने सर्व वेद इतिहासों का सारातिसार तत्व कह दिया है।"

नारद जी ने कहा—"सूतजी ! आपका कथन सत्य है। श्री

मद्भागवत में सब कुछ है। भागवत धर्म का इतना उत्कृष्ट ग्रंथ और कहीं भी प्राप्त नहीं हो सकता। भारतवर्ष में इसका प्रचार भी है, कहीं कहीं इसके सप्ताह भी होते हैं, किन्तु महाभाग! इस इतने क्लिष्ट ग्रन्थ को सब कोई समझ नहीं सकते। इससे लोगों को रस नहीं मिलता केवल विधिवाक्य से बँधकर इसका लोग पाठ सप्ताह करते हैं।"

मैंने कहा—"महाराज! न समझने की तो ऐसी कोई बात नहीं। भगवान् व्यास ने तो बड़ी सरलता से गूढ़ तत्वों को खोला है।"

नारद जी ने कहा—"भैया, यह सब तो सत्य है, किन्तु युग का भी तो कुछ प्रभाव होता है। पहिले तो सभी को पौराणिक कथाओं का ज्ञान, भक्ति तथा इतिहास का ज्ञान था; संकेत किया और समझ गये अब वह बात तो रही नहीं जब तक पूरी कथा न सुनाई जाय कोई समझ नहीं सकता। दूसरे अब भारतवर्ष की व्यापक भाषा है हिन्दी। हिन्दी में जो बात कही जाय, उसे सब समझ सकते हैं। तीसरे गूढ़ तत्वों के लिये दृष्टान्त चाहिये। ऐसा कोई कथा का विस्तृत ग्रन्थ हो, तब जिज्ञासुओं की पिपासा शान्त हो सकती है। यदि आपकी भावना यह है, कि भारतवर्ष में भागवती कथाओं का प्रसार हो तो आप एक काम करें।"

मैंने पूछा—"कौन काम करूँ महाराज! मुझे तो आप जो भी आज्ञा देंगे उसी को करूँगा।"

नारद जी ने कहा—"अब आप देव भाषा में कथा न कह कर हिन्दी भाषा में कहें। उसका प्रचार भारत वर्ष में होगा।"

मैंने कहा—"महाराज! हिन्दी में तो मैं कह सकता हूँ, किन्तु मैं यहाँ हिन्दी में कहूँगा तो उसका प्रचार भारत वर्ष में कैसे होगा?"

नारदजी ने कहा—"उसका प्रबन्ध मैंने कर लिया है। मैं भी

तो वीणा बजाता हुआ इसी भावना से समस्त लोकों में घूमता रहता हूँ कि लोगों में पारमार्थिक भावों का प्रचार प्रसार हो।"

मैंने उत्सुकता के साथ पूछा—"भगवन् ! आपने क्या प्रबन्ध किया है, उसे भी तो मैं सुन लूँ।"

नारद जी ने कहा—"प्रतिष्ठानपुर प्रयाग राज में एक अल्प मति व्यक्ति प्रभुदत्त है, वह आपकी कथाओं को हिन्दी भाषा में लिखेगा, उन्हें सभी श्रेणी के लोग बड़ी उत्सुकता से पढ़ेंगे। इससे लोगों में धार्मिक भावना भी जागृत होगी और उनका मनोरंजन भी होगा।"

मैंने कहा—"भगवन् ! जो व्यक्ति अल्पमति है, वह मेरी कही हुई कथाओं को क्या लिख सकता है।"

नारदजी ने कहा—"सूतजी ! आप भगवन्नाम की महिमा भूल गये क्या ? भगवन्नाम के प्रभाव से असंभव भी संभव हो सकता है। अपढ़ भी वेद पाठ कर सकता है। मैंने उसे भगवन्नाम की शिक्षा दीक्षा देकर इस योग्य बना दिया है।"

मैंने कहा—"भगवन् ! कलियुग में आप तो किसी को प्रत्यक्ष होकर शिक्षा दीक्षा देते नहीं। फिर आपने प्रभुदत्त को शिक्षा दीक्षा कैसे दी।"

नारद जी ने कहा—"सूतजी ! जिससे भी हमें जो काम लेना होता है, उसे वैसा ही बना लेते हैं। मैंने उसे भक्त रूप में नाम की शिक्षा दीक्षा दी।"

मैंने जिज्ञासा भरी वाणी में कहा—"भक्त रूप से आपने उस अल्प मति व्यक्ति पर कैसे कृपा की कृपा करके उसे भी मुझे सुना दें।"

नारद जी ने कहा—"सूतजी ! प्रयाग प्रतिष्ठान पुर पृथिवी देवी का जघन स्थान है। स्त्रियों का जघन ही सर्वोत्कृष्ट स्थान है। प्रयाग में त्रैलोक्य पावनी गंगा यमुना आकर मिली हैं। कभी च्यवन होने:

वाला अक्षयवट यहाँ है। प्रयागराज समस्त तीर्थों के राजा हैं। संसार में इतना पावन क्षेत्र और कहीं नहीं है। श्री कृष्ण भगवान् ने ब्रजभूमि से ठेल ठाल कर प्रभुदत्त को यहाँ भेज दिया। वह रसमयी ब्रजभूमि को छोड़कर यहाँ आना नहीं चाहता था, किन्तु जब ब्रजेश की ही इच्छा है तो कोई क्या कर सकता है। उसे आना ही पड़ा और संध्या वट के नीचे निवास करना पड़ा। मेरी दृष्टि उसपर पड़ी और मैं तुरन्त समझ गया कि भगवान् ब्रजेन्द्र नन्दन ने इसे किस काम के लिये भेजा है। वह नित्य श्री राधा कृष्ण के मन्दिर से पुराणों की कथा सुनकर काशी की ओर एक तालाब तक टहलने जाता था।

माघ का महीना था, मैं अपने कुछ भक्तों के सहित लाल झंडा

लिये "श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।" इस अपने परम प्रिय मंत्र का कीर्तन करते हुये त्रिवेणी की ओर जा रहा था। यह नाव पर बैठा था, इसने जहां इस मंत्र को सुना इसके सम्पूर्ण अंग में विद्युत सी दौड़ गयी। यह पालतू हरिन की भाँति मेरे स्वर में स्वर मिलाकर इसी मंत्र का कीर्तन करते करते मेरे पीछे पीछे हो लिया। हंसतीर्थ के समीप तक यह मेरे साथ आया। तब से यह मंत्र इसका इष्ट मंत्र हो गया। अहर्निशि यह इसी मंत्र का निरन्तर कीर्तन करता रहता था। तब से यह चार काम करने लगा—

(१) आपकी भागवती संहिता का बिना समझे पाठ
(२) भक्त और भगवत् चरित्रों का लिखना
(३) पुण्य तीर्थों में भ्रमण करना
(४) "श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे। हे नाथ नारायण वासुदेव।" इस महा मंत्र का निरन्तर कीर्तन करते रहना।

इन चारों कार्यों के करने से उसमें लिखने की शक्ति आ गयी है, वह आपकी भागवती कथाओं को भाषा में लिख सकेगा। मैं अभी बदरिकाश्रम से आ रहा हूँ। मैंने उससे कहा भी "ऐसे ऐसे तुम्हें भागवती कथाओं को लिखना चाहिये।" उसने कहा—"मुझमें लिखने की योग्यता कहाँ है?"

सूतजी! मनुष्य में यथार्थ में इतनी योग्यता नहीं कि वह भगवान् की लीलाओं को लिख सके। भगवान् को जिससे लिखाना होता है उसे स्वयं ही वे लिखने की शक्ति प्रदान कर देते हैं। सो, मैं उसे इस योग्य कर आया हूँ, अब आप भाषा में कथा आरंभ करें प्रभुदत्त उसे सुनकर लिपिबद्ध कर लेगा। फिर जिसके भाग्य में होगा, वह इन कथाओं को पढ़ेगा सुनेगा।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! ये नारद मुनि कितने परानुग्रह कांक्षी हैं। ये सदा लोगों के उपकार की बात सोचते रहते हैं।

लोगों को परमार्थ का सरल से सरल सुगम से सुगम मार्ग दिखाते रहते हैं। मुझे इस प्रकार आज्ञा देकर देवर्षि नारद तो इच्छानुसार अन्य लोकों में घूमने चले गये। मैंने आप सब को भाषा में कथा सुनानी आरम्भ कर दी।" आप भी अत्यन्त प्रसन्नता के साथ इस भाषा की 'भागवती कथा' को सुनते रहे। प्रभुदत्त इन सब को लिपिबद्ध करता गया। अब इस भागवत दर्शन ग्रन्थ का कथा-भाग समाप्त हो गया। आपने मुझसे जो जो प्रश्न किये, उन सब के मैंने यथामति श्री मद्भागवत संहिता के आधार से उत्तर दिये। कहीं मैंने किसी विषय का बहुत विस्तार से उत्तर दिया है, कहीं किसी विषय को अत्यन्त ही संक्षेप में कह दिया है। कहीं संक्षेप विस्तार दोनों ही किये हैं। मनुष्यों के पुरुषार्थ का साधन भूत यह भगवान् विष्णु का परम पवित्र दिव्य चरित्र अत्यन्त ही मनोहर है, धन्य है यश, कीर्ति, तथा परम गतिको देने वाला है। इस ग्रन्थ में इधर उधर की विषय सम्बन्धी वार्ता नहीं है. आदि, मध्य, अन्त तथा सर्वत्र ही इसमें समस्त पापों को हरने वाले, समस्त इन्द्रियों तथा मन के प्रवर्तक, शरणागत प्रतिपालक, प्रपन्न पारिजात भक्त वत्सल भगवान् श्री नारायण का ही कीर्तन किया गया है। जो जगत् के एकमात्र उत्पत्ति के स्थान हैं, जो उत्पन्न की हुई सृष्टि का विष्णु बनकर पालन करते हैं और अन्त में रुद्र बनकर संहार भी करते हैं। उन परब्रह्म प्रभु का इसमें सर्वत्र वर्णन है। उनको प्राप्त करने वाले समस्त साधन तथा ज्ञान विज्ञान का भी इसमें वर्णन है। भक्ति योग का भी इसमें विस्तार से वर्णन किया है। साध्य रूपा भक्ति तथा साधन भूता भक्ति का भी इसमें विशुद्ध वर्णन है। मेरे गुरुदेव ने सात दिन में महाराज परीक्षित् को यह कथा सुनायी थी इसलिये इसे प्रथमाह, द्वितियाह, तृतियाह इस प्रकार सप्ताहों में बाँट दिया है। पद्य रूप में इन कथाओं का सार "भागवत चरित" के नाम से पृथक् प्रकाशित है। उसमें भी सप्ताह

हैं। अब विषय सूची और शेष है, तो अब विषय सूची आप और सुन लें। फिर मैं कुछ दिन को आप से आज्ञा चाहूँगा। हाँ, तो प्रथमाह् की सूची सुनिये।"

छप्पय

मेरो तुमरो मिलन व्यास नारद सम्वादा।
फेरि भीष्म की कही कथा जो सबके दादा॥
तिनि परलोक प्रयान द्वारका पुनि प्रभु आये।
भया परीक्षित् जनम राज में बजे बधाये॥
विदुर और धृतराष्ट्र को, गृह तजि पुनि हरिपुर गमन।
कह्यो कृष्ण निरयान पुनि, पाण्डु सुतनि को हिम निधन॥

प्रथमाह्न की विषय-सूची

१३६९

भक्ति योगः समाख्यातो वैराग्यं च तदाश्रयम् ।
पारीक्षित मुपाख्यानं नारदाख्यानमेवच ॥*
(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ५ श्लो०)

छप्पय

विजय परीक्षित् फेरि करयो कलि जैसे वश में ।
दीयो द्विज ने शाप गये नृप गंगा तट में ॥
श्री शुक भूपति मिलन करया ज्यों नृप अभिनन्दन ।
पूजा विधिवत करी लगायौ माथे चन्दन ॥
अवतारनि के चरित शुभ सृष्टि कथा संक्षेप में ।
विदुर और उद्धव मिलन, कही सृष्टि पुनि शेष में ।

कथा कहने के पूर्व उसकी रंगभूमि तैयार करनी पड़ती है,उसे भूमिका भी कहते हैं उसमें कथनीय विषय पर प्रकाश डाला जाता है। भूमिका पढ़ने से पाठक यह समझ जाते हैं, कि वक्ता को कौन-सा विषय कहना है जैसे श्रीमद्‌भागवत का प्रधान विषय है

---

*श्री सूत जी कह रहे हैं—"मुनियो! प्रथमाह में प्रथम भक्ति योग का वर्णन है तथा भक्ति के आश्रित रहने वाले वैराग्य का भी वर्णन है, तदनन्तर महाराज परीक्षित् जी की कथा तथा नारद जी की कथाओं का कथन किया गया है।"

भक्ति प्रतिपादन। तो आरम्भ में-सर्व प्रथम-उसमें भक्ति का ही महत्व गाया गया है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! अब मैं अपनी कही हुई भाषा भागवती कथा की विषय सूची कहता हूँ। आरम्भ में लेखक ने अपनी राम कहानी कही है। फिर जयार्थ-मंगलाचरण किया है। तदनन्तर नैमिषारण्य का उत्पत्ति आप सब का आगमन और आप के सत्र की बात है फिर मेरे सम्बन्ध की चर्चा की है। कैसे मुझे भागवत संहिता को प्राप्ति हुई, कैसे मेरे पिता की उत्पत्ति हुई बल देव जी ने कैसे उनका वध किया, फिर किस प्रकार आप लोगों ने मुझे यह व्यासासन दिया इन सब बातों का संक्षिप्त वर्णन इस सूत जी नामक अध्याय में है। इसके अनन्तर सर्वोत्कृष्ट नामक अध्याय है।

आप लोगों ने मेरे आने पर जो मुझ से परमार्थ का सर्वोत्कृष्ट प्रश्न पूछा है उसका वर्णन है। तदनन्तर मैंने जो भक्ति को ही परम धर्म बताया है उसका विवेचन भगवत् प्राप्ति कैसे हो, इसका मैंने उत्तर दिया है कि वह नित्य भागवत की सेवा करने से ही हो सकती है। तदनन्तर भागवती प्रक्रिया बतायी है, कि श्रवण से क्या होता है, कैसे अन्तःकरण की शुद्धि होती है। तदनन्तर यह ग्रन्थ सर्व प्रथम किसने सुना उन्होंने किनको सुनाया और उनसे किसने सुना इस प्रकार आदि से ही इसकी परम्परा बतायी है।

भक्ति मार्ग में अवतार तत्व ही प्रधान है, अतः सर्व प्रथम जो विराट पुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है। फिर प्रथम अवतार पुरुष कैसे प्रकट हुआ इस को बता कर अन्य अवतारों की साधारण रूप से चर्चा है। फिर आपने जो भागवत धर्म के सम्बन्ध में पावन प्रश्न किये हैं, उनका उल्लेख है, फिर जिनसे इस भागवत धर्म का प्रचार प्रसार हुआ उन भगवान् व्यास की उत्पत्ति की

पावन कथा है। व्यास जी ने बदरिकाश्रम में जाकर कैसे तप किया कलियुगी जीवों को पाप कर्म में निरत समझ कर उनके करुणा पूर्ण अन्तः करण में कैसे करुणा उत्पन्न हुई कैसे उन्हें लोक कल्याण की चिन्ता व्यथित करने लगी इसका विस्तारसे वर्णन है।

उनको चिन्तित समझ कर परानुग्रहकांक्षी भगवान् नारद मुनि वहाँ कैसे आ गये और कैसे उन्होंने उनकी व्याकुलता का कारण जानना चाहा इसका इतिहास है। व्यास जी को चिन्तित समझ कर नारद जी ने कैसे अपने तीन जन्मों का वृत्तान्त बताया। कैसे वे मुनियों के शाप से गन्धर्व हो गये और फिर कैसे शूद्रा के उदर से उत्पन्न हुए। वहाँ उन्हें किस प्रकार साधुओं का सत्संग प्राप्त हो गया। इसका कारुणिक वर्णन है। चार महीने चतुर्मास बिता कर संतगण कैसे चले गये और फिर सन्तों के वियोग में शूद्र बने बालक नारद कैसे विकल हुए इस प्रसंग को पढ़कर किस का हृदय नहीं भर आवेगा। कवि ने अपनी मानसिक व्यथा इन शब्दों में व्यक्त की है।

निरमोही ये संत प्यार करिकें अपनावें।
किन्तु अन्त में बधिक सरिस हिय छुरी चलावें॥
गहकि मिलें अब तलक रहें रसनित बरसावें।
कसक हिये में छोड़ि निठुर बनि कें भगि जावें॥
साधुनि सँग अति प्रेम करि, जग सुख काहू नहिँ लह्यो।
बिलपत ई जीवन गयो, रुदन शेष ई रहि गयो॥

होनी होकर ही रही साधु चले गये। नारदजी की शूद्रा माता मर गयी। नारद जी को भजन के प्रभाव से पुनः ब्रह्मपुत्र नारद शरीर प्राप्त हो गया यहाँ तक नारद जी का ही चरित्र है। जब नारद जी अपना चरित्र सुना चुके तब व्यास जी ने उनसे शान्ति का सरल मार्ग पूछा। तब नारद जी ने उन्हें भागवत लिखने को

कहा। नारद जी की आज्ञा मान कर भगवान् व्यास ने श्रीमद् भागवत महा पुराण की रचना की। उसे अपने परमविरक्त योग्य पुत्र को किस प्रकार पढ़ाया कैसे उन आत्माराम पूर्ण काम महामुनि की भागवत पढ़ने की इच्छा हुई इसका कारण बताया गया है।

श्रीमद् भागवत के प्रधान श्रोता हैं राजर्षि महाराज परीक्षित् अतः उनका परिचय कराने के लिये संक्षेप में उनके पूर्वजों का वर्णन है, महाभारत की संक्षिप्त कथा बता कर अन्त में उस प्रसंग को बताया गया है, जिसमें अश्वत्थामा ने पांडवों के पाँचों पुत्रों को सुप्तावस्था में मार डाला था। द्रौपदी के कुपित होने पर अर्जुन अश्वत्थामा को पकड़ लाये थे और फिर द्रौपदी के ही कहने पर उसके सिर की मणि छीन कर उसे प्राणदान दे दिया। इन सब का वर्णन राजर्षि परीक्षित् के चरित्र की भूमिका के ही निमित्त किया गया है। गर्भस्थ महाराज परीक्षित् की भगवान् ने चक्र सुदर्शन से माता के पेट में कैसे रक्षा की इसका वर्णन करके इस प्रसंग को यहीं छोड़ दिया है।

महाभारत समाप्त होने पर श्याम सुन्दर जिस प्रकार द्वारका चलने को उद्यत हुए हैं, जिस प्रकार महारानी कुन्ती ने करुण स्वर से उनकी स्तुति की है, जिस प्रकार भगवान् रुक गये हैं फिर धर्मराज ने अपने मृतक बन्धु बान्धवों के लिये जिस प्रकार घोर पश्चात्ताप किया है, इन सब बातों का हृदयद्रावक भाषा में वर्णन किया गया है।

भगवान् श्रीकृष्ण चन्द्र जी धर्मराज तथा अन्य सभी पांडवों को शर शैया पर पड़े पितामह भीष्म के पास ले गये हैं। पितामह ने जिस प्रकार पांडवों के सम्मुख भगवान् वासुदेव की महिमा का वर्णन किया है, फिर पितामह परलोक को प्रयाण कर गये हैं, फिर भगवान् ने जिस प्रकार द्वारका जाने का विचार व्यक्त किया

हैं और सभी को शोकाकुल छोड़कर वे द्वारका पुरी को चले गये हैं और द्वारावती में पुरवासियों ने तथा अन्तःपुर की महिषियों ने उनका स्वागत सत्कार किया है, इन सब बातों का बड़ी सरसता से वर्णन है। अन्तःपुर में जब भगवान ने प्रवेश किया है, इन सब बातों का बड़ी सरसता से वर्णन है। अन्तःपुर में जब भगवान् ने प्रवेश किया है, उस वर्णन में बड़ी सरसता आ गयी है। भगवान प्रथम माताओं के ही महलों में गये। वहाँ जाकर बैठ गये। रानियों को बड़ी उत्सुकता थी, कैसे प्राणनाथ के दर्शन हों, किन्तु ये उठने का नाम नहीं लेते। बहुएँ सासों के सम्मुख पति के आगे जा नहीं सकती हैं। ऐसा प्राचीन सदाचार है। अतः वे खिड़कियों में से छिप छिप कर देख रही हैं। इससे उनके आभूषण, तथा चूड़ियों की झंकार हो उठती हैं। मातायें समझ गयीं और श्याम सुन्दर से जाने को कहा। अब कवि के ही शब्दों में इसे सुनिये।

सुनि नूपुर की झनक चुरिनि की खनक मनोहर।
माँ बोली—"अब जाउ, वस्त्र बदलो भीतर घर॥
मद मंद मुसकात महल में मोहन आये।
नारि निरखि नँदनन्द नयन तें नीर बहाये॥
मन तें मोहन तें मिली, नयन ओट तें चोट करि।
शिशु सौंप्यो पुनि लाइ उर, आलिङ्गन यों किये हरि॥

इधर श्याम सुन्दर द्वारकावासियों को सुख दे रहे थे उधर हस्तिनापुर में महाराज परीक्षित् का जन्म हुआ। धर्मराज ने पंडितों को बुला कर उनके जन्म ग्रहों का फल पूछा। तदनन्तर धर्मराज का अश्वमेधयज्ञ करने का विचार उठा भगवान् की आज्ञा से पांडव हिमालय पर जाकर महाराज मरुत्त की यज्ञ से बचे धन को उठा लाये। धर्मराज ने उसी से तीन अश्वमेध यज्ञ किये यह प्रकरण यहीं समाप्त कर दिया गया है; फिर विदुर जी का

पुण्य परिचय कराया गया है तीर्थयात्रा से लौट कर जैसे वे हस्तिनापुर में आये हैं आकर जिस प्रकार उन्होंने अपने बड़े भाई प्रज्ञाचक्षु धृतराष्ट्र को वैराग्य का उपदेश दिया है और उन्हें तथा गान्धारी को साथ लेकर जैसे वे छिप कर वन को चले गये हैं उस का वर्णन है।

विपरीत धर्मों को देख कर धर्मराज को चिन्ता हुई कि अर्जुन द्वारका से लौट कर क्यों नहीं आया। उसी समय द्वारका से लौट अर्जुन आ जाते हैं। आकर वे रोते रोते भगवत् निर्याण की बात सुनाते हैं। भगवान् ने कब कब हम पर विशेष कृपा की, इसका विस्तार पूर्वक अर्जुन ने वर्णन किया है। उसमें खांडव दाह के समय की कृपा का, जरासन्ध वध के समय की कृपा का, द्रौपदी चीरहरण के समय की कृपा का, दुर्वासा के शाप से बचाने वाली कृपा का, शिव के साथ हुए युद्ध में की हुई कृपा का, निवात कवच वध के समय की कृपा का, गोधन हरण के समय हुए युद्ध की कृपा का, महाभारत युद्ध में हुई कृपा का तथा रथ हाँकते समय की हुई कृपा का विशेष रूप से उल्लेख किया गया है। अर्जुन को किस प्रकार जंगली गोपों द्वारा पराजित होने का शाप मिला कैसे वे जङ्गली गोपों द्वारा पराजित हुए, किस प्रकार यदुवंश का विनाश हुआ। ये सब बातें धर्म राज से अर्जुन ने आकर जैसे कहीं थीं, उनका विस्तार के साथ वर्णन हुआ है।

भगवत् निर्याण की बात सुन कर उनके वियोग में महारानी कुन्ती ने जिस प्रकार देह त्याग किया। वीर सन्यास का निश्चय करके तथा महाराज परीक्षित् को राज्य देकर पाँचों पांडवों ने जैसे परलोक प्रयाण किया यहाँ तक महाराज परीक्षित् के पूर्वजों की कथा है। अब महाराज परीक्षित् की कथा आरम्भ होती है।

महाराज परीक्षित् ने किस प्रकार दिग्विजय की, वहाँ याचकों के मुख से 'भगवान् ने पांडवों की कैसे रक्षा

प्रसंग को सुन कर परीक्षित् का प्रसन्न होना। दिग्विजय के ही प्रसंग में पृथिवी तथा धर्म का सम्वाद कैसे हुआ, पृथिवी ने निज दुख का कारण कैसे बताया, कैसे महाराज परीक्षित् की कलियुग से भेंट हुई, धर्म और परीक्षित् में कैसे सम्वाद हुआ, महाराज परीक्षित् ने अधर्मबन्धु कलियुग को भी कैसे अभय दान दिया, कलियुग के रहने को उन्होंने कौन कौन से स्थान दिये, इस सब को बता कर अन्त में उन राजर्षि परीक्षित् के उत्तर चरित के सम्बन्ध में शौनक जी का प्रश्न हुआ है। इस पर सूत जी ने महाराज परीक्षित् के उत्तर चरित्र का वर्णन किया है। जिसमें महाराज का शमीक मुनि के आश्रम में जाना, समाधि में बैठे मुनि से सत्कार न पाने पर उनके गले में मृतक सर्प को डाल कर लौट आना. इस पर मुनि पुत्र शृंगी का महाराज को शाप देना. मुनि शिष्य से सब कुछ सुनकर महाराज का पश्चात्ताप, गंगा तट पर आकर महाराज का बैठ जाना, महाराज का समाचार सुन कर ऋषि मुनियों का आना, तथा महाराज द्वारा ऋषियों से पारमार्थिक प्रश्न पूछना, उसी समय मुनि मंडली में श्री शुक का शुभागमन होना और उनसे राजा द्वारा वही पारमार्थिक प्रश्न का पूछा जाना, फिर श्री शुक द्वारा राजा के प्रश्न का उत्तर देना, समय की न्यूनता पर राजर्षि खट्वाङ्ग का दृष्टान्त देना, तथा फिर राजा द्वारा पुनः बहुत से प्रश्नों का पूछा जाना इन सब विषयों का वर्णन है। अब तक तो यह भागवती कथा की भूमिका हुई। इसके आगे भागवती कथा आरम्भ होती है।

उसमें सर्व प्रथम सूकरावतार की कथा, अन्य अवतारों की कथा तथा श्री रामकृष्णावतारों की कथा आदि संक्षेप में कही गयी हैं। प्रायोपवेशन करने वाले महाराज परीक्षित् ने जिस प्रकार दृढ़ता दिखायी है और सृष्टि सम्बन्धी प्रश्न किये हैं, इस पर प्रकाश डाला गया है। फिर ब्रह्मा जी को तपस्या द्वारा अपने

अन्तः करण में ही किम प्रकार वैकुन्ठ के दर्शन हुए, किस प्रकार उन्हें पञ्चश्लोकी भागवत की स्फुरणा हुई इसका वर्णन है, फिर दश लक्षण वाली भागवत का, विराट ब्रह्माण्ड का विराट पुरुष की कर्मेन्द्रियों की उत्पत्ति का तथा श्रीमद्‌भागवत की दूसरी परम्परा के वर्णन का उपक्रम है।

प्रथम विदुर मैत्रेय सम्वाद का उपोद्‌घात है, विदुर जी ने धृतराष्ट्र को कैसे सम्मति दी, उनकी सम्मति का आदर न करके दुर्योधन ने कैसे उनका तिरस्कार किया, तिरस्कृत हुए विदुर जी किस प्रकार हस्तिनापुर को त्याग कर किस प्रकार तीर्थों में भ्रमण करते रहे, वृन्दावन में उनकी उद्धव जी से कैसे भेंट हुई, विदुर जी ने उन से किस प्रकार भगवान् के परिवार सम्बन्धी कुशल प्रश्न पूछे। विदुर जी के प्रश्नों से उद्धव जी को कैसे भाव समाधि हो गयी। फिर किस प्रकार शनैः शनैः प्रकृतिस्थ हो कृष्ण कथा वर्णन का उपक्रम करने लगे इन विषयों की सुखद कहानियाँ हैं। अब उद्धव जी विदुर जी को कृष्ण कथा सुना रहे हैं। भगवान् का कैसा लोकोत्तर सौन्दर्य था उनका कैसा लोकोत्तर माधुर्य था, अजन्मा का जन्म कैसे हुआ, दीन तथा दुष्टों पर दया मय ने कैसे अपार कृपा की, कैसे आत्माराम होकर राधारमण ने रमणियों के साथ क्रीड़ायें कीं, मथुरा में उन्होंने कौन कौन-सी लीलायें की, द्वारावती में कौन कौन सी क्रीड़ायें कीं, यदुवंश का विनाश कैसे हुआ, कैसे भगवान ने उद्धव जी को उपदेश दिया, इन सब विषयों को अत्यन्त संक्षेप में उद्धव जी ने विदुर जी से कहा है। विदुर जी के भागवत धर्म सम्बन्धी ज्ञान माँगने पर उद्धव जी ने उन्हें भगवान् की आज्ञा सुना दी, कि तुम हरिद्वार में जाकर मैत्रेय मुनि से ज्ञान लाभ करो। ऐसा कह कर विदुर जी से विदा होकर उद्धव जी बदरी वन को चले गये, इधर विदुर जी ने हरिद्वार की राह पकड़ी, चलते चलते वे हरिद्वार में मैत्रेय मुनि

के समीप पहुँच गये और वहाँ आकर उन्होंने मैत्रेय जी से कैसे पारमार्थिक प्रश्न किये उन सब का वर्णन है।

अब विदुर मैत्रेय सम्वाद आरम्भ होता है। यह श्रीमद्

भागवत की दूसरी परम्परा है। विदुर जी के पूछने पर मैत्रेय मुनि ने प्रथम ब्रह्मा जी की उत्पत्ति बतायी, फिर सृष्टि रचना के

निमित्त परममोहक सामग्रीको उत्पत्ति, पृथिवी उद्धार के लिये मनु की प्रार्थना वाराह भगवान् की संक्षिप्त कथा, विदुर जी का वाराह चरित्र विस्तार पूर्वक श्रवण करने का आग्रह, इस प्रश्न के उत्तर में मैत्रेय जी द्वारा दिति का कश्यप जी से प्रदोष के समय अनुचित प्रस्ताव, मन्मथ के प्राबल्य की कथा, गर्भाधान के अनन्तर दिति का पश्चात्ताप, दिति के गर्भ से देवताओं को भय, देवताओं का मिल कर ब्रह्मा जी के पास जाना ब्रह्मा जी द्वारा देवताओं को सनकादि की कथा सुनाना, वैकुन्ठ का वर्णन, सनकादि द्वारा जय विजय को शाप, सनकादिकों को कुपित सुन कर भगवान् का नंगे पैरों आना, भक्त वत्सलता वश उन्हें मनाना, कुमारों की भगवान् से विनती करना, उनसे आज्ञा लेकर जाना, जय विजय का दिति के गर्भ में प्रवेश हुआ है यह कह कर ब्रह्मा जी का देवताओं को सान्त्वना देना। इसके अनन्तर हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष का जन्म, हिरण्याक्ष का दिग्विजय के लिये वरुण के लोक में गमन, हिरण्याक्ष की वरुण से बातचीत, हिरण्याक्ष को सूकर रूप से भगवान् के दर्शन, हिरण्याक्ष और वाराह भगवान् का युद्ध तदनन्तर हिरण्याक्ष के युद्ध की कथा है। ये सब विषय प्रथमाह में हैं। हिरण्याक्ष उद्धार तक प्रथमाह की कथा है। श्री मद् भागवत में यह कथा तृतीय स्कन्ध के अध्याय तक है। "भागवती कथा" के सात खंडों में यह प्रथमाह की कथा कही गयी है, इसमें सब १४८ अध्याय हैं। जो प्रथमाह की कथा को पढ़ते सुनते हैं। उनकी सभी इच्छायें पूर्ण होती हैं, देवता उन पर प्रसन्न होते हैं। श्रद्धा पूर्वक सुनने और पढ़ने वाले को शोक नहीं होता।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में

प्रथमाह की विषय सूची बतायी, अब आप द्वितीयाह की विषय सूची श्रवण करें।"

छप्पय

कश्यप दिति सम्बाद गर्भ ज्यों दिति ने धारयो।
भये असुर जय विजय कुमारनि कूँ ज्यों ताड़यो॥
हिरनकशिपु हिरनाक्ष जन्म तिनि विजय करी ज्यों।
धरि कें शूकर रूप सुरनि-हरि विपति हरी ज्यों॥
हिरन्याक्ष कूँ मारि कें, अभय करे सुरमुनि यथा।
यहाँ तलक पूरन भई, प्रथम आह की शुभ कथा॥

—::o::—

द्वितीयाह की विषय सूची

(१३७०)

अवतारो भगवतः कपिलस्य महात्मनः ।
देवहूत्याश्च संवादः कपिलेन च धीमता ॥*

(श्री भा० १२ स्कं० १२ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

द्वितीय आह में देवहूति करदम सँग ब्याही ।
प्रकटे हरि बनि कपिल मातुकूँ सीख सिखाई ॥
मनु पुत्रिनि को वंश दक्ष शिव शापा शापी ।
सती देह को त्याग दक्ष मारयो संतापी ॥
भई पूर्ति ज्यों यज्ञ की, वंश अधर्म बताइकें ।
कह्यो चरित ध्रुव विष्णु ज्यों, दरशन दीये आइकें ॥

सब शास्त्रों में एक ही बात है, ईश्वर और जगत् का सम्बन्ध समस्त शास्त्रों में इसी का विवेचन है। कोई कहता है ईश्वर और जगत् का कोई सम्बन्ध नहीं। कोई कहता है ईश्वर है ही नहीं।

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! तदनन्तर महात्मा भगवान् कपिल का अवतार है, फिर परम बुद्धिमान् भगवान् कपिलजी के साथ उनकी माता देवहूति का सम्वाद है।"

कोई कहता है ईश्वर हो भी तो उसका जगत् के रचने में कोई हाथ नहीं। कोई कहता है जगत् ही नहीं है यह जो हमें प्रतीति हो रही है, मिथ्या है भ्रम है। सीप में रजत भ्रम जैसे मिथ्या है वैसे ही यह जगत् मिथ्या है। कोई कहता है संसार वृक्ष के ईश्वर बीज हैं, उनके बिना कुछ नहीं हो सकता। इस प्रकार समस्त आस्तिक नास्तिक शास्त्र ईश्वर है ईश्वर नहीं है, इसी का विचार करते हैं, उनके वर्णन का मुख्य विषय ईश्वर ही है।

कोई शास्त्रकार बात का सूत्र रूप में कहते हैं कोई वार्तिक रूप से, कोई संक्षेप में कहते हैं कोई विस्तार के साथ। जो शास्त्र का विस्तार करते हैं, वे यह भी जानते हैं, कि बहुत से लोगों पर हमारे इतने विस्तृत ग्रन्थ के पढ़ने का समय न होगा। अतः वे ग्रन्थ को विस्तार के साथ लिखकर उसकी सूची बना देते हैं, जिससे जिनपर समय न्यून है, वे उस विषय सूची को ही पढ़कर ग्रन्थ के समस्त विषय को समझ जायँ। अतः भागवती कथा जो इतनी विस्तार से लिखी गयी है अब संक्षेप में उसके द्वितीय दिवस की सूची सुनिये, जिससे सभी विषयों का आभास मिल जायगा।

सूतजी कहते हैं—"हाँ, तो मुनियो! हिरण्याक्ष वध तक तो प्रथमाह की कथा विषय सूची हो गयी अब आगे द्वितीयाह की सूची मैं आप को सुनाता हूँ। हिरण्याक्ष वध तक की कथा "भागवती कथा" के सात खंडों तक में वर्णित है। अष्टम खंड से द्वितीयाह की कथा आरम्भ होती है।

द्वितीयाह में सर्व प्रथम श्री ब्रह्माजी द्वारा रचित विविध प्रकार की सृष्टि का वर्णन है। सृष्टि का वर्णन करते करते मनु-शतरूपा की उत्पत्ति बतायी है। महाराज स्वायम्भुव के प्रियव्रत और उत्तानपाद दो पुत्र तथा आकूति प्रसूति और देवहूति के चरित्र का वर्णन है। भगवती देवहूति का विवाह ब्रह्मपुत्र कर्दम मुनि से

हुआ। कर्दममुनि ने ब्रह्माजी की आज्ञा से सृष्टि वृद्धि के निमित्त कैसे तप किया, किस प्रकार भगवान् ने कर्दममुनि को दर्शन दिये। कर्दममुनि ने जब बहू का वरदान माँगा तब हँसकर भगवान् ने किस प्रकार परसों ही विवाह होने का तुरन्त वरदान दिया।

इधर नारदजी के कहने से महाराज मनु अपनी महारानी शतरूपा और विवाह योग्य हुई सयानी पुत्री देवहूति को लेकर कर्दम मुनि के आश्रम पर आते हैं। मुनि से विवाह का प्रस्ताव करते हैं, कुछ आनाकानी के पश्चात् दोनों का विवाह हो जाता है। दूल्हा दुलहिनि मिल जाते हैं, जङ्गल में मङ्गल हो जाता है। कवि कहता है—

दुलहा दुलहिनि मिलि गये, जंगल महँ मङ्गल भयो।
कनक अगूठी जस सुघर, तस सुन्दर नग जड़ि गयो॥

विवाह के पश्चात् मुनि पुनः तपस्या में लग गये। राजपुत्री मुनि की सेवा करती रही। सेवा से सन्तुष्ट हुए मुनि ने भगवती देवहूति को सन्ततिवती होने का वर दिया। सुन्दर रमणीक विमान बना योग बल से उस विमान के सहित ही उड़कर सपत्नीक मुनि लोकपालों की पुण्य पुरियों में सैर सपाटा करते रहे। पुनः आश्रम में आकर नौ कन्यायें हुईं। मुनि की वैराग्य की दबी अग्नि पुनः चमक उठी। दंड कमंडलु सम्हाल कर पुनः तप को चलने लगे। देवहूति ने विनयपूर्वक समझाया, मुनि रुक गये। तभी देवहूति के गर्भ से भगवान् कपिल का अवतार हुआ। नौ कन्याओं को नौ मुनियों को देकर कर्दमजी पुनः तप करने चले गये।

इधर माता देवहूति जी ने अपने परमात्मा पुत्र कपिल से तत्वज्ञानकी जिज्ञासा की। भगवान् कपिलने माता को भक्तियोग ज्ञानयोग तथा अष्टांगयोग आदि की बड़ी ही मार्मिक शिक्षा दी, जिससे माता ने जीवन्मुक्ति की स्थिति प्राप्त कर ली। माता को सत् शिक्षा देकर कपिल भगवान् बन को चले गये। माता ने

निर्वाण पद प्राप्त किया। वे ब्रह्मलीन हो गयीं। इस प्रकार संक्षेप में कपिल चरित कहा गया। पुनः दत्तात्रेय भगवान् के अवतार की कथा है। किस प्रकार तीनों देव कर्दम पुत्री अनसूया के यहाँ पुत्र बने। पातिव्रत के प्रभाव से तीनों देव कैसे मुग्ध हुए। पुत्र प्राप्ति के लिये कर्दममुनि ने कैसे तपस्या की कैसे तीनों देव प्रकट होकर साथ ही मुनि को वर देने आये, किस प्रकार दत्तात्रेय भगवान् का अवतार हुआ। इसी कथा प्रसङ्ग में भागवती कथा का अष्टम खंड समाप्त होता है।

नवम खंड में उसी दत्त भगवान् की कृपा को चालू रखते हुए उन्होंने जिस प्रकार सहस्रार्जुन यदु आदि राजाओं पर कैसे कृपा की इसका वर्णन है। दत्त भगवान् के चरित्र को समाप्त करने के अनन्तर देवहूति की नौ कन्याओं के विशद वंश का वर्णन है इसी प्रसङ्ग में भृगुपुत्री श्री की भी कथा कही गयी है। अब फि मनुकी तृतीय पुत्री प्रसूति के वंश का वर्णन है। फिर भगवत मूर्ति के गर्भ से भगवान् नर-नारायण का अवतार कैसे हुआ उन्होंने कैसे तपस्या की इसका दो अध्यायों में प्रसङ्ग है। फिर अग्नि और पितरों के वंश का वर्णन है। अब फिर सती चरित्र आरम्भ होता है।

दक्ष प्रजापति की पुत्री सती का सदाशिव के साथ कैसे विवाह हुआ, प्रजापतियोंके यज्ञ में दक्ष शिवजी पर कैसे कुपित हुए आपस में कैसे शापा शापी हुई। इसकी कटु कथा है। इस कटुता को मेटने के लिये कुछ शिव महिमा गायी गयी है, प्रसंग वश उपमन्यु महर्षि के चरित्र का गान किया गया है।

प्रजापतियों के यज्ञ में क्रुद्ध हुए दक्ष ने शिवजी से बदला लेने को बृहस्पति सव नामक बड़ा भारी यज्ञ किया। उसमें शिव जी को निमंत्रित नहीं किया गया। बस यज्ञ में जाती हुई विमा-

नस्थ देवाङ्गनाओं को देखकर सती जी की उत्सुकता बढ़ी। उन्होंने शिवजी से दक्ष यज्ञ में चलने का आग्रह किया, शिवजी ने सती जी को विविध भाँति से समझाया, किन्तु देवी नहीं मानीं नहीं मानीं, वे शिवजी की आज्ञा की अवहेलना करके पिता के यज्ञ में चली ही तो गयीं। यज्ञ में प्रवेश करने पर न पिता ने उनका आदर किया न अन्य किसी सभासद ने ही। इसपर देवी को क्रोध आया, उन्होंने शिवगुण गान किया। यहाँ तक भागवती कथा के नवम खण्ड तक की कथा हुई।

अब दशम खण्ड की कथा आरम्भ होती है। उसी दक्ष यज्ञ की कथा को चालू रखते हुए जिस प्रकार सती वहीं यज्ञ में भस्म हो गयीं हैं। उसका वर्णन है, फिर जिस प्रकार लोग दक्ष को धिक्कारने लगे, देवगण कुपित हुए नारदजी ने शिवजी को यह समाचार सुनाया, सुनकर जिस प्रकार शिवजी ने वीरभद्र को उत्पन्न किया, वीरभद्र ने दक्ष यज्ञ का विध्वंस किया, रुद्र पार्षदों ने किस वीभत्सता से यज्ञ का विनाश किया और दक्ष का सिर काट कर हवन कर दिया ये सभी विषय वर्णित हैं।

पुनः दक्ष यज्ञ को कथा को ही चालू रखते हुए देवादिकों का ब्रह्माजी के समीप जाना, कैलाश की शोभा देखते हुए शिवजी के समीप पहुँचना, उनकी स्तुति करना, शिवजी द्वारा दक्षयज्ञ पूर्ति का वरदान पाना, दक्षयज्ञ का पुनरुद्धार होना, यज्ञ में श्री विष्णु भगवान् का प्रकट होना सबके द्वारा भगवान् की भाँति भाँति से स्तुति प्रार्थना करना आदि विषयों को कहकर अन्त में दक्षयज्ञ की समाप्ति का वर्णन किया गया है।

फिर दक्षयज्ञ में भस्म हुई सती जी ने किस प्रकार हिमांचल की पत्नी मैना के गर्भ से पार्वती रूप में जन्म धारण करके शिव जी की प्राप्ति के लिये तप किया और कैसे उनका शिवजी के साथ पुनः विवाह हुआ इन विषयों का वर्णन करके भगवान् शिव के

चरित्र को समाप्ति की गयी है। अन्त में अधर्म का वंश कहकर भागवती कथा के दशम खण्ड की समाप्ति की गयी है।

अब ग्यारहवें सम्पूर्ण खण्ड में परम भागवत श्री ध्रुवजी का ही चरित्र है। महाराज उत्तानपाद की सुनीति और सुरुचि दो रानियों में से सुनीति के गर्भ से ध्रुवजी का जन्म हुआ। सुरुचि के संकेत से पिता ने गोद में चढ़ते हुए ध्रुव को रोक दिया, इस तिरस्कार से दुखी हुए ध्रुवजी रुदन करते हुए माता के समीप गये। माता ने धैर्य बँधाकर भगवान् की शरण में जाने का उपदेश दिया। माँका उपदेश पाकर ध्रुवजी वनको चल दिये। मार्गमें वीणा बजाते हरिगुण गाते नारदजी मिल गये। नारदजी ने परीक्षा लेकर उपदेश दिया, उपदेश देकर नारदजी राजा उत्तानपाद को भी समझा आये कि तू सोच मत कर। इधर ध्रुवजी नारदजी से उपदेश पाकर मधुवन में आकर घोर तप करने लगे। उनके घोर तप से चराचर की स्वाँस रुकने लगी। देवता दौरे दौरे दयानिधि के द्वार पर गये। देवताओं को समझा बुझाकर भगवान् ध्रुवजी को दर्शन देने चलने लगे। उसका वर्णन कवि ने इस प्रकार किया है—

देव गये निज धाम सजे घनश्याम हमारे।
शङ्ख चक्र अरु गदा पद्म कर कमलनि धारे॥
पीताम्बर फहरात जात विद्युत सम चमकै।
मणिमय मनहर मुकुट अलक सँग दमदम दमकै॥
भक्त दरस कूँ व्यग्र अति, उपमा किहि सम देहिँ कवि।
गरुड़ पीठि चढ़ि जाहिँ ज्यों, अस्ताचल कूँ सहस रवि॥

ध्रुवजी हरि दर्शन पाकर कृतार्थ हो गये, उन्होंने स्तुति करनी चाही किन्तु कुछ भी पढ़े न होने से कर न सके। भगवान् ने प्रेम से शङ्ख द्वारा उनके कपोल का स्पर्श किया। शङ्ख स्पर्श पाते ही उन्होंने दिव्य स्तुति की। भगवान् ने ध्रुवपद का वर दिया, वर

पाकर वे खिन्न मन होकर लौटे। मोक्षदाता भगवान् से राज्य ही क्यों माँगा इसपर ध्रुवजी के पूर्व जन्म का वृत्तान्त बताकर जन्मान्तरीय संस्कारों के दृष्टान्त दिये गये हैं।

ध्रुवजी नगरके निकट आ गये। समाचार सुनकर सैन्य सजाकर पुरवासियों के सहित माता पिता उनको लेने आये। ध्रुवजी घर में आये, राज्य मिला। माता की प्रसन्नता का ठिकाना नहीं। अवसर पाकर एक दिन एकान्त में माता जी ने अपने पुत्र से कुछ कहा—

बोली इकदिन मातु—'बहू अब बेटा आवे।
मेरे पूजै पैर तोइ भोजन करवावे॥
रुनुझुनु रुनुझुनु करति फिरै मन मोद बढ़ावे।
बहू संग लखि तोहि सफल जीवन ह्वै जावे॥
हँसे जननि ममता लखी, मुदित मातु मन अति भयौ।
कन्या भ्रमि शिशुमारकी, संग ब्याह ध्रुव करि लयौ॥

हँसे जो फँसे, ध्रुवजी गृहस्थी बन गये। उनके भाई गौतम को यक्षों ने मार दिया। क्रोध करके ध्रुवजी ने यक्षों पर चढ़ाई की, घमासान युद्ध हुआ, स्वर्ग से स्वायंभुव मनु आये, ध्रुव को समझा बुझाकर युद्ध से निवृत्त कर दिया। इस पर प्रसन्न होकर कुवेरजी ने ध्रुवजी को भक्ति का वरदान दिया। इतनी कथा 'भागवती कथा, के ग्यारहवें खण्ड में वर्णित है।

बारहवें खण्ड में ध्रुव चरित्र को ही चालू रखते हुए बदरिकाश्रम में जाकर जिस प्रकार ध्रुवजी ने तपस्या की उसका वर्णन है, फिर ध्रुवजी जिस प्रकार ध्रुवलोक पधारे उसका संक्षिप्त वर्णन किया गया है। तदनन्तर ध्रुवजी का माहात्म्य कहकर उनके वंश को बताया। गया है इस प्रकार यहाँ तक ध्रुव चरित का प्रसंग है।

इसके अनंतर अंग पौत्र महाराज पृथु के अवतार का वर्णन है। किस प्रकार मृत्यु पुत्री सुनीथा के साथ महाराज अंग का

विवाह हुआ उसके गर्भ से क्रूरकर्मा वेन का जन्म कैसे हुआ, वेन की क्रूरता से महाराज अंग का राज्य छोड़कर चुपके से चले जाना, राजा बनने पर वेन की निरंकुशता, मुनियों का जाकर उसे समझाना, वेन के द्वारा मुनियों का अपमान, मुनियों के हुङ्कार द्वारा वेन की मृत्यु, यहाँ तक पृथु के जनक वेन का वर्णन है।

बिना राजा के देश में अराजकता हो जाना, उसे देखकर दयालु विप्रों का दुखित होना, सुनीथा के समीप जाकर वेन के शरीर को माँगना, उसके मंथन से महाराज पृथु का प्रादुर्भाव होना, सब ऋषि मुनियों द्वारा उनका राज्याभिषेक करना, सूत बन्दियों द्वारा उनकी स्तुति, प्रजाजनों का दुःख सुनकर पृथु का पृथिवी पर कोप, पृथिवी के साथ उनका सुन्दर सम्वाद, पृथिवी का दोहन तथा महाराज द्वारा पृथिवी का सत्कार कराना ये भी सभी विषय भागवती कथा के बारहवें खण्ड में वर्णित हैं। अब आता है तेरहवाँ खण्ड।

तेरहवें खंड में पृथु चरित्र को ही चालू रखते हुए सनकादि महर्षियों ने पधार कर उन्हें जो उपदेश दिया उसका वर्णन है। तदनंतर महाराज पृथु का वन गमन तथा उनके परलोक प्रयाण की कथा है। फिर प्रचेताओं का पुण्य परिचय उनके ऊपर शिव जी की कृपा, रुद्रगीत उन सबकी घोर तपस्या तथा नारदजी का उनको उपदेश का वर्णन है।

इधर नारदजी कर्म में आसक्त प्रचेताओं के पिता महाराज बर्हि को ज्ञान देने उनके निकट आये। पुरञ्जनो पाख्यान के व्याज से उन्हें अध्यात्म ज्ञान का उपदेश दिया। पुरंजन (जीव) अपने रहने के लिये स्थान खोजते खोजते एकपुरी (मानव शरीर) में पहुँचा। वहाँ एक स्त्री पुरंजनी (बुद्धि) मिली, उससे पुरंजन ने उसका परिचय पूछा। दोनों में सांठ गाँठ हुई। दोनों का विवाह हो

गया, दोनों बहू दुलहा बन गये। दोनों ही हिलकर आनंद विहार करने लगे। कवि ने कहा है—

फँस्यो प्रेम के फन्द अन्ध सम भयो पुरञ्जन।
निरखि नारि सब करै, भुलाये भवभय भञ्जन॥
पीवै वह तो पान करै खावै तो खावै॥
रोवै वह तो रुदन करै गावै तो गावै॥
नारी धनकी, धरमकी, बनी स्वामिनी गेहकी।
करै मूर्ख अनुकरन यों, जैसे छाया देहकी॥

पुरञ्जन एक दिन मृगया के लिये निकल जाता है। उस पर पुरंजनी मानकर बैठती है। कामी पुरंजन उसे मनाता है, पैरों पड़ता है, हाहा खाता है, इस पर मानिनी हँस जाती है, मान कपूर की भाँति उड़ जाता है दोनों फिर मिल जाते हैं। पुरंजन पत्नी, पुत्र पुत्रियों में आसक्त होकर समय को बिताता है। उसी समय (जरा, भय, मृत्यु, काल आदि) शत्रु उसकी पुरी पर चढ़ाई करते हैं। काल कन्या (जरा) का परिचय दिया गया है। सब मिलकर पुरञ्जन के पुर को विध्वंस कर देते हैं, पुरी नष्ट हो जाती है। पुरंजन पुरंजनी का ध्यान करते करते मरता है, अतः दूसरे जन्म में स्त्री योनि में प्रकट होता है। वहाँ भी उसके पुत्र पुत्री होते हैं, उसका पति उसे लेकर वन में तप करने जाता है, वहाँ उसकी मृत्यु होती है, उसी समय हंस आकर उपदेश देता है। पुरंजन को मुक्ति हो जाती है। फिर इस आख्यायिका का आध्यात्मिक अर्थ बताकर उससे होने वाली शिक्षा बतायी गयी है। इस कथा को सुनकर प्राचीन वर्हि को ज्ञान हो जाता है नारदजी चले जाते हैं। इस प्रकार नारदजी और प्राचीन वर्हि के सम्वाद की समाप्ति की गयी है।

इधर तप में निरत प्रचेताओं को भगवान् के दर्शन होते हैं। कृतार्थ होकर जब प्रचेता संसार में वृक्ष ही वृक्षों को देखते हैं तो

वे मुख से अग्नि निकाल कर उन्हें जलाने लगते हैं। ब्रह्माजी आकर उन सब को समझाते हैं और वृक्षों की कन्या वार्क्षी की कथा सुनाकर उसके साथ सब को विवाह करने की आज्ञा देते हैं। ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर दशों प्रचेता वार्क्षी के साथ विवाह करते हैं, गृहस्थ धर्म का पालन करते हैं।

दक्ष प्रजापति को जो ब्रह्मज्ञान न होने का शाप हुआ था और यज्ञ में जो उन्होंने शिवजी का अपमान किया था, इसी कारण उन्हें पुनर्जन्म लेना पड़ा। वे ही दक्ष आकर वार्क्षी के उदर से पैदा हुए। इस जन्ममें भी उनका नाम दक्ष ही पड़ा। जब पुत्र हो गया तब प्रचेता गृहस्थाश्रम को त्यागकर वन में चले गये। यहाँ तक की कथा "भागवती कथा के तेरहवें खंड में है। अब आया चौदहवाँ खंड।

चौदहवें खंड में नारदजी के द्वारा प्रचेताओं को जो सदुपदेश प्राप्त हुआ सर्व प्रथम उसकी कथा है। यहाँ प्रचेताओं का प्रकरण पूरा हुआ। साथ ही विदुर मैत्रेय सम्वाद की भी समाप्ति हुई। अब भगवान् ऋषभ देव का चरित्र आरम्भ होता है।

महाराज मनु के प्रथम पुत्र उत्तानपाद का चरित्र तो पहिले ही कह आये हैं अब उनके द्वितीय पुत्र प्रियव्रत का चरित्र कहते हैं, किस प्रकार महाराज प्रियव्रत गृह त्यागकर वन में नारदजी की शिक्षा सुन रहे थे, उसी समय ब्रह्माजी को लिये हुए उनके पिताजी पहुँच गये। ब्रह्माजी ने उन्हें गृहस्थाश्रम की उपयोगिता बतायी, ब्रह्माजी की आज्ञा मानकर प्रियव्रतजी ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया। गृहस्थाश्रम में रहकर भी वे विषयों से उदासीन रहते थे, जब उनके पुत्र हो गया, तो अपने को धिक्कारते हुए गृह छोड़कर चले गये। उनके पुत्र आग्नीध्र राजा हुए। ब्रह्माजी की भेजी हुई पूर्वचित्ति अप्सरा पर मोहित हो गये, उसके साथ विवाह किया और पुत्रों को उत्पन्न किया। उन सब पुत्रों में

बड़े नाभि थे। वे ही राजा हुए। इन्हीं महाराज नाभि को भगवान् ऋषभ के पिता श्री बनने का सुरदुर्लभ पद प्राप्त हुआ।

महाराज नाभि ने यज्ञ किया। यज्ञ में भगवान् प्रकट हुए। ब्राह्मणों ने भगवान् से कहा—"ये राजा आप जैसा पुत्र चाहते हैं।" भगवान ने कहा-मेरे समान तो मैं ही हूँ। मैं ही इनके घर पुत्र रूप में प्रकट होऊँगा। इसीलिये पारमहंस्य धर्म पृथिवी पर प्रकट करने के निमित्त भगवान् ऋषभ हुए। उनके सौ पुत्र हुए। जिनमें भरतजी सबसे श्रेष्ठ हुए। नौ पुत्र नौऊ खंड के राजा हुए। ऋषभदेव जी ने नौऊ पुत्रों को उपदेश दिया। फिर अवधूत वृत्ति को धारण किया, आजगरी वृत्ति का प्रदर्शन किया, स्वयं आयी हुई सिद्धियों को ठुकरा दिया, अन्त में दावाग्नि में शरीर को भस्म करके निर्वाण पद प्राप्तकिया। इसके अनन्तर श्री भरत-जी का चरित्र प्रारम्भ होता है। इस प्रकार ऋषभ चरित पर्यन्त द्वितीयाह्न की कथा है। यहाँ आकर द्वितीयाह्न समाप्त होता है किंतु "भागवती कथा का चौदहवाँ खंड समाप्त नहीं हुआ। तृतीयाह्न की कुछ कथा अभी इस खंडमें शेष है। भरत चरित तृतीयाह्न में है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में द्वितीयाह्न की विषय सूची कही। अब आप तृतीयाह्न की विषय सूची ध्यान पूर्वक श्रवण करें।"

छप्पय

ध्रुव चरित्र करि पूर्ण बेनको चरित बखान्यो।
पुनि पृथुराज चरित्र प्रचेतनि मुनि सम्मान्यो॥
कही पुरञ्जन कथा भूपकूँ शिक्षा दीन्ही।
पुनि प्रियव्रत को चरित ऋषभ ज्यों शिक्षा कीन्ही॥
ऋषभ चरित अति ही सुखद, मुनि समाप्त ही तें कह्यो।
यहाँ तलक सप्ताह में, द्वितिय आह्न पूरन भयो॥

—:०:—

तृतीयाह की विषय सूची

(१३७१)

दक्ष जन्म प्रचेतेभ्यस्तत्पुत्रीणां च सन्ततिः।
यतो देवासुरनरास्तिर्यङ्नगखगादयः॥
त्वाष्ट्रस्य जन्म निधनं पुत्रयोश्च दितेर्द्विजाः।
दैत्येश्वरस्य चरितं प्रह्लादस्य महात्मनः॥*

(श्री भा० १२स्क० १२ अ० १७, १८ श्लो०)

छप्पय

तृतिय आह में प्रथम भरत जड़ चरित बखान्यो।
कह्यो फेरि भूगोल ध्यान तें मुनिवर जान्यो॥
नरकनि को कछु वृत्त अजामिल चरित बतायो।
नाम महातम कह्यो विविध विधितें समुझायो।
नारदजी कूँ दक्ष ने, दयो शाप पुनि सो कथा॥
विश्व रूप सुर पुरोहित, सुरपति काट्यो सिर यथा॥

यह सम्पूर्ण संसार भेद से बना है, भिन्नता में ही सृष्टि है। समता में सृष्टि का अभाव है। सर्वज्ञ ऋषियों के मतों में कहीं

---

* श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो! तदनन्तर प्रचेताओं से जिस प्रकार प्रजापति दक्ष का जन्म हुआ उनकी पुत्रियों के जैसे सन्तानें बढ़ीं, उनसे जिस प्रकार सुर, असुर, नर, नग तथा खग आदि का जन्म हुआ वृत्रासुर का जैसे जन्म और निधन हुआ, दिति पुत्र हिरण्यकशिपु और हिरण्याक्ष तथा महात्मा प्रह्लाद जी का चरित्र (ये सब विषय तृतीयाह में वर्णित है)

कहीं भिन्नता-सी दृष्टि गोचर होती है। ग्रन्थ के पाठ में भिन्नता, सिद्धान्त में भिन्नता, विभाजन में भिन्नता यहाँ तक कि एक ही पद के अर्थ में विभिन्नता है। एक ही श्लोक के कई भाँति से अर्थ किये जा सकते हैं। इसी प्रकार सप्ताह पारायणों में भी स्थलों की भिन्नता है। कहीं तो द्वितीयाह की कथा ऋषभावधि बतायी है कहीं भरतावधि हमने ऋषभावधि मानी है। ऋषभ चरित की समाप्ति पर द्वितीयाह की कथा समाप्त हुई अब भरत चरित से तृतीयाह की कथा आरम्भ होती है। भागवती कथा के चौदहवें खण्ड में ऋषभदेव जी के चरित के अनन्तर राजर्षि भरत की तीन जन्मों की कथा है। महाराज भरत अपने पिता के अनन्तर किस प्रकार इस अजनाभ खण्ड के राजा हुए। ये ऐसे प्रतापी हुए कि उन्हीं के नाम से यह खंड भरत खंड के नाम से विख्यात हुआ। राजपाट त्याग कर ये पुलहाश्रम में जाकर तप करने लगे। वहाँ जिस प्रकार गंडकी तट पर सन्ध्या करते समय गर्भिणी हरिणी आई, सिंह का दहाड़से उछलते समय जैसे उसका बच्चा नदी में गिर पड़ा, भरतजी जैसे उसे आश्रम पर लाकर पुत्रवत पालने लगे, फिर उनका जिस प्रकार उसमें मोह हो गया, उस मोह के कारण वियोग होने पर जैसे उन्हें अपार दुःख हुआ, उसी दुःख में मृत्यु होने पर फिर जैसे उन्हें मृगयोनि की प्राप्ति हुई यह भरत जी के प्रथम जन्म का चरित्र है। द्वितीय जन्म में वे हरिणी के गर्भ से हरिणी होकर जनमे। जाति स्मरण होने के कारण वे अपने जन्म स्थान कालिंजर पर्वत को त्याग कर पुनः गंडकी तट पुलहाश्रम में चले आये और शुष्क पत्ते खाकर गंडकी के जल में जैसे उन्होंने भगवन्नामों का उच्चारण करते हुए मृग शरीर को त्याग दिया यह भरतजी के दूसरे जन्म का चरित्र है।

तीसरे जन्म में भरतजी आंगिरस गोत्री ब्राह्मण के रूप में उत्पन्न हुए। जाति स्मर होने से वे किसी से किसी प्रकार का

सम्बन्ध नहीं रखते थे, जड़वत् व्यवहार करते थे अतः वे भरत से जड़ भरत हो गये। सब लोग उनसे मनमाने कार्य कराते थे, भाइयों ने भी उन्हें खेतों का रखवार बना दिया। वहाँ से जैसे उन्हें वृषल राजा के भृत्य पकड़कर बलि देने ले गय, वहाँ जिस प्रकार वे देवी के कारण बचकर जंगल में चले गये। वहाँ पालकी में बैठकर राजा रहू गण आ गया। नौकरों ने जैसे जड़ भरतजी को कहार के स्थान में पालकी में लगा दिया, इस सम्बन्ध से रहू गण से जैसे उनकी भेंट भयी यहाँ तक की कथा 'भागवती कथा' के चौदहवें खण्ड में वर्णित है।

पन्द्रहवें खंड में जड़ भरतजी के चरित्र को ही चालू रखते हुए जिस प्रकार राजा रहूगण ने भरतजी से व्यंग वचन बोले और उन्होंने उसके प्रश्नों का जैसे उत्तर दिया उसका युक्ति युक्त वर्णन है। भरतजी की विज्ञान भरी बातों को सुनकर राजा जैसे शरणापन्न हुआ, उनसे जो जो शंकायें की और भरतजी ने जैसे जैसे उनका उत्तर दिया जिस प्रकार व्यवहार और परमार्थ का विवेचन किया, मनको ही बन्धमोक्ष का कारण बताते हुए संगके प्रभाव को समझाया फिर आलंकारिक भाषा में जिस प्रकार भवाटवी में भटकते हुए बटोही का विषद वर्णन करके भाष्य रूप उसका भावार्थ बताया, इन सब बातोंको बताते हुए अन्तमें रहूगण और जड़ भरत के सम्वाद को समाप्त कर दिया है यहाँ तक जड़ भरत का चरित है। फिर राजर्षि गयके चरित्र को बताया है। अंत में प्रियव्रतवंश के शेषांशको कहकर नरकों का वर्णन है। महाराज परीक्षित् के प्रश्न करने पर शुकदेवजी ने यह बात बताई है, कि किन किन पापों के करने से कौन कौन नरक मिलते हैं नरकों में कौन कौन गति होती हैं। महा पाप कौन कौन से हैं, उन पापों को करने वालों को कौन कौन सी नारकीय यातनायें भोगनी पड़ती हैं इन सबका वर्णन है, जब राजा ने प्रश्न किया कि नरकों से

कैसे बचा जाय ? पापों का प्रायश्चित क्या है, तो इस पर कुछ प्रायश्चितों को गिनाकर अंत में प्रभु प्रेम की महिमा बताते हुए यह कहा गया कि एकमात्र भगवन्नाम संकीर्तन ही समस्त पापों को नाश करने के निमित्त पर्याप्त है। इसी प्रसंग में अजामिल का चरित्र कहा गया है।'

अजामिल प्रथम किस प्रकार सदाचारी कर्मकांडी ब्राह्मण था, कैसे समिधा लाते समय वन में वेश्या से समागम हो गया और वह कैसे उसके मोह में फँसकर धर्म भ्रष्ट हो गया, कैसे उसने कुलटा कामिनी को आत्म समर्पण कर दिया इन सबका वर्णन है। प्रसंग वश पूर्व जन्म के संस्कार ही सम्बन्ध में कारण हैं, इस प्रसंग को समझाने के लिये अजामिल के पूर्व जन्म का वृत्तांत बताया गया है।

महात्माओं के उपदेश से अजामिल ने अपने अन्तिम पुत्र का कैसे 'नारायण' नाम रखा और उस नारायण पुत्र में कैसे उसकी अत्यधिक आसक्ति हो गयी इस प्रसंग को बताते हुए कवि ने कहा है—

लै नारायण नाम प्रेम तें मुखकूँ चूमें।
गोदी में बैठाइ नरायन कहि कहि घूमें॥
अपने पीछे खाय नरायन प्रथम खवावै।
पीवै जो कछु पेय नरायन संग पिवावै॥
नारायन कूँ संग लै, यों खावत पीवत चलत।
नारायन भूलै नहीं, जागत हू सोवत उठत॥

इसी अभ्यास के कारण मृत्यु निकट आने पर यमदूतों को देखकर उसने उच्च स्वर से "नारायण" नाम को पुत्र के मिस से उच्चारण किया। यहाँ तक की कथा भागवती-कथा के पन्द्रहवें खण्ड तक वर्णित है।

सोलहवें खण्ड में अजामिल चरित को ही चालू रखते हुए

सर्व प्रथम वह प्रसंग है, जब नारायण नाम को सुनकर विष्णु पार्षद अजामिल के समीप आये, इधर यमदूत पहले से ही वहाँ आकर डटे थे, दोनों की भिड़न्त हुई, दोनों में शास्त्रार्थ फिर शास्त्रार्थ हुआ। विष्णु पार्षद कुछ तगड़े पड़ते थे, यमदूतोंकी भली भाँति कुटाई की। उनकी नस नस ढीली कर दी।

भगवन्नाम माहात्म्य के प्रसंग में बहुत सी आख्यायिकाएँ भी कही गयी हैं। उनमें हरिनाम से पापों की आत्यन्तिक निवृत्ति होती है, हँसी विनोद में भी भगवन्नाम श्रेयस्कर है, हरि उच्चारण मात्र से ही पापों को हरते हैं, नामोच्चारण का फल अमोघ है ये प्रसंग मुख्य हैं। विष्णु पार्षद और यमदूतों के सम्वाद को सुनकर अजामिल की भगवन्नाम में श्रद्धा हुई, उसे अपने पूर्व पापों पर पूर्ण पश्चात्ताप हुआ। घर छोड़कर वह हरिद्वार में चला गया और वहाँ उसे भगवत् पार्षदपद की प्राप्ति हो गयी।

इधर कुटपिट कर यमदूत यमराज के समीप रिक्त हस्त पहुँचे और उनसे सब वृत्तान्त कहा। सब सुनकर यमराज ने अपने दूतों के प्रश्नों का यथावत् उत्तर दिया और कह दिया—

कृष्ण कीरतन गुन गौरव जे गान करहिँ नर।
ते कबहूँ नहिँ भूलि निहारेँ नीरस मम घर॥
सब पापनि को एक प्राइचित मुनिनि बखानों।
होयँ नामके रसिक उनहिँ मेरो गुरु मानों।
यम आज्ञा दूतनि सुनी, शिरोधार्य सबने करी।
हरि कीर्तन करिकेँ चले, सब मिलि बोलें जयहरी॥

इस प्रकार भगवन्नाम माहात्म्य से पूर्ण यह अजामिल चरित समाप्त हुआ, अब फिर प्रचेताओं के पुत्र दक्ष की कथा आरम्भ हुई। प्रजावृद्धि के हेतु प्रजापति दक्ष ने कैसे तप किया, किस प्रकार उन्हें भगवान् के दर्शन हुए। भगवत् आज्ञा से दक्ष ने

किस प्रकार मैथुनी सृष्टि करके हर्यश्व नामक दश सहस्र पुत्र उत्पन्न किये। प्रजावृद्धि के हेतु वे सबके सब नारायण सरोवर पर तप करने चले गये वहाँ उन्हें वीणा बजाते हरिगुण गाते नारदजी मिल गये। नारदजी ने उन सबसे दश कूट प्रश्न किये। भोले बालकों ने बाबाजी के वचनों पर विमर्श किया, परिणाम यह हुआ कि वे सबके सब बाबाजी बन गये। पुत्र वियोग से दुखित दक्ष ने पुनः सहस्र शवलाश्वों को उत्पन्न किया। नारदजी की तो दाढ़ गदक गयी थी, लाभ से लोभ बढ़ता है, उन सबको भी वे ही कूट वचन सुनाकर चेला बना लिया। दक्ष का अत्यन्त क्रोध आया घूमते रहने का शाप नारदजी को दे ही तो डाला। ब्रह्माजी ने कहा—छोरा पैदा करना बन्द करो छोरियों को पैदा करो। नारद यदि छोटियों से ऐसे घुल घुलकर बातें करेगा, तो स्वयं ही चेला बन जायगा। बूढ़े बाबा ब्रह्मा की बात दक्ष की बुद्धि में बैठ गयी। साठ कन्याओं को उत्पन्न किया। नारदजी ने आँख उठाकर भी उन परम सुन्दरी सुकुमारियों को नहीं निहारा। उन्हीं साठों की सन्तानों से यह संपूर्ण संसार भर गया। दक्ष की कन्याओं के वंश वर्णन प्रसंग में गरुड़ और अरुण की उत्पत्ति कही है। चन्द्रमा को दक्ष ने शाप क्यों दिया यह कथा बतायी है, फिर कश्यप जी की पत्नियों से किस किसकी उत्पत्ति हुई उनका वर्णन है। इसी प्रसंग में इन्द्र ने जैसे अपने गुरु बृहस्पतिजी का अपमान किया उनके आने पर उन्हें अभ्युत्थान नहीं दिया। यहाँ तककी कथा "भागवती कथा" के सोलहवें खंडमें वर्णित है।

अब आया सत्रहवाँ खंड। इन्द्र ने अपने गुरु बृहस्पतिजी का जो अपमान किया उसका जो परिणाम उसकी कथा सत्रहवें खंड में आरम्भ होती है, अपमानित हुए देवगुरु ने देवताओं को त्याग दिया। गुरुत्यक्त सुरों पर असुरों ने चढ़ाई कर दी, जिससे

देवता पराजित हो गये और दुखित होकर ब्रह्माजी की शरण में गये ब्रह्माजी ने उपदेश दिया कि गुरु द्रोही का कल्याण गुरु कृपा के बिना नहीं हो सकता, तुम लोग एक काम करो विश्वरूप को अपना पुरोहित बनालो। पितामह की आज्ञा से देवगण विश्वरूप के निकट गये, सब सुनकर विश्वरूप ने पौरोहित्य कार्य में अपनी अनिच्छा प्रकट की। बहुत कहने सुनने पर वे देवताओं के पुरोहित बन गये। देवेन्द्र ने जब देखा कि मातृपक्ष के सम्बंध से विश्वरूप चुपके चुपके यज्ञ में असुरों को भी बलि देता है, तो देवेन्द्र ने उनकी हत्या कर दी। ब्रह्महत्या इन्द्र को लग गयी। स्त्री, जल, भूमि तथा वृक्षों ने देवेन्द्र की हत्या बाँट ली। इन्द्र की हत्या तो छूट गयी, किन्तु विश्वरूप के पिता त्वष्टा मुनि पुत्रवध से इन्द्र पर कुपित हो गये। उन्होंने यज्ञ कुंड से वृत्रासुर की उत्पत्ति की वृत्र ने देवताओं को युद्ध में पराजित कर दिया। पराजित देवों ने भगवान् की स्तुति की। भगवान् ने भयभीत देवताओं को सम्मति दी, कि तुम दधीचि मुनि की हड्डी से अस्त्र बनाकर असुरों को पराजित करो। देवताओं ने इसे असंभव समझा तब भगवान् ने दधीचि का माहात्म्य तथा भगवन्नाम का माहात्म्य बताया। भगवान् की आज्ञा से देवता दधीचि मुनि की शरण में गये, उनकी अस्थि माँगी दधीचि मुनि ने परीक्षार्थ इसे असंभव बताया, तब देवताओं ने परोपकार की महिमा गायी। इस पर प्रसन्न होकर मुनि ने अस्थि देना स्वीकार किया और शरीर त्याग दिया। उनकी अस्थियों से इन्द्र का वज्र बना उसे लेकर देवताओं ने असुरों पर चढ़ाई की, वृत्रासुर ने बड़ी वीरता से देवताओं का सामना किया और उन्हें अधर्म युद्ध के लिये लज्जित किया। तदनन्तर वृत्रासुर और इन्द्र की मुठभेड़ हुई, रण में वृत्रासुर को भगवान् के दर्शन हुए। वृत्रासुर ने बड़े करुण स्वर में भगवान् की दिव्य स्तुति की

और अपनी अन्तिम साध बतायी। फिर अस्त्र शस्त्र लेकर इन्द्र से भिड़ गया। इन्द्र पराजित से हो गये, तब वृत्रासुर ने उसे उपदेश किया, इन्द्र ने वृत्र के वचनों का अभिनन्दन किया और फिर लड़ने लगा। वृत्रासुर ऐरावत हाथी सहित इन्द्र को निगल गया। देवेन्द्र वृत्रासुर के पेट में चले गये। यहाँ तक की "भागवती 'कथा" के सत्रहवें खंड तक है। अब आया अठारहवाँ खंड :—

अठारहवें खंड में उसी वृत्र चरित्र को चालू रखते हुए इन्द्र और वृत्रासुर के युद्ध का वर्णन है। वृत्रासुर के पेट को फाड़ कर इन्द्र बाहर निकल आये और उन्होंने अपने वज्र से वृत्र का वध कर दिया। वृत्रासुर तो मर गया, किन्तु ब्राह्मण होने से इन्द्र को पुनः ब्रह्महत्या लगी। वे ब्रह्महत्या के भय से मानसरोवर में छिप गये। इन्द्र के न रहने पर राजा नहुष को स्थानापन्न इन्द्र बनाया गया। इन्द्राणी पर मन चलाने के कारण उसका स्वर्ग से पतन हुआ। तब ऋषियों ने अश्वमेध यज्ञ करा कर इन्द्र को पाप रहित बना दिया, निष्पाप हुए इन्द्र पुनः स्वर्ग के राजा हुए। महाराज परीक्षित् के पूछने पर श्री शुकदेव जी ने वृत्रासुर के पूर्व जन्म का वृत्तान्त सुनाया। पुत्र हीन राजा चित्रकेतु के महलों में एक दिन अङ्गिरा मुनि गये। राजा ने मुनि से सन्तान की याचना की। मुनि ने यज्ञावशेष चरु देकर पुत्र होने का वर दिया, मुनि की कृपा से राजा की बड़ी रानी के पुत्र हो गया। बड़ी रानी का आदर बढ़ने से उसकी अन्य सौतों को क्षोभ हुआ उन सब ने मिल कर राजकुमार को विष दे दिया। बच्चा मर गया। मृत पुत्र के लिये माता पिता ने अत्यन्त विलाप किया, मृतक पुत्र को लेकर रानी करुण क्रन्दन करने लगी, राजा भी अत्यधिक अधीर हो गये। उसी दशा में वहाँ अङ्गिरा तथा नारद मुनि आ गये। महामुनि अङ्गिरा ने शोक संतप्त राजा रानी को ज्ञानोपदेश दिया।

जब राजा का शोक दूर हुआ तब नारद जी ने उन्हें शिक्षा दीक्षा दी, मृत पुत्र के जोवात्मा को बुलाकर उससे भी शिक्षा दिलायी, इधर विष देने वाली रानियों को भी अपने कृत्य पर पश्चात्ताप हुआ, उन्होंने भो यमुना तट पर जाकर अपने पाप का प्रायश्चित्त किया।

राजा चित्रकेतु श्री नारद प्रदत्त मन्त्र के प्रभाव से विद्याधरों के राजा बन गये। संकर्षण भगवान् ने उन्हें सदुपदेश दिया। विद्याधरों के राजा होकर वे इच्छानुसार सर्वत्र विमान में घूमने लगे। एक दिन शिव जी के अंक में विराजमान शिवा को देखकर शिव जी की हँसी उड़ायी, इस पर शिवा ने उसे आसुरी योनि में जाने का शाप दिया। इस पर राजा को न सुख हुआ न दुख। यह देखकर शिवजी ने भक्त राजा की प्रशंसा की। वही राजा चित्र केतु त्वष्टा मुनि के यज्ञ कुंड से वृत्रासुर होकर उत्पन्न हुआ। यहाँ तक वृत्रासुर का चरित्र हुआ।

वृत्र चरित्र को समाप्त करके अदिति के शेष वंश का वर्णन किया गया है, फिर दिति वंश का वर्णन है इसी प्रसंग में महिषासुर की कथा भी कही गयी है। फिर दिति की उदर से जन्म होने पर भी उन्नचास मरुतों की दैत्य संज्ञा न होकर वे देवता कैसे कहाये यह कथा है। मरुत उत्पत्ति के साथ ही "भागवती कथा" का अठारहवाँ खंड समाप्त किया गया है। अब आता है उन्नीसवाँ खड।

उन्नीसवें खंड में मरुत चरित को चालू रहते हुए इन्द्र ने जिस प्रकार छद्म वेप रख कर अपनी मौसी दिति की सेवा की और अवसर पाकर उसके उदर में घुस कर उसके गर्भ के उनंचास टुकड़े कर दिये यह कथा कह कर मरुत चरित समाप्त किया गया है, अब आरम्भ होता है प्रह्लाद चरित।

प्रह्लाद चरित नारद और युधिष्ठिर के सम्वाद रूप में है।

महाराज परीक्षित् श्री शुकदेव जी से पूछते हैं भगवान के व्यवहार में विषमता क्यों है। इस पर भगवान शुक कहते हैं भगवान तो निर्गुण निर्लेप हैं। इसी प्रसंग मे वे धर्मराज युधिष्ठिर और नारद जी का सम्वाद सुनाते हैं। जय विजय को कैसे शाप हुआ, कैसे वे हिरण्यकशिपु हिरण्याक्ष हुए। भगवान ने सूकर बन कर हिरण्याक्ष को मार दिया इस पर हिरण्यकशिपु किस प्रकार श्री हरि पर कुपित हुआ। उसने सर्व प्रथम अपने समस्त सम्बन्धियों को सान्त्वना दी। इसी प्रसंग में उसने बालक बने यमराज और प्रेत बन्धुओं का सम्वाद सुनाया। अन्त मे अपने उपदेश का सार बताते हुए उसने कहा सब के रक्षक जगदीश हैं, दैवरक्षित ही यथार्थ रक्षित है, आत्मा शरीर से भिन्न है स्वपराभिनिवेश अज्ञान जन्य है। कवि ने इन शब्दों मे इसका सार कहा है—

आत्मा है निरलेप रहै नित पृथक देह तें।
जैसे गेही रहे भिन्न ई सदा गेह तें॥
जलमें बुदबुद होहिँ नहीं ते जल कहलावें।
कनक एकरस रहै हार कंकण मिटि जावें॥
अनल काठतें अलग है, वायु देहतें पृथक ज्यों।
है असंग नभ सर्व गत, आत्मा हू निरलेप त्यों॥

इस प्रकार सब को समझा बुझा कर हिरण्यकशिपु तपस्या के निमित्त वन में चला गया, उसकी कठिन तपस्या को देखकर ब्रह्मा जी ने उसकी इच्छा के अनुरूप कठिन वर दिये। वर पाकर उसका ऐश्वर्य अत्याधिक बढ़ा। वह दुष्ट देवताओं को दुख देने लगा। दुखित देवगण दीन बन्धु के द्वार पर दया की भीख माँगने गये। भक्त वत्सल भगवान् ने कह दिया, प्रह्लाद के जन्म की प्रतीक्षा करो हम सब दुख दूर करेंगे।

प्रह्लाद जी का जन्म हुआ, जन्म से ही उनमें भगवत् भक्तों

के सब लक्षण प्रकट होने लगे। भक्त पुत्र और असुर पिता में आरम्भ से ही मत भेद हो गया। प्रह्लाद जी को पढ़ने पाठशाला पहुँचाया गया, वहाँ भी वे राम नाम पढ़ने लगे यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के उन्नीसवे खंड तक है। अब आया बीसवाँ खंड।

बीसवें खंड में प्रह्लाद चरित को ही चालू रखते हुए जिस प्रकार हिरण्यकशिपुने प्रह्लादजी से पुनः प्रश्न पूछे हैं उनका वर्णन है। पिता ने जब गुरुपुत्रों पर दोष मढ़ना चाहा तब प्रह्लाद जी ने उन्हें निर्दोष सिद्ध कर दिया। इस पर पिता ने पुत्र पर प्रहार करने के प्रयत्न किये। प्रह्लाद जी के मारने के विविध उपाय रचे, किन्तु उन यातनाओं से प्रह्लाद जी भयभीत नहीं हुए, भला भगवत् भक्त को भय कहाँ? प्रह्लाद जी के कारण जब हिरण्यकशिपु अधिक चिन्तित होने लगा तब गुरु पुत्रों ने सम्मति दी आप चिन्ता न करें बालक है सुधर जायगा।

यह सुन कर दैत्य राज ने पुनः पुत्र को पाठशाला भेजा। वहाँ प्रह्लाद जी विद्यार्थी से स्वयं पाठक बन। गये दैत्यपुत्रों को बिठा कर प्रेम का पाठ पढ़ाने लगे। उनको समझाने लगे देखो गृहस्थ में बड़े झंझट हैं, गृहस्थी को वैराग्य होना बड़ा कठिन है। ये संसारी वृत्तियाँ वैराग्य में बड़ी बाधक हैं, जीवन का प्रधान कर्तव्य भगवद् भक्ति ही है, मैंने यह सब ज्ञान नारद जी से प्राप्त किया है। दैत्य पुत्रों के यह पूछने पर कि नारदजी को तुमने

कहाँ भेंट हुई ? इस पर प्रह्लाद जी ने कहा—मेरे पिता जब तप कर रहे थे, तो इन्द्र मेरी माता को पकड़ ले गये। बीच में नारद जी मिल गये। उन्होंने कह सुन कर माता को छुड़ाया और अपने आश्रम पर रखा। वहीं वे मुझे लक्ष्य करके उपदेश करते थे मैं गर्भ में सब सुनता रहता था। माता तो भूल गयी मुझे मुनि की कृपा से सब याद है। गर्भ में ही मुझे नारद जी ने भागवत धर्म, आत्मानुभव के उपाय, गुरु शुश्रुपादि साधन, योगादि अन्य उपाय प्रभुपाद पद्मों में रति, भगवद्भक्तों की प्रेम दशायें, भगवत् प्राप्ति की सुलभता तथा भगवत् प्राप्ति में सभी का अधिकार आदि विषय समझाये थे।

इस प्रकार प्रह्लाद जी उपदेश कर ही रहे थे कि गुरुपुत्र वहाँ आ गये, उन्होंने हिरण्यकशिपु से जाकर सब कह दिया कि राज पुत्र तो अन्य दैत्य पुत्रों को भी बिगाड़ता है। इस पर हिरण्य-कशिपु भी अत्यन्त कुपित हुआ उसने हाथ में खडग लेकर प्रह्लाद जी से पूछा—"बता तेरा विष्णु कहाँ है ?" प्रह्लाद जी ने कहाँ—"मों में तो में खडग खंभमें।" हरिण्यकशिपने पूछा—"इस खम्भमें है ?" प्रह्लाद जी ने कहा—"हाँ" उनके हाँ कहते ही खम्भ में से भगवान् नृसिंह निकल पड़े। नृसिंह भगवान् और हिरण्यकशिपु का युद्ध हुआ। भगवान् ने हिरण्यकशिपु को मार गिराया। देवताओं ने भगवान् का जय जय कार किया। नृसिंह भगवान् उछल कर दैत्यराज के खाली सिंहासन पर जा बैठे। यहाँ तक की कथा 'भागवती कथा' के बीसवें खंड तक में है। अब आता है इक्कीसवाँ खंड।

इक्कीसवें खंड में भी प्रह्लाद चरित को चालू रखते हुए जिस प्रकार हिरण्य कशिपु के मर जाने पर देवताओं ने आकर भगवान्
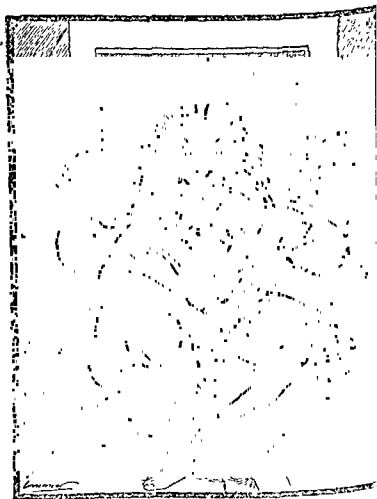
की स्तुति की उसका वर्णन है, फिर जैसे भगवान् ने अपने भक्त प्रह्लाद के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया उसे कहा है, इसके अनन्तर

प्रह्लाद जी ने बड़े मार्मिक शब्दों में भगवान् की दिव्य स्तुति की है, उसका एक एक अक्षर पठनीय है। कवि ने लावनी छंद में उसका अत्यन्त सरसता और सुघरता से यों वर्णन किया है—

जब परी जननि पै भीर तबहिं दुख टारे।
हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे॥
नित सत्व प्रकृति सुर तुमहिं रिझावैं ध्यावैं,
अज शिव सनकादिक पार न पावैं गावैं
हम नीच असुर अति क्रूर अधम कहलावैं,
क्यों करी कृपा शुभ दरशन दीये प्यारे॥१॥
नहिं कोई तुम कूँ तप प्रभाव तैं पावैं,
यदि भक्त होहि तो पशु पैहू दुरि जावैं।
हों भक्त हीन द्विज नहिं तिनि मख में आवैं,
अगनित खल श्वपचहु भक्त भक्ति तैं तारे॥२॥ हे०
जो जैसे तुमकूँ नर हरि भगवन ध्यावै,
वह तैसो दरशन नाथ तुम्हारौ पावै।
ज्यों दरपन में प्रतिबिम्ब स्वरूप लखावै,
हैं प्रकट खम्भ तें मेंटे दुःख हमारे॥३॥ हेकृपा०
भक्तनि हित नव कच्छ मच्छ वपु धारो,
जो शत्रु भावतैं भजैं तिनहिं संहारो।
असुरनिकूँ दैकें मुक्ति सुरनि दुख टारौ,
जग जीवनि हित अति मधुर चरित विस्तारे॥४॥हे०
नित तुमरे चरितनि भक्त जननि में गाऊँ,
नित रूप मनोहर तुमरो नर हरि ध्याऊँ,
भव तरनि चरन गहि नाथ! पार है जाऊँ,
हैं जगजीवन अति सुखमय चरन तिहारे॥५॥हे ना०
यह जीव जगत में तुम कूँ तजि कें भटक्यो,
माया के फंदे फँस्यो गुननि महँ अटक्यो।

चौरासी चक्कर माहिं अविद्या पटक्यो,
हौ तुमही नरहरि एक सहारे ॥३॥ हे कृपा०
नहिं उत्तम मध्य अधम बुद्धि है तुमरी,
है तुमकूँ सृष्टि समान चराचर सबरी।
हम काल व्याल ने डसे लेउ सुधि हमरी,
ये काम क्रोध मद लोभ मोह अहि कारे ॥७॥ हे०
यह मन मेरो है नरहरि चंचल भारी,
नहिं सुनै तुम्हारी कथा सकल अघहारी।
हौं दीन हीन अति छीन गँवार भिखारी,
हे नाथ! लगावो डूबत नाव किनारे ॥८॥ हे०
है माया अपरम्पार तुम्हारी स्वामी,
कैसे पावैं हम तुम्हें असुर खल कामी।
हो घट घट व्यापी प्रभुवर अन्तरयामी,
निगमागम सबरे नेति नेति कहि हारे ॥९॥ हे०
हे कृपानाथ करुणेश जगत रखवारे।
जब परी जननि पै भीर तबहिं दुख टारे॥

इस प्रकार स्तुति सुनकर भगवान् ने भक्त से वर माँगने को कहा प्रह्लाद जी ने बड़ा विचित्र वर माँगा कि मेरे मन में माँगने की वासना ही न रहे। द्वेषी पिता की सद्गति हो यह प्रार्थना की। भगवान् अपने भक्त को इच्छानुसार वर देकर तिरोहित हो गये। इसके अनन्तर प्रह्लाद जी के तीन जन्मों का वृत्तान्त सुनाया है, इस प्रकार नृसिंह चरित्र की समाप्ति की गयी है।

इसके अनन्तर त्रिपुर वृत्तान्त तथा शिव जी द्वारा तीनों पुरों के दाह की कथा कही गयी है, धर्मराज और नारद मुनि के सम्वाद की समाप्ति तक तृतीयाह की कथा है, यहाँ तीसरे दिन के पाठ का विश्राम है।

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने अत्यन्त संक्षेप में

तृतीयाह की सूची सुनायी, अब आप दत्त चित्त होकर चतुर्थाह की सूची सुनने की कृपा करें।

छप्पय

पूर्व वृत्रको चरित चरित मरुतनिको भाख्यो।
पुनि प्रह्लाद चरित्र पिता ज्यों गुरुगृह राख्यो॥
दीये ज्यों बहु कष्ट करयो कीर्तन ज्यों हरिको।
प्रकटे श्रीनरसिंह उदर फारयो ज्यों अरिको॥
नारद मुनितैं धरम सुत, तैं जैसे यह सब कह्यो।
धरमराज सम्वाद तक, तृतिय अाह पूरन भयो॥

—::०::—

चतुर्थाह की विषय सूची

(१३७२)

मन्वन्तरानु कथनं गजेन्द्रस्य विमोक्षणम् ।
मन्वन्वतरावताराश्च विष्णोर्हयशिरादयः । *

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

अब चतुर्थ में प्रथम आइ गज चरित मनोहर ।
सुर विनती पुनि मथन पयोनिधि पान गलहर ॥
धन्वन्तरि अवतार मोहिनी चरित रँगीलो ।
देवासुर सग्राम भयो दैत्यनि बल ढीलो ॥
मिलन मोहिनी शम्भु को, करी विजय बलि ने यथा ।
यों चाले छलिवे की कही, छलिया वटु वामन कथा ॥

गाय भैंस आदि पशु घास आदि चारे को प्रथम वैसे ही गोले बनाकर निगल जाते हैं, जब पेट भर के खालेते हैं, तब एकान्त में बैठकर जुगार करते हैं, उस पेट में गये हुए चारे को पुनः यथाते

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! तदनन्तर मन्वन्तरों की कथा, ग्राह के मुख से गजेन्द्र का छुड़ाना, जगत्पति भगवान् विष्णु के भिन्न भिन्न मन्वन्तरों में होने वाले अवतारों की कथा तथा उनके हय ग्रीवादि अवतारों की कथा (ये सभी चतुर्थाह में वर्णित हैं) ।"

है। वस्तु वही है जिसे पहिले खा चुके हैं, पेट में डाल चुके हैं, किंतु दुबारा चबाने से-जुगार करने से-उससे रस आता है, वह भली भाँति पच जाता है। इसी प्रकार पुस्तक पढ़ लेने के अनन्तर उनके पढ़े हुए विषयों की संक्षिप्त सूची मनन करने से वह कथा नवीन होकर दृष्टिपथ के सम्मुख नृत्य सी करने लगती है, विस्मृत विषय पुनः स्मरण हो जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने तृतीयाह की विषय सूची आपको सुना ही दी, अब चतुर्थाह की कहता हूँ। "भागवती कथा" के इक्कीसवें खंड में तृतीयाह पूर्ण नहीं हुआ था। धर्मराज और देवर्षि नारद सम्वाद के समाप्ति पर्यन्त तीसरे दिन की कथा है जहाँ से मन्वन्तरों की कथा चलती है वह चतुर्थाह है। सर्व प्रथम मन्वन्तरों के नाम हैं। उन उन मन्वन्तरों में कौन कौन से अवतार हुए उनका वर्णन है। प्रथम द्वितीय मन्वन्तरों के तृतीय चतुर्थ मन्वन्तरों की कथायें हैं। चतुर्थ मन्वन्तर में ही हरि भगवान् का अवतार हुआ जिन्होंने गज का ग्राह के मुख से उद्धार किया। पहिले यह बताया है गज और ग्राह कौन थे, ग्राह ने गज का पैर क्यों पकड़ा, अधीर होकर गज ने कैसे भगवान् की स्तुति की। गज की विनय सुनकर भगवान् ने कैसे दोनों का उद्धार किया, गज ग्राह पूर्व जन्म में कौन थे, इस प्रकार गज ग्राह के चरित्र को छै अध्यायों में कहा गया है।

तदनंतर पञ्चम और छठवें मन्वन्तरावतार की कथा है। छठवें मन्वन्तरावतार में जो अजित भगवान् हुए उन्होंने क्षीर सागर का मन्थन कराया। इसलिये अब समुद्र मन्थन की कथा आरम्भ हुई। इन्द्र के अपराध से दुर्वासा मुनि के शाप से तीनों लोकों की श्री नष्ट हो गयी। त्रैलोक्य श्रीहीन हो गया, सब देवता मिलकर ब्रह्माजी के समीप गये, ब्रह्माजी सब देवताओं को लिये हुए भगवान् के समीप गये। भगवान् अजित ने देवताओं को सम्मति दी

कि तुम असुरों से सन्धि कर लो। दोनों मिलकर समुद्र को मथो। उसमें से श्री भी निकलेगी, अन्य रत्न तथा अमृत भी निकलेगा। भगवान् ने सुरों को समझाते हुए नीति बताई-'देखो, स्वार्थ सिद्धि के लिये शत्रु से भी सन्धि कर लेनी चाहिये। भगवान् की आज्ञा शिरोधार्य करके सुरों ने असुरों के साथ सहर्ष सन्धि कर ली। यहाँ तक की कथा 'भागवती कथा' के इक्कीसवें खंड में है, अब आया बाईसवाँ खंड।

बाईसवें खंड में उसी समुद्र मन्थन की कथा को चालू रखते हुए देवता और दैत्य मिलकर समुद्र मंथन को सहमत हो गये आरम्भ में यही कथा है। अब उठा मथानी का प्रश्न, इसके लिये दोनों मन्दराचल पर्वत को ले आये। पूँछ कौन पकड़े सिर कौन पकड़े इसके लिये भगवान् ने उलटों से उलटा व्यवहार करके पहिले देवताओं के सहित मुख पकड़ा, असुरों द्वारा आपत्ति करने पर मुख छोड़कर देवताओं के सहित पूँछ पकड़ी फिर जैसे भगवान् ने कछुआ बनकर मंदराचल को पीठ पर धारण किया, स्वयं समुद्र को मथा, सब से प्रथम विष निकला, उसे पान करने को पशुपति से प्रार्थना की। परोपकार का महत्व प्रकट करते हुए विश्वनाथ विष को पान कर गये। क्यों न करें परोपकार ही प्रभु की परमाराधना है। विश्वनाथ के विष के पान के अनंतर पुनः समुद्र मथा गया, फिर अन्य रत्न उत्पन्न हुए। तत्पश्चात् लक्ष्मीजी की उत्पत्ति हुई, अपने सदृश वर खोजने लक्ष्मी जी सबके निकट गयीं, सब से अंत में उन्होंने श्रीमन्नारायण को वरण कर लिया। तदनंतर अमृत लेकर धन्वन्तरि जो प्रकट हुए। असुर उनसे अमृत के कलश को लेकर भाग गये, आपस में लड़ने लगे, फिर भगवान् ने मोहिनी रूप धारण किया। घूँघट मारकर असुरों को मोहित करके अमृत का कलश हथिया लिया, सुरों को अमृत पिलाकर भगवान् फिर मोहिनी से मोहन बन गये। भगवान् ने

ऐसा कपट व्यवहार क्यों किया, समान प्रयत्न करने पर भी असुरों को अमृत क्यों नहीं मिला, इन प्रश्नों का उत्तर देते हुए बताया है कि विषयासक्ति में ही मृत्यु है।

इसके अनंतर देवता और असुरों के युद्ध का वर्णन है। दोनों में कैसे द्वंद्व युद्ध हुआ, बलि ने इन्द्र के साथ किस प्रकार माया युद्ध किया, इन्द्र ने कैसी आसुरी माया का विनाश किया और असुरों को हराया, बलि को हराकर इन्द्र ने नमुचि को मारा इस प्रकार युद्ध होने पर ब्रह्माजी की आज्ञा से नारद मुनि ने आकर युद्ध को समाप्त कर दिया। यहाँ तक देवासुर संग्राम की कथा है।

अब आयी रँगीली रसीली कथा, कैलास पर बैठे शिवजी को भगवान् के मोहिनी रूप के दर्शनों की इच्छा उठती है, वे अपने गणों तथा नन्दी के सहित वैकुण्ठ में जाते हैं और मोहिनी को देखकर उनके पीछे दौड़ते हैं। फिर मोहिनी का पीछा करते हैं, हरि हरात्मक सम्मिलन हो जाता है। 'भागवती कथा"का बाईसवाँ खंड भी समाप्त हो जाता है। अब आता है तेईसवाँ खंड।

तेईसवें खंड के आरम्भ में मोहिनी चरित का शेषांश कह कर इस चरित्र को समाप्त कर दिया गया है, इस प्रकार षष्ठम मन्वन्तर के अवतार भगवान् अजित की यह समुद्र मन्थन लीला समाप्त हुई, फिर सप्तम मन्वन्तरकी कथा कहकर आने वाले सात मन्वन्तरों की कथा अत्यन्त संक्षेप में कहकर चौदहू मन्वन्तरों का वर्णन करके मन्वन्तरोंके मनु आदि के कार्यों को बताया गया है। अब आती है छलिया बटु वामन की कथा।

महाराज बलि ने स्वर्ग को विजय करने के लिये पुनः प्रयत्न किया। गुरु कृपा से उसने स्वर्ग पर चढ़ाई कर दी। देवताओं के गुरु बृहस्पति जी ने देवताओं से कह दिया-तुम लोग असुरों को अबके नहीं जीत सकते। स्वर्ग छोड़कर चुपके से भाग जाओ।" गुरु आज्ञा से देवगण भाग जाते हैं, बिना युद्ध के बलि तीनों

लोकों का राजा बन जाता है। देवताओं की माता अदिति को इससे बड़ा दुख होता है। वह भगवान् की आराधना करती है कश्यपजी की सम्मति से पयोव्रत का अनुष्ठान करती हैं, उनके नियम व्रत से सन्तुष्ट होकर भगवान् उनके सम्मुख प्रकट होते हैं, स्वयं पुत्र बनकर सुरों के दुःखों को दूर करने का आश्वासन देते हैं और वामन बनकर उनके गर्भ से उत्पन्न होते हैं। छोटे वामन बन गये, कश्यपजी ने उनको जनेऊ करा दिया। अब दंड कमंडल लिये, बगल में मृगछाला दबाये यज्ञ में दीक्षित बलि को छलने जाते हैं, बलि उनसे तेजस्वी बटुका हृदय से स्वागत करता है—

चाहो मनहर महल गुदगुदी सुखकर शैया।
अथवा गज रथ अश्व दूध की सूधी गैया॥
या जस बौने आपु बौनटी दुलहिनि चाहो।
अबई करूँ विवाह न मन महँ बटु सकुचाओ॥
बहु सम्पति युत ग्राम अरु, जो चाहो सोई कहहु।
अथवा मेरे महल महँ, भूपति बनि द्विजवर रहहु॥

विवाह फिवाह तो करना ही नहीं था, वे तो बलि को छलने गये थे। पहिले तो बलि के कुलकी–उसके पिता पितामह की–भर पेट प्रशंसा करी। फिर तीन पग पृथिवी माँगने का प्रस्ताव किया। बलि के गुरु शुक्राचार्य समझ गये यह छलिया विष्णु ही बटु बनकर मेरे शिष्य को छलने आया है। उन्होंने शिष्य को समझाया, व्यावहारिक धर्म बताया। कुछ गोल मोल धर्म भी बताया और किन किन स्थानों में झूठ बोलने से विशेष दोष नहीं होता यह भी समझाया, किंतु उदारमना महाराज बलि के कण्ठ के नीचे यह बात नहीं उतरी, वे अपने सत्य में ही दृढ़ रहे। क्रुद्ध होकर शुक्राचार्य ने उन्हें श्रीहीन होने का शाप दे दिया, इससे भी वे विचलित नहीं हुए। अब छोटे से वामन बटु बड़े हो गये

उन्होंने विराट रूप बना लिया। यहाँ तक की कथा "भागवती-कथा" के तेईसवें खंड में है। अब आता है चौबीसवाँ खण्ड।

चौबीसवें खण्ड में उसी वामनावतार की कथा को चालू

रखते हुए दो डग में जैसे भगवान् ने इस ब्रह्माण्ड को नाप लिया उसका वर्णन है। फिर जैसे प्रभु के पाद पद्मों से विष्णुपदी गङ्गा जी प्रकट हुईं असुरों ने वटु वामन पर कोप किया और बलि ने निवारण करके तीसरे पैर के लिये अपना शरीर अर्पण कर दिया और उसी समय उनके पितामह प्रह्लाद जी आ गये उसका वर्णन है।

तदनंतर ब्रह्माजी के पूछने पर भगवान् ने बताया कि जिसके ऊपर मैं कृपा करता हूँ, उसके धनको अपहरण कर लेता हूँ। ऐसा कहकर भगवान् ने बलि पर कृपा की और उसे सुतल लोक में भेज दिया तथा उनके द्वारपाल बनकर सदा रहने लगे। फिर देवताओं को स्वर्ग का राज्य मिल गया और वामन भगवान् उपेन्द्र बन गये। इस प्रकार वामनावतार की कथा समाप्त होने पर मत्स्यावतार की कथा है।

प्रथम अवतार का प्रयोजन बताकर धर्म के क्षयिष्णु होने की कथा है, फिर महाराज सत्यव्रत पर मत्स्य भगवान् ने कैसे कृपा की, कैसे वे छोटे से बड़े बन गये, राजा ने जब उन्हें पहिचान लिया तो वे सींग मे नौका बाँधकर सप्तर्षियों के सहित प्रलय काल के जल में कैसे विहार करते रहे, इन सब कथाओं को कहकर मत्स्यावतार का चरित समाप्त किया है। वे ही राजा सत्यव्रत इस कल्प में वैवस्वत मनु हुए जिनसे सूर्यवंश और चन्द्रवंश ये दो प्रसिद्ध क्षत्रियों के वंश चले।

प्रथम मनु पुत्र सुद्युम्न की कथा है, वे कैसे इलावृत खंड में जाकर पुरुष से स्त्री बन गये, कैसे उनका बुध से समागम हो गया, बुध कैसे उत्पन्न हुए थे, इला और बुध से पुरूरवा का जन्म कैसे हुआ, इतनी कथा कहकर छोड़ दी है, क्योंकि चन्द्रपुत्र बुध के ही सुत पुरूरवा हुए इनसे ही चन्द्रवंश आरम्भ होता है। जिसकी कथा सूर्यवंश के पश्चात् कही जायगी। अतः इस कथा

को यहीं छोड़कर अब सूर्यवंश की कथा आरम्भ होगी। यहाँ तक "भागवती कथा" का चौबीसवाँ खंड समाप्त हुआ, अब आया पचीसवाँ खण्ड।

पचीसवें खण्ड में सूर्यवंश का वर्णन करते हुए सर्व प्रथम पृषध्र की कथा है, फिर करूप आदि के वंशों का वर्णन करते हुए नाभाग चरित कहा गया है। फिर वत्स प्रीति, प्रांशु, खनित्र, खनिनेत्र, करन्धम, अवीक्षित्, मरुत्त, दम, राज्यवर्धन तृणबिन्दु तथा शर्याति आदि राजाओं के चरित्र हैं। फिर शर्याति राजा की पुत्री सुकन्या की कथा है। राजा अपनी पुत्री और सेना के सहित कैसे च्यवनाश्रम पर गये। कैसे दीमक लगे च्यवन मुनि की आँखें सुकन्या ने फोड़ दीं, कैसे फिर उसका विवाह अंधे और बूढ़े च्यवन मुनि से हुआ। अश्विनी कुमारों की कृपा से कैसे मुनि वृद्ध से तरुण बन गये, च्यवन मुनि ने देवताओं के पंक्त से निकाले अश्विनी कुमारों को कैसे यज्ञ में देवताओं के साथ भाग दिलाया ये सब कथायें विस्तार के साथ वर्णन की गयी है है। फिर शर्याति के पुत्रों की कथा है। इसी प्रसंग में बलराम जी के साथ रेवती का विवाह कैसे हुआ इसकी कथा है। तदनंतर नभग वंश का विस्तार से वर्णन है।

नभग के पुत्र नाभाग हुए, उन्हीं नाभाग के पुत्र परम भागवत महाराज अम्बरीष हुए जिनकी एकादशी व्रत में बड़ी निष्ठा थी। राजर्षि अम्बरीष की एकादशी व्रत की निष्ठा बताकर "भागवती कथा का पचीसवाँ खण्ड समाप्त कर दिया गया है, अब आता है छब्बीसवाँ खण्ड।

छब्बीसवें खण्ड में अम्बरीषजी के ही चरित्र को चालू रखते हुए प्रथम एकादशी व्रत की उत्पत्ति की कथा है, इसी प्रसंग में एकादशी के प्रेमी महाराज रुक्माङ्गद का भी चरित्र कह दिया है। फिर अम्बरीष जी के यहाँ द्वादशी को दुर्वासा मुनि कैसे

आये, कैसे उन्होंने क्रोध करके कृत्या को निकाला, कैसे मुनि की दुर्दशा हुई. कैसे वे भगवान् विष्णु की शरण गये फिर अम्बरीष की शरण में आने पर कैसे उनके दुःख की निवृत्ति हुई, इत्यादि कथा कहकर अम्बरीष चरित्र समाप्त कर दिया गया है। फिर शशाद, ककुत्स्थ, धुन्धुमार, युवनाश्व, तथा मान्धाता आदि राजाओं की कथायें हैं। इसी प्रसंग में महर्षि सौभरि का चरित्र कहा है। तपस्या में निरत सौभरि ऋषि को मत्स्य मैथुन देखकर कैसे विवाह की इच्छा उत्पन्न हुई, कैसे उन्होंने मान्धाता की पचास पुत्रियों के साथ विवाह किया, योग प्रभाव से कैसे उन्होंने गार्हस्थ्य जीवन को व्यतीत किया, कैसे सौभरि ऋषि के वंशज ब्राह्मण आहिवासी कहाये, फिर कैसे वैराग्य होने पर सब कुछ छोड़कर मुनि तपस्या करने वन में चले गये ये सब प्रसंग कहकर सौभरि ऋषि के चरित्र की समाप्ति की गयी है। तदनन्तर मान्धाता के वंश में त्रिशंकु तथा महाराज हरिश्चन्द्र चरित्र तक "भागवती कथा," का छब्बीसवाँ खण्ड समाप्त हुआ अब आता है सत्ताईसवाँ खण्ड।

सत्ताईसवें खण्ड में उसी हरिश्चन्द्र चरित्र को चालू रखते हुए उनका उत्तर चरित्र कहा गया है फिर बाहुक पुत्र महाराज सगर की कथा है। कैसे महाराज सगर ने अश्वमेध यज्ञ किया, कैसे इन्द्र द्वारा अश्व चुराये जाने पर उनके साठ सहस्र पुत्र पाताल में गये और कपिल मुनि के कोप से भस्म हो गये। उनका पौत्र अंशुमान किस प्रकार घोड़े को लौटा लाया। अंशुमान के पुत्र दिलीप कैसे प्रभावशाली हुए दिलीप के पुत्र भगीरथ कैसे गङ्गाजी को लाये, मार्ग में जन्हुमुनि कैसे गंगाजी को पी गये, उनकी अनुनय विनय करके व गंगाजी को कैसे पाताल ले गये और कैसे उन्होंने अपने पिता पितरों का उद्धार किया यह सब प्रसंग वर्णन किये गये हैं। फिर महाराज ऋतुपर्ण, सौदास, मूलक तथा राजा रघु के चरित्र वर्णन हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! महाराज रघु बड़े प्रतापी हुए। इन्हीं के नाम से इक्ष्वाकुवंश रघुवंश के नाम से प्रसिद्ध हुआ, आनन्द कन्द दशरथ नन्दन भगवान् रामचन्द्र इन्हीं के कारण रघुनन्दन, रघुकुल तिलक राघव तथा राघवेन्द्र कहलाये। इनके पुत्र महाराज अज हुए और अज के पुत्र ही दशरथ हुए जिनको भगवान् के पिता होने का देव दुर्लभ पद प्राप्त हुए। मुनियो! भागवती कथा में चतुर्थाह बहुत बड़ा है। इसमें राघवेन्द्र चरित्र बहुत विस्तार के साथ वर्णन किया है। यहाँ सम्पूर्ण चतुर्थाह का वर्णन करूँ तो यह प्रसंग बहुत बड़ा हो जायगा। भगवान् राघवेन्द्र के परम पावन करुणामय प्रसंग को स्मरण करते ही मेरा शरीर रोमाञ्चित हो जाता है। जगज्जननी सीताजी का कैसा विशुद्ध निर्मल करुणापूर्ण चरित्र है। उसे स्मरण करते ही मेरा कण्ठ अवरुद्ध हो गया। अतः चतुर्थाह की बची हुई सूची का वर्णन मैं तनिक रुककर फिर करूँगा। आप धैर्य धारण किये रहें।"

छप्पय

कह्यो चरित सुद्युम्न पुत्र मनु चरित बहे तब।
च्यवन सुकन्या व्याह नभग नाभाग चरित सब॥
पुनि इक्ष्वाकु चरित्र सौभरी चरित मनोहर।
भये त्रिशंकू पुत्र नृपति हरिचन्द धरमधर॥
भये भस्म सुत सगर के, श्री गङ्गाजी आगमन।
रघुवंशी भूपनि कथा, ज्यों दशरथ नृप गुरु शरन॥

—:o:—

चतुर्थाह की विषय सूची

(१३७३)

रामस्य कोसलेन्द्रस्य चरितं किल्बिषापहम् ।
निमेरङ्गपरित्यागो जनकानां च सम्भवः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० २४ श्लो०)

छप्पय

राघवेन्दु की कथा प्रथम हीं बाल चरित है।
ब्याह चरित है द्वितिय तृतिय बनवास चरित है॥
सीता हरन चतुर्थ कह्यो संयोग पंचमों।
राजतिलक है छटा, कह्यो सिय त्याग सातमों॥
अष्टम हे उत्तर चरित, नवमे में महिमा रही।
यों इनि नौ अध्याय में, राघवेन्दु लीला कही॥

हे राम तुम्हारा रूप मन मोहक है, तुम्हारी पुण्यपुरी परम पावन है, तुम्हारी ललित लीलायें समस्त दुरितों को दूर करने वाली हैं, तथा तुम्हारा श्रुत मधुर नाम समस्त ताप संताप और

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कोसलेन्द्र भगवान् रामचन्द्रजी का सर्व पाप प्रणाशक चरित्र, राजा निमि का देह त्याग तथा जनकों की उत्पत्ति की कथा आदि (इस बचे हुए चतुर्थाह की सूची में) है।"

पापों का प्रणाशक है। किसी भी व्याज से तुम्हारी चर्चा की जाय भाव में कुभाव में हँसी में विनोद में कैसे भी आपका नाम लिया जाय वही सुख शान्ति को देने वाला है। हे राम विषय सूची में भी बार बार तुम्हारा नाम लिया जाय, तो उससे भी आप प्रसन्न होंगे ऐसी मेरी भावना है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने चतुर्थाह की विषय सूची आप से कही अब जो शेष है उसे भी आपसे कहता हूँ। अज पुत्र महाराज दशरथ के कोई सन्तान नहीं थी। यद्यपि उनके तीन प्रधान और बहुत सी साधारण रानियाँ थीं। वंश परम्परा को आगे चलाने के निमित्त दशरथजी अपने कुल गुरु भगवान् की शरण में गये। यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के सत्ताईसवें खण्ड तक वर्णित है। अब उसी कथा को उसी खंड में चालू रखते हुए जैसे ऋष्य शृंगमुनि के द्वारा पुत्रेष्ट यज्ञ करने के अनन्तर श्रीराघवेन्दु का प्रादुर्भाव हुआ इसका वर्णन है, फिर रामजी का नामकरण, उनकी अनुपम कृपा की ललित कथा है। फिर जैसे वे विश्वामित्र के मख की रक्षा के निमित्त लक्ष्मण सहित उनके साथ गये, जाते समय जैसे ताड़का को मारा और मुनि के मख की रक्षा की इन सबका सरसता के साथ वर्णन है। इसी प्रसंग पर आकर "भागवती कथा" का सत्ताईसवाँ खंड समाप्त हुआ है, अब आ गया अट्ठाईसवाँ खंड।

अट्ठाईसवें खण्ड में श्री राम की गद्य में बहुत सी साकार झाँकी है। जैसे मर्यादा पुरुषोत्तम श्रीराम, मिथिला पथ के पथिक श्रीराम, अहल्या तारक श्रीराम, जानकी जी के दुलहा श्रीराम, परशुराम दर्प दलन कर्ता श्रीराम, परम निर्ममराम, विरही भरत के बन्धु श्रीराम, वन में विहार करते हुए श्रीराम, मायामृग बने मारीच के पीछे भागते हुए श्रीराम, मारीच को मारकर कुटीर पर लौटते हुए श्रीराम, वैदेही हरण की व्यथा से व्यथित श्रीराम,

प्रिया के विरह में विरही बने श्रीराम ये अत्यन्त ही अनुपम झाँकियाँ हैं। सीताजी के हरण के अनन्तर उनकी खोज में अपने भाई लक्ष्मण सहित श्रीराम एक वन से दूसरे वन में भटकते रहे, यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के अट्ठाईसवें खंड तक वर्णित है अब आता है उन्तीसवाँ खण्ड।

उन्तीसवें खण्ड में श्री रामचरित को ही चालू रखते हुए सर्व प्रथम जटायु उद्धार की कथा है। सबभूत सुहृद् श्रीराम ने आमिषभोजी जटायु की किस प्रकार पिता के समान क्रिया की। फिर शबरी के बेर खाकर वे जिस प्रकार सुग्रीव के समीप गये, हनुमान जी ने अग्नि को साक्षी देकर श्रीराम और सुग्रीव की मैत्री करायी, बालि को मारकर सुग्रीव को राज्य और स्त्री दिलाकर किस प्रकार मैत्री निर्वाह राम ने मित्रधर्म का पालन किया, किस प्रकार सुग्रीव श्रीराम को भूलकर विषयों में आसक्त हो गया, किस प्रकार सीता वियोग में बिलखते हुए श्रीराम ने वर्षा के चार महीने बिताये ये सब प्रसंग संक्षेप और विस्तारके साथ वर्णन किये गये हैं। लक्ष्मणजी के आ जाने पर सुग्रीव आते हैं, हनुमानजी की सम्मति से रीछ बानर बुलाये जाते हैं, सुग्रीवजी रामजी की आज्ञा से उन्हें दशों दिशाओं में भेजते हैं। अंगदादि के साथ हनुमानजी दक्षिण में जाते हैं समुद्र पार करके लङ्का में पहुँचते हैं. सीताजी को श्रीराम का संदेश लेकर लङ्का को जलाकर वे लौटते हैं। हनुमान जी से अपनी प्राण प्रिया का पता पाकर शरणागत प्रतिपालक श्रीराम समुद्र तीर पर आते हैं, वहाँ विभीषण जी उनकी शरण में आते हैं। मार्ग न देने पर प्रभु समुद्र पर कोप करते हैं समुद्र श्रीराम की शरण में आता है और पुल बाँधकर पार होने की युक्ति बताता है, सब वानरों की सहायता से नलनील समुद्र सेतु बाँधते हैं फिर सब लङ्का पुरी पर चढ़ायी करते हैं, लङ्का को क्षत विक्षत कर डालते हैं. राक्षस और बानरों

में भीषण युद्ध होता है रावण के मुख्य मुख्य योद्धा मारे जाते हैं, फिर कुम्भ करण आता है, श्रीराम जी उसे मारकर परम पद देते हैं, फिर रावण तनय इन्द्रजित आता है, वह भी प्राण परित्याग करके परलोक पधार जाता है, तदनन्तर रावण युद्ध के लिये आता है। यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के उन्तीसवें खंड में है, अब आता है तीसवाँ खण्ड।

तीसवें खण्ड में श्रीरामचरित को ही चालू रखते हुए सब प्रथम राम रावण के भीषण युद्ध का वर्णन है। राम रावण के युद्ध के विषय में क्या कहना "राम रावणयो युंद्धः राम रावणयोरिव" अन्त में रावण मारा जाता है, राक्षसियाँ आकर विलाप करती हैं, मन्दोदरी के करुण क्रन्दन से हृदय हिल जाता है फिर विभीषण द्वारा रावण की अन्त्येष्टि क्रिया की जाती है, रामजी अपनी प्राणप्रिया जनक नन्दिनी से मिलते हैं। लङ्का को विजय करके श्रीराम जी अवध के लिये पुष्पक विमान से प्रस्थान करते हैं, सीता जी को समस्त लीला के स्थलों को दिखाते जाते हैं। इधर विरही भरत रामागमन के लिये अत्यन्त ही व्याकुल होते हैं, हनुमान जी से श्री रामागमन का परम सुखद सम्वाद सुनकर अत्यन्त ही प्रमुदित होते हैं, तब श्रीराम और भरतजी का अत्यन्त रोमाञ्चकारी मिलाप होता है। कवि ने करुणा को सजीव सरिता बहा दी है—

लखे भरत कृशगात राम रघुनायक रोये।
आलिङ्गन करि नयन नीरतैं चीर भिगोये॥
भरत राम को मिलन निरखि उपमा सकुचावे।
करुणा हू ह्वै द्रवित नयन तें नीर बहावे॥
जनक सुता चरननि परे, रोवत अति बिलख्यात हैं।
मातु भरत की दशा लखि, हृदय द्रवित ह्वै जात हैं॥

नन्दिग्राम से पुष्पकारूढ़ श्रीराम अयोध्यापुरी में जाते हैं,

अन्तःपुर में माताओं तथा समस्त परिजनों से मिलते हैं, फिर राज्याभिषेक होता है, वनवासी राम राजाराम बन जाते हैं। यज्ञ, दान तथा सत्कर्मों में निरत रहकर प्रजा का पालन करते हैं।

अब अत्यन्त करुण रस से परिपूर्ण जानकी निर्वासन का करुण प्रसंग आता है। निन्दकों द्वारा सीताजी की निन्दा सुन कर लक्ष्मणजी द्वारा सीताजी को वाल्मीक आश्रम पर छुड़वा देते हैं। पति ने मुझे त्याग दिया है इस सम्वाद को सुनकर रोती हुई जानकी जी कहती हैं—

आरज सुत ने त्याग करयो देवर ! किहि कारन।
अति कठोरता करी कान्त ने कैसे धारन॥
प्राननाथ बिनु देह रखूँ कैसे हौं लछिमन।
मेरे तो सरवस्व प्रानपति ही जीवन धन॥
हाय ! वत्स हौं लुटि गई, कितहूँ की अब नहिं रही।
अवधपुरी तें चले जब, तब तुमने क्यों नहिं कही॥

लक्ष्मण अत्यन्त दुखी होते हैं, वे सुकुमारी सीता को इस प्रकार बीहड़ वन में छोड़ना नहीं चाहते, किन्तु कर्तव्य के सम्मुख सबको तिलाञ्जलि देनी होती है। संसार में सेवक का धर्म अत्यन्त ही कठोर होता है वह कठोरता तब पराकाष्ठा पर पहुँच जाती है जब दोनों ही ओर अपने पूज्य हों, लक्ष्मणजी को इस कठोर धर्म का पालन करना पड़ा। जब वे अत्यंत भयंकर निर्जन वन में विदेहनन्दिनी को छोड़कर चलने लगे तब रोते रोते जानकी जी बोलीं—

पतियश जगमहँ अमर होहि तुम सब सुख पाओ।
देवर ! मेरो उदर निरखि नृप के ढिंग जाओ॥
गरभवती हूँ दोष फेरि मोकूँ मत दइयो।
पति परमेश्वर चरन कमल में बन्दन कहियो॥

लखन सुनत मुर्छित भये, गिरे भूमि पै ह्वै बिकल।
लखि प्रसङ्ग अति ई करुन, भये विकल खगमृग सकल॥

लक्ष्मणजी सीताजी को छोड़कर लौट आते हैं, महामुनि बाल्मीकि आकर सीताजी को ले जाते हैं। वहीं वाल्मीक आश्रम पर लव कुश का जन्म होता है, लवण वध के निमित्त जाते हुए शत्रुघ्नजी पुत्रवती सती शिरोमणि सीताजी के दर्शन करते हैं, मथुरा जाकर लवण को मारकर शत्रुघ्नजी वहाँ अपनी राजधानी बनाते हैं, भरतजी भी गन्धर्वों को जीतकर वहाँ अपने दोनों पुत्रों को राजा बना देते हैं। लक्ष्मणजी के पुत्र भी राजा बन जाते हैं।

अब आता है अत्यन्त ही करुण प्रसंग जगज्जननी जानकी जी को सबके सम्मुख शुद्धता की शपथ लेने वाल्मीकाश्रम से पुनः यज्ञ सभा में बुलाया जाता है, माता सबके सम्मुख शपथ लेती हैं धरती माता फट जाती हैं और वे उसमें प्रवेश कर जाती हैं। फिर भगवान् सीताजी के लिये शोक करते हैं, फिर काल साधुका वेष रखकर आता है, वह रामाराम जी से वचन ले लेता है कि जो हमारे आपके बात करते समय आ जाय उसका आप वध कर दें। श्रीरामजी स्वीकार करते हैं, लक्ष्मण पहरे पर रहते हैं, दुर्वासा मुनि आते हैं, लक्ष्मणजी भीतर जाते हैं श्रीरामजी उन्हें मारते तो नहीं सदा के लिये त्याग देते हैं। तदनन्तर समस्त अयोध्यावासी जीवों के सहित प्रभु परमपद को पधार जाते हैं, सुखान्त रामचरित और माहात्म्य कहकर रामचरित समाप्त किया गया है आगे संक्षेप में अन्य इक्ष्वाकु कुल के भूपतियों का वंश कहा गया है।

इक्ष्वाकु वंश समाप्त करके निमिवंश की वंशावली वर्णन की गयी है जिसमें आदि विदेह महाराज जनक सीता पिता महाराज सीरध्वज, महाराज धर्मध्वज, केशिध्वज और खाण्डिक्य तथा और भी जनकवंशीय राजाओं के चरित्र का वर्णन है। अन्त में महाराज दण्डक की कथा कही गयी है यहाँ तक की कथा "भाग-

वती कथा" के इकत्तीसवें खण्ड में वर्णित है अब आता है बत्तीसवाँ खण्ड ।

सूर्यवंश की कथा समाप्त होने पर बत्तीसवें खण्ड से चन्द्रवंश की कथा आरम्भ होती है। प्रथम चन्द्रवंश की उत्पत्ति बताकर चन्द्र के तारा हरण रूपी अनुचित कार्य की विवेचना है। चन्द्र के पुत्र बुध हुए बुध के पुत्र पुरूरवा हुए जिन्होंने स्वर्गीय अप्सरा उर्वशी के साथ विवाह किया उर्वशी कुछ दिन राजा के महलों में रही अन्त में अपनी प्रतिज्ञा भंग होते देखकर वह राजा को छोड़कर स्वर्ग चली गयी। इससे महाराज परम विक्षिप्त हो गये, वे पागलों की भाँति इधर से उधर घूमने लगे, कुरुक्षेत्र में जाकर उर्वशी से पुनर्मिलन हुआ। उसी समय त्रयी विद्या का प्रादुर्भाव हुआ। त्रयी विद्या के प्रभाव से महाराज गन्धर्व लोक में गये। विषयों का उपभोग करते करते उन्हें अन्त में वैराग्य हुआ और उनकी मुक्ति हो गयी। इस प्रकार चन्द्रवंश के संस्थापक प्रतिष्ठानपुरी पति महाराज ऐल का चरित्र कहकर फिर राजर्षि जन्हु का चरित्र कहा है, फिर कुशनाभ का चरित्र कहकर सत्यवती पति महाराज ऋचीक का चरित्र है। किस प्रकार सत्यवती और उसकी माता के चरु के विपर्यय से ब्राह्मण वंश में भी उत्पन्न होने वाले परशुरामजी क्षत्रिय स्वभाव के हुए और क्षत्रिय वंश में उत्पन्न होने वाले विश्वामित्र भी ब्राह्मण बन गये। इसी प्रसङ्ग में श्री परशुरामावतार की परम पुण्यदायिनी गाथा है श्री परशुरामजी ने पिता की आज्ञा से कैसे भाइयों और माता के सिर को काट लिया, किस प्रकार सहस्रार्जुन बलपूर्वक पिता जमदग्नि जी की कामधेनु को हर ले गया, कैसे परशुरामजी जाकर सहस्रार्जुन को मारकर अपनी कामधेनु को लौटा लाये। फिर पिता के कहने से परशुरामजी प्रायश्चित्त करते हैं, सहस्रार्जुन के लड़के आते हैं, वे छिपकर परशुरामजी के पिता का सिर काट लेते हैं, इससे क्रुद्ध होकर परशुरामजी इक्कीस बार क्षत्रियों का विनाश करते हैं, तद-

नन्तर समस्त पृथिवी को दान करके वे प्रशान्त बन जाते हैं यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के बत्तीसवें खण्ड तक की है, अब आता है तेतीसवाँ खण्ड।

तेतीसवें खंड में सर्व प्रथम विश्वामित्र चरित्र है, कैसे उन्होंने अपने भानजे शुनः शेप का उद्धार किया कैसे वे क्षत्रिय से ब्राह्मण बन गये। फिर पुरूरवा के ज्येष्ठ पुत्र आयु के वंश का वर्णन है। फिर कुवलाश्व ऋतध्वज, अलर्क, रजिरम्भ,अनेना तथा नहुष आदि राजाओं के चरित्र हैं। इन्द्र को ब्रह्म हत्या करने पर कैसे देवगण राजा नहुष के पास आये कैसे वह स्वर्ग का राजा बना, किस प्रकार इन्द्राणी पर कुदृष्टि रखने के कारण उसका पतन हुआ फिर शुक्राचार्य की पुत्री देवयानी की कथा है। देवताओं की अनुमति से गुरुपुत्र कच शुक्राचार्यजी के समीप मृत संजीवनी विद्या सीखने जाते हैं, वहाँ उनसे गुरुपुत्री देवयानी बहुत प्रेम करने लगती है। चलते समय वह उनसे विवाह का प्रस्ताव करती है। कच के स्वीकार न करने पर दोनों ओर से शापाशापी होती है। वृषपर्वा की पुत्री शर्मिष्ठा और देवयानी में लड़ाई होती है, 'शर्मिष्ठा सदा देवयानी की दासी बनकर रहेगी, इस प्रतिज्ञा पर बीच बिचाव होता है, विधि के विधान से देवयानी का विवाह राजा ययाति से होता है शर्मिष्ठा भी साथ जाती है। राजा के वीर्यदान देने पर शर्मिष्ठा के भी पुत्र हो जाते हैं, इस पर कुपित होकर देवयानी पिता के यहाँ चली जाती है, शुक्र के शाप से ययाति पर जरा का आक्रमण होता है, अपने पुत्रों में से सबसे छोटे पुत्र पुरु को जरा देकर राजा पुनः यौवन प्राप्त करते हैं अन्त में उन्हें वैराग्य होता है. गृह को त्यागकर तपस्या करने जाते हैं और परम पद की प्राप्ति करते हैं, यहाँ तक देवयानी और महाराज ययाति का चरित्र है। अब पुरुवंशी महाराज दुष्यन्त का चरित्र आरम्भ होता है साथ ही "भागवती

कथा" के तैतीसवें खण्ड की समाप्ति होती है। अब आता है चौतीसवाँ खण्ड।

चौतीसवें खण्ड में महाराज दुष्यन्त की कथा को ही चालू रखते हुए सर्व प्रथम यह बताया है कि महाराज किस प्रकार वन में आखेट को गये और कैसे कण्वाश्रम में उनकी भेंट शकुन्तला से हो गयी। शकुन्तला की सखियों ने उसकी मेनका और विश्वामित्र से उत्पत्ति की कथा महाराज को सुनायी, अन्त में दुष्यन्त के साथ शकुन्तला का गन्धर्व विवाह हो गया। आश्रम में ही शकुन्तला पुत्रवती बनी कच मुनि ने उसे पति गृह भेज दिया, उसके पति दुष्यन्त ने उसे स्वीकार नहीं किया उसका अपमान कर दिया। पीछे आकाश वाणी होने पर स्वीकार किया। इसी शकुन्तला के पुत्र महाराज भरत हुए। फिर भरतवंशी राजाओं की कथायें हैं। जिसमें महाराज रन्तिदेव की कथा अत्यन्त ही पुण्य प्रद है। फिर महाराज बृहत्क्षत्र के वंश का वर्णन है। कृप और कृपी की कथा है। तदनन्तर पाञ्चालवंशीय राजाओं का वंश, राजा संवरण की कथा, तपती और संवरण का विवाह कैसे हुआ, महाराज वसु उपरिचर क्यों कहलाये, चेदि राजाओं की कथा तथा महाराज शन्तनु की कथा आदि बड़े ही अलौकिक प्रसंग हैं।

महाराज शन्तनु के पुत्र देवव्रत का नाम भीष्म क्यों पड़ा, सत्यवती के सुत विचित्र वीर्य का विवाह काशिराज की कन्याओं से कैसे हुआ, अम्बा के निमित्त भीष्मपितामह को परशुरामजी से युद्ध क्यों करना पड़ा, विचित्र वीर्य के क्षेत्रज पुत्र धृतराष्ट्र पांडु और विदुर कैसे हुए। पांडु के पुत्र पांडवों का पालन धृतराष्ट्र ने कैसे किया, किस प्रकार द्रौपदी के साथ पाण्डवों का विवाह हुआ और पांचों भाइयों के पाँच पुत्र द्रौपदी के कौन कौन हुए इसका वर्णन पाँडवों के पुत्र पौत्रों तथा आगे के वंश वालों का वर्णन

किया गया है। इस प्रकार पुरु वंश की कथा संक्षेप में कही है। यहाँ आकर भागवती कथा का चौतीसवाँ खण्ड समाप्त होता है। अब आता है पैंतीसवाँ खण्ड।

पैंतीसवें खंड में सर्व प्रथम अनुवंशीय महाराज उशीनर की कथा है। फिर उनके पुत्र परम दानी पुण्य श्लोक शिवि का चरित्र है, फिर अनुवंश के महाराज बलि की सन्तति का वर्णन है। तदनन्तर महाराज रोमपाद की पुत्री शान्ता की कथा है। महाराज दशरथ ने अपनी पुत्री राजा रोमपाद को कैसे दी, कैसे उनके देश में अनावृष्टि हुई। ब्राह्मणों ने ऋष्य शृंग मुनि को लाने की अनुमति दी। एक वेश्या अपनी पुत्री के साथ गयी और ऋषि कुमार ऋष्य शृंग को फँसा लायी। तदनन्तर महाराज रोमपाद के वंशजों का वर्णन है। फिर द्रुह्यु और तुर्वसु इन दो ययाति के पुत्रों के वंशजों को संक्षेप में कहकर तब ययाति के ज्येष्ठ पुत्र यदु के वंश का वर्णन है। जिस वंश में आनन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र का प्राकट्य हुआ है।

यदुवंश के वर्णन में महायोगी महाराज शशबिन्दु की कथा है फिर ज्यामघ तथा वृष्णि और उनके वंशजों का वर्णन है। उग्रसेन तक के वंश को कहकर फिर यह बताया है कि उग्रसेन का पुत्र कंस कैसे हुआ यह पूर्व जन्म में कालनेमि असुर था। इसी वंश में शूर हुए। जिनके वसुदेव जी हुए। वसुदेवजी और उनके भाई बहिनों की सन्तति गिनाकर अन्त में देवकीजी के गर्भ से भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रजी का जन्म हुआ। इसका संकेत कर दिया है। राजा परीक्षित को लुभाने के लिये श्रीकृष्ण रूप सुधा की बानगी चखाते हुए श्री शुक का कुछ कहना-सा वर्णन कर दिया है। कवि के ही शब्दों में सुनिये :—

> जापै चितवन मधुर मंद मुसकान मयी है।
> नयन पुटनि तें पान-काम छवि सुधामयी है।

कानन कुण्डल सुघर कपोलनि आनन दमकैं।
चन्द्ररश्मि के परत सुदामनि सी सम चमकैं॥
इकटक निरखहिँ नारि नर, मन अटके चित चकित हैं।
परें पलक व्यवधान तो, निमिकूँ कोसें दुखित हैं॥

सूर्यवंशी की इतनी लम्बी वंशावली इसलिये कही कि उसमें सीतापति श्री रघवेन्दु अवतरित हुए और चन्द्रवंश की विशद वंशावली इसलिये कही कि इसमें यदुकुल तिलक वृष्णि वंशावतंस भगवान् वासुदेव का प्रादुर्भाव हुआ।

सूतजी शौनकादि मुनियों से कह रहे हैं—"सो मुनियो! इस प्रकार मैंने आपसे "भागवती कथा" के अन्तर्गत पैंतीस खंडों की विषय सूची कह दी। पैंतीसवें खण्ड में जाकर चतुर्थाह समाप्त हो जाता है। अब छत्तीसवें खण्ड में जैसे पञ्चमाह आरम्भ होता है और उसमें भगवान् की जैसी मधुरातिमधुर बाल लीलायें हैं उनकी विषय सूची मैं आगे बताऊँगा। आप सब सदय होकर सुनने की कृपा करें।"

छप्पय

निमिको कहिकें वंश कथा दण्डक की भाखी।
चन्द्रवंश पुनि कह्यो उरवशी इल-सुत, राखी॥
परशुराम अवतार ऐल को वंश सुनायो।
नृप ययाति को चरित पुराननि में जो गायो॥
पुरु अनु आदि ययाति सुत, वंश कह्यो यदुवंश पुनि।
चतुर्थाह पूरन भयो, पञ्चमाह अब सुनहु मुनि॥

—::०::—

पञ्चमाह की विषय सूची (प्रथम)

(१३७४)

यत्रावतीर्णो भगवान् कृष्णाख्यो जगदीश्वरः।
वसुदेव गृहे जन्म ततो वृद्धिश्च गोकुले ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० २७ श्लो०)

छप्पय

पञ्चमाह में प्रथम ब्याह वसुदेव बखान्यों।
नभवानी तें कंस देवकी-सुत रिपु जान्यों॥
चिन्ता व्यापी कंस कृष्ण अवतार कह्यो है।
गोकुल में प्रभु गये तहँ आनन्द भयो है॥
आइ पूतना विष दयौ, मरी बकीकूँ गति दई।
कही कथा शकटादि तृन, मुक्ति खलनिकूँ ज्यों भई॥

श्रीभागवत में श्रीकृष्ण चरित ही अनेक रूपों में कहा गया है। भागवत का सिद्धान्त है, अन्य जितने अवतार हैं, कोई अंशावतार है, कोई कलावतार हैं, किन्तु श्रीकृष्ण स्वयं साक्षात्

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यदुवंश में भगवान् जगदीश्वर श्री कृष्ण नाम से अवतरित हुए। प्रथम उनका श्री वसुदेवजी के घर में जन्म हुआ, फिर वे गोकुल में जाकर बड़े हुए।"

परब्रह्म ही हैं। वे अवतार नहीं अवतारी हैं। समस्त अवतारों के उद्गम स्थान हैं। अंश और अंशी में कोई भेद नहीं। अतः जितने अवतारों के चरित हैं, वे सब भी श्रीकृष्ण के ही चरित हैं, भागवत में उनको भी श्रीकृष्ण चरित के नाम से कहा गया है। इसलिये संहिताकार को जब भी अवसर मिला है तभी श्रीकृष्ण लीलाओं का बखान किया है, विषय सूची वर्णन में भी जितना अधिक विस्तार दशमस्कन्ध का किया है, उतना किसी स्कन्ध का नहीं किया, क्योंकि दशमस्कन्ध की विशुद्धि के ही लिये अन्य स्कन्धों का वर्णन है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मैंने आप से चतुर्थाह की विषय सूची तो कह दी अब आप पञ्चमाह की विषय सूची और श्रवण करें। "भागवती कथा" के पैंतीसवें खण्ड तक चतुर्थाह की कथा है, छत्तीसवें खण्ड के आरम्भ में ही श्रीकृष्ण चरित आरम्भ होता है। सर्व प्रथम महाराज परीक्षित ने श्रीशुकदेवजी से श्रीकृष्ण चरित सम्बन्धी प्रश्न किये हैं, उन्होंने श्रीकृष्ण कथा श्रवण में अत्यन्त उत्सुकता प्रकट की है और मानव शरीर की सार्थकता इसी में बतायी है। भगवान् शुक ने उनके प्रश्नों का अभिनन्दन करके भगवान् के अवतार लेने का प्रयोजन बताया है। फिर अवतार कथा आरम्भ होती है, देवताओं को साथ लिये हुए पृथिवी भगवान् के पास जाती है। भगवान् समस्त देवताओं को आश्वासन देते हैं और वसुदेव जी के यहाँ अवतार लेने का वचन देते हैं। इस प्रकार भूमिका बाँधकर अब वसुदेवजी की चर्चा आरम्भ होती है।

वसुदेवजी देवकी के साथ विवाह करके उसे विदा कराके लाते हैं, कंस को आकाश वाणी सुनायी देती है, कि इसका आठवाँ पुत्र तुझे मारेगा। कंस अपनी बहिन देवकी को मारने के लिये उद्यत होता है, वसुदेवजी सब पुत्रों को देने की प्रतिज्ञा करके

देवकी को छुड़ाकर घर आते हैं। प्रथम पुत्र होते ही उसे कंस की राजसभा में ले जाते हैं, कंस जब उस पुत्र को लौटा देता है तो देवर्षि नारद आते हैं, उसके पाप बढ़ाने को समझा बुझाकर लड़के को उसके द्वारा मरवा देते हैं, कंस अपने पिता को बन्दी बनाकर स्वयं राजा बन जाता है, उधर गोकुल में रोहिणी जी के गर्भ से शेषावतार बलदेवजी का अवतार होता है, इधर वसुदेव जी के अन्तःकरण में परमेश प्रभु प्रवेश करते हैं, पुनः वे देवकी के गर्भ में प्रविष्ट होते हैं, देवकी को गर्भवती देखकर इसे अष्टम गर्भ समझकर कंस चिन्तित होता है, देवगण आकर गर्भगत विष्णु की स्तुति करते हैं, भगवान् का चतुर्भुज रूप से मथुरा में जन्म होता है। माता देवकी और वसुदेवजी भगवान् की स्तुति करते हैं, कंस से अभय प्राप्त करने की प्रार्थना करते हैं, भगवान की आज्ञा से वसुदेवजी उन्हें गोकुल ले जाते हैं।"

उधर नंदिनी यशुमति गर्भिणी थीं। उनके यहाँ योगमाया का जन्म होता है, वसुदेवजी सुत को शैया पर रखकर योगमाया को ले आते हैं, कन्या कारावास में आ जाती है, कारावास में आकर कंस उसे पत्थर पर पटक देता है। "तेरा मारने वाला यहाँ कहीं पैदा हो गया" ऐसी भविष्य वाणी करके योगमाया अन्तर्हित हो जाती है। कंस देवकी और वसुदेव जी को कारावास से मुक्त कर देता है। यहाँ तक की कथा, "भागवती कथा" के ३६ वें खंड तक में है, अब आता है ३७ वाँ खण्ड।

सैंतीसवें खंड में सर्व प्रथम क्लेशित कंस को कुटिल मंत्री-गण क्रूर कर्म करने की कुमन्त्रणा देते हैं, वह शत्रु की खोज में पूतना अघासुर बकासुर आदि असुरों को भेजता है। इधर नन्द जी के घर में पुत्र जन्म के उपलक्ष में आनन्द होता है, नँदलाला के जात कर्म आदि संस्कार कराये जाते हैं, विप्रों को विविध भाँति के दान दिये जाते हैं, उदारमता नन्दजी सर्वस्व दान करके अपने

धन को सार्थक करते हैं, वे सभी का दान मान से सम्मान तथा सत्कार करते हैं। समस्त व्रज मण्डल में महा महोत्सव मनाया जाता है। गोपगण गौओं का सुन्दर शृंगार करते हैं, बधाई के लिये नन्द पौरि पर जाते हैं. गोपियाँ भी चाव की तैयारियाँ करती हैं। नाना प्रकार के उपहार लिये हुए वे भी नन्द भवन 'की ओर गीत गाती हुई जाती हैं, उन भावमयी भामिनियों के आनन्दोल्लास से समस्त नन्द भवन तथा व्रज मण्डल मुखरित हो जाता है। फिर दधिकाँदों होती है, इस प्रकार बड़ा भारी महा महोत्सव मनाया जाता है।

जब लाला जी छै दिन के हो जाते हैं, तो उनकी छटी होती है। नन्दोत्सव का उपसंहार करते हुए कवि कहता है—

दोहा—नन्दोत्सव घर घर भयो, नर नारिनि मन मोद।
आवें निरखें लालकूँ, लेवें पुनि पुनि गोद॥
नन्द नँदन निरखत तुरत, सब उर उमड़त प्यार।
छटवें दिन छट्ठी भई, पूरी और कसार॥

छटी का कसार खाकर नंदजी कंस को वार्षिक कर देने मथुरा जाते हैं, कर देने के अनन्तर वसुदेवजी से उनकी भेंट होती है। वसुदेव जी के सुझाने पर नंदजी व्रज को चल देते हैं। इधर बालकोंको मारती चूची में विष लपेटे पूतना मौसी व्रज में आती है, वह विष से सनी अपनी चूची लालजी के मुख में दे देती है। गौने की सी दुलहिनि बनी ठनी उस ठगिनी की विषैली चूची को लाल जी चुसुर चुसुर करके पीने लगते हैं। कवि ने कैसा सजीव वर्णन किया है—

छप्पय

बनि अति सुन्दरि नारि महल महँ बैठी लुच्ची।
गरल लपेटी दई लाल के मुख महँ चुची॥

हरि कूँ आयो राप पकरि कर बांबा लीन्हीं।
कच कचाइके चढ़े घुटमुनी मुख महँ दीन्हीं॥
पीवें पय प्रभु प्रान सँग, अति अद्भुत छवि लालकी।
मातु निहारति चकित चित, बनी अकचकी-सी बकी॥

लालजी ने जहाँ मौसी की चर्चा की कि वह भयकर बन जाती है, और अपने यथार्थ रूप से प्रकट होकर परम पद को अधिकारिणी हो जाती है। जगत् की रक्षा करने वाले विश्व रक्षक की गोपिकायें रक्षा करती हैं। उधर मथुरा से लौटते हुए नन्द गोपादि पूतना के मृतक देह को देखते हैं, तो उसे काट काटकर जला देते हैं, यहाँ तक पूतना मोक्ष की कथा है।

अब लालजी का करवट बदल और जन्म नक्षत्र महोत्सव होता है, फिर अड़ड़ड़ धम्म करके छकड़ा गिर जाता है बकासुर आदि अन्य असुर आते हैं वे भी सब मरके सुरलोक सिधारते हैं। तृणावर्त की तिकड़म तिड़ी हो जाती है, फिर भगवान् यशोदा मैया को विश्वरूप दर्शन कराते हैं। यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के सैंतीसवें खंड में है। अब आता है अड़तीसवाँ खंड।

अड़तीसवें खड में श्री कृष्णचन्द्र और बलराम जी का नाम करण संस्कार होता है। मातायें उनका प्यार का नाम कनुआ बलुआ रख लेती हैं। फिर दोनों की बाल लीला है, कैसे कीचड़ में लिथिर जाते हैं, कैसे बछड़ों के साथ खेलते हैं, इसी प्रकार की बाल विनोदिनी लीलायें हैं। फिर मिट्टी खाने की लीला माखनचोरी की लीला आदि हैं। गोपिकायें श्रीकृष्ण के नित नये उत्पातों से खीजकर कैसे यशोदाजी के पास जाकर श्रीकृष्ण सम्बन्धी उलाहना देती हैं, सभी उनके उत्पातों को सिद्ध करने की ताड़ में लगी रहती हैं, मैया के मन में भी माखनचोरी

लीला देखने की इच्छा उठती है, अतः अब दामोदर लीला का श्रीगणेश होता है।

यशोदा मैया दधि मथ रही हैं, श्याम आकर माँ का दूध पीने लगते हैं, बरोसी का दूध उफनते ही माँ श्रीकृष्ण को छोड़-

कर दूध उतारने जाती हैं, क्रोधमें भरे कृष्ण उनकी दधि मथने की मथानी को छोड़कर माखन लेकर भाग जाते हैं, फिर माता की पकड़में आ जाते हैं, माता उन्हें उलूखलसे बाँध देतीहैं भगवानभक्त वश्यता दिखाते हैं, वृक्ष बने नल कूबर मणि ग्रीव दोनों कुबेर के

पुत्रों का उद्धार करते हैं, नन्दजी आकर श्रीकृष्ण को बन्धन से खोल देते हैं, इस प्रकार भक्तवश्य भगवान् की सरस प्रेममयी लीलाओं के वर्णन में इस अड़तीसवें खण्ड की समाप्ति होती है। अब आता है उन्तालीसवाँ खण्ड।

उन्तालीसवें खण्ड में सर्व प्रथम फल बेचने वाली पर की हुई कृपा का वर्णन है, फिर कनुआ बलुआ की कलित क्रीड़ाओं की कथायें हैं, फिर गोपगण गोकुल को छोड़कर वृन्दावन में जाकर रहने लगते हैं, वहाँ वृन्दावन विहारी को बाँसुरी मिल जाती है, वनों में बालकों के खेल होते हैं वत्सासुर बकासुर आदि असुर मारे जाते हैं, फिर बालकों के विचित्र खेल और विनोद का वर्णन है इस प्रकार व्रजवासी बालकों के सौभाग्य की सराहना करके अघासुर की कथा आरम्भ होती है। अघासुर आता है, वह ग्वाल बाल बछड़े तथा बनवारी को भी लील जाता है श्रीकृष्ण उसे मारकर सबका उद्धार करते हैं, फिर परीक्षितजी की शंका और श्री शुकदेवजी द्वारा उसका समाधान है, फिर ब्रह्माजी के मोह की कथा आरम्भ होती है।

ग्वाल बालों के साथ बनवारी को वन में प्राकृत बालकों के सदृश जूठा खाते देखकर ब्रह्माजी को मोह होता है, वे ग्वाल बाल तथा बछड़ों को चुरा ले जाते हैं, श्रीकृष्ण ही ग्वाल बाल तथा बछड़े बनकर सर्वं विष्णुमयं जगत्" इस वाक्य को प्रत्यक्ष करके दिखा देते हैं, बलदेवजी द्वारा इस लीला का रहस्योद्घाटन होता ब्रह्माजी को भगवान् की अपार महिमा के दर्शन होते हैं, तब ब्रह्मा जी स्तुति करते हैं उनका मोह दूर होता है। फिर दो अध्यायों में गोचारण लीला के प्रसंग को कहकर उन्तालीसवें खण्ड की कथा समाप्त कर दी गयी है, अब आता है 'भागवती कथा' का चालीसवाँ खंड।

चालीसवें खंड में सर्व प्रथम श्रीहरि की कुछ पौगण्डावस्था की कमनीय क्रीड़ाओं का वर्णन है फिर धेनुक वध और उसके पूर्व जन्म का वृत्तान्त है अब आरम्भ होती है कालीय दमन की करुण कथा।

कालियनाग वृन्दावन में कैसे आया। खेल खेल में श्रीकृष्णचन्द्र कालियदह में कूद जाते हैं, कालिय उन्हें अपने शरीर से जकड़ लेता है, रोते हुए व्रजवासी भी कालियदह पर आ जाते हैं, वे श्री कृष्ण को इस दशा में देखकर विलाप करने लगते हैं, श्री कृष्ण ताथातेई करके कालिय की फणावली पर नृत्य करने लगते हैं, कालिय नाग की बहू आकर स्तुति करती हैं, श्रीकृष्ण उसे अभय प्रदान करते हैं, अपने चरणचिन्ह को उसकी फणावली पर अंकित करके उसे व्रज से निकाल देते हैं। व्रजवासी प्रसन्न हो जाते हैं, उस रात्रि वहीं निवास करते हैं, रात्रि में वन में दावानल लग जाता है, श्रीकृष्ण दावानल का पान कर जाते हैं।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भागवती कथा में श्रीकृष्ण चरित्र को विस्तार के साथ लिखा गया है. अतः मैं भी इसकी सूची विस्तार के साथ ही कहूँगा। भगवान् अपने सखा ग्वाल बालों के साथ घुड़चढ़ी आदि नाना खेल खेलते हैं और उन्होंनेप्रलम्बासुर का उद्धार किया उसकी सूची आगे बताऊँगा पञ्चमाह की विषय सूची तीन अध्यायों में कहूँगा।

छप्पय

विश्वरूप माँ दरश बाललीला मृद्भक्षन।
माखन चोरी ललित बधे ज्यों नटखट मोहन ॥
गोकुल गोपनि संग त्यागि वृन्दावन आये।
करें खेल, बक, वत्स, असुर अघ मारि गिराये॥
ब्रह्माजी मोहित भये, धेनुक कालिय की कथा।
नाग निकारयो नाथिकें, दावानल पीयो यथा॥

—:o:—

पञ्चमाह की विषय सूची (द्वितीय)

(१३७५)

व्रतचर्या तु कन्यानां यत्रतुष्टोऽच्युतो व्रतैः ।
प्रसादो यज्ञपत्नीभ्यो विप्राणां चानुतापनम् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ३१ श्लो०)

छप्पय

पुनि प्रलम्ब की मोक्ष वेनु को गीत मनोहर ।
वस्त्र चुराये दये कुमारिनि कूँ वर सुखकर ॥
द्विज पतिनिनि पै कृपा श्याम गोवरधन धारयौ ।
इन्द्र, सुरभि अरु बरुन सवनि दरशन तैं तारयौ ॥
फेरि रास इच्छा भई, बेनु बजाई रसभरी ।
ब्रज बनिता धुनि सुनि चली, कछु न कानि कुलकी करी ।

जीव व्यर्थ बहुत बातें करता है, यदि वह श्री कृष्ण कथा को ही वाणी से कहे, श्रीकृष्ण के मंगलमय मधुमय मनोहर नामों का उच्चारण करे, कानों से कमनीया कृष्ण कथा का ही श्रवण करे,

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! (पञ्चमाह में इसके अनन्तर) गोप कन्याओं की उस व्रतचर्या का वर्णन है जिसमें भगवान् अच्युत उनके व्रतों से सन्तुष्ट हुए थे । फिर यज्ञ पत्नियों पर जैसे भगवान् ने अनुग्रह की, जैसे ब्राह्मणों ने अपने कृत्य पर पश्चात्ताप किया ये सब विषय वर्णित हैं ।"

तो उसे भवसागर में भटकना न पड़े इतिहास तथा पुराणों में यही तो एक विशेषता है, इनमें सर्वत्र सब प्रकार से श्री कृष्ण कथा का ही वर्णन है, जहाँ भी कृष्ण कथा का प्रसंग छिड़ता है, वहीं उसका विस्तार कर देते हैं, अन्य कथाओं को पूरक मानकर संक्षेप में कह देते हैं, और उसका सम्बन्ध श्री कृष्ण कथा से जोड़ देते हैं, श्री कृष्ण कथा अंगी है, अन्य कथायें अंग उपांग हैं। श्री कृष्ण कथा विस्तार करना यही शास्त्रों का प्रधान उद्देश्य है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने पंचमाह की भूमिका का एक तृतीयांश तो आप से कह दिया अब द्वितीयांश आप से कहता हूँ। "भागवती कथा" के चालीसवें खण्ड में कालिय दमन लीला तथा दावानल पान तक की विषय सूची तो मैंने पीछे बता ही दी अब आप भगवान् की लीला की विषय सूची सुनिये। चालीसवें खण्ड को चालू रखते हुए दावानल पान की लीला से आगे की कथा है। भगवान् ग्वाल बाल तथा माता पिता के सहित कालिय ह्रद् से लौटकर गोकुल में आते हैं। आकर अपने सखाओं के साथ भाँति भाँति की क्रीड़ायें करते हैं। घुड़चड्डी का खेल खेलते हैं कभी बालकों को घोड़ा बनाकर उनपर चढ़ते हैं, तो कभी स्वयं ही घोड़ा बनकर बालकों को चढ़ाते हैं। उसी समय प्रलम्बासुर आ जाता है, उसे यम के सदन पठाते हैं। फिर वन में लगी अग्नि से गौ और गोपों की रक्षा करते हैं। इस प्रकार ग्वाल बालों के साथ की क्रीड़ाओं का वर्णन करके गोपियों के अनुपम अनुराग को दरसाते हैं, भगवान् कैसे वेणु वादन करके वृजाङ्गनाओं को विकल बना देते थे, उनकी रूप माधुरी और वेणुमाधुरी के प्रभाव से कैसे सचर प्राणी अचर और अचर सचर बन जाते थे, इसका वर्णन है। तदनन्तर तपस्विनी बाँसुरी की महिमा गायी गयी है, वह मादक मुरलीध्वनि कैसे मन को

मोहित कर लेती है, वृजाङ्गनाओं को कैसे बेसुधि बना देती है, अचर प्राणियों को सचर कर देती है, इस प्रकार छै अध्यायों में बाँसुरी की महिमा गायी गयी है। तदनन्तर आती है चीर हरण लीला। किस प्रकार ब्रज की कन्याओं ने मिलकर कात्यायनी देवी का व्रत किया, व्रत की समाप्ति के दिन श्याम सुन्दर चुपके से आकर कैसे उनके वस्त्रों को उठाकर कदंब पर चढ़ गये, कैसे उन्होंने वनवारी से विनय करके वस्त्रों को पुनः पाया और अपने व्रत की सफलता समझो पुनः सब व्रज बालाओं को विहारी ने वरदानदिया। इसप्रकार चारअध्यायोंमें 'भागवती कथा'का चालीसवाँ खण्डभी समाप्त हो जाता है, अब आता है इकतालीसवाँ खण्ड।

इकतालीसवें खंड में सर्व प्रथम पाच अध्यायों में द्विज पत्नियों के अनुपम अनुराग की अद्भुत कथा है। कैसे ग्वाल बाल भूख के कारण कुनकुनाने लगे। कन्हैया ने कैसे उन्हें द्विज पत्नियों के समीप भेजा और वहाँ जाकर किस प्रकार उन्होंने अन्न की याचना की। अन्न लेकर द्विजाति पत्नियों ने दामोदर के दर्शन किये सभी ने मिलकर माल उड़ाये, ब्राह्मणियों ने अपना प्रेम प्रदर्शित किया। ब्राह्मणों ने अपनी नीरसता पर पश्चात्ताप प्रकट किया। द्विज पत्नियों की कथा समाप्त होने पर गोवर्धन धारण लीला का आरम्भ होता है।

भगवान् देखते हैं, गोपों में बड़ी व्यग्रता है, वे यज्ञ के लिये बड़ी तैयारी कर रहे हैं, सहज स्वभाव से श्यामसुन्दर ने इसका कारण पूछा। इस पर नंद बाबा ने कहा —

तब बोले ब्रजराज–इन्द्र की पूजा भैया।
जो बरसावें नीर होहि तृन खावें गैया॥
जल ही जीवन कह्यो इन्द्र हैं जीवन दाता।
त्रिभुवन पति सरवेश स्वरग पति विष्णु विधाता॥
नन्द वचन सुठि सरल सुनि, हँसि बोले ब्रजचन्द्र तब।
जड़ चेतन चर अचर जग, पिता कर्मवश भ्रमहिं सब॥

इस प्रकार भगवान् ने इन्द्र के मान को मर्दन करने के निमित्त कर्मवाद का उपदेश दिया और इन्द्र की पूजा के स्थान पर गिरि. गोवर्धन की पूजा का प्रस्ताव किया। गोपों ने श्रीकृष्ण भगवान् के प्रस्ताव को स्वीकार किया सब ने पूछा गोवर्धन पूजा में क्या होना चाहिये। इस प्रकार भगवान् बोले—

पूरीं छुन छुन छनें कचौरी खस्ता सुन्दर।
रबड़ी लच्छेदार खीर केसरिया सुखकर॥
हलुआ मोहन थार जलेबी पेरा मठरी।
टिकिया पूआ बड़े सोंठ पापर अरु पपरी॥
व्यंजन सब सुन्दर बनें, दाल, भात, रोटी, कढ़ी।
साग रायते विविध विधि, उड़द मूँग आलू बड़ी॥

भगवान् की आज्ञा से ये सब व्यंजन बने, गिरिराज गोवर्धन की पूजा हुई, फिर इन्द्र ने व्रजवासियों पर कोप किया, सात दिनों तक मूसलधार जल बरसाया, बनवारी ने गोवर्धन को अपनी उँगली पर उठा लिया, इन्द्र का अभिमान चूर हुआ व्रजवासियों की रक्षा हुई, श्री कृष्ण के अलौकिक पराक्रम को देखकर सभी गोप उनके जन्म के सम्बन्ध में नन्दजी से शंका करने लगे। नंद जी ने गर्ग जी के बचनों को दुहराकर सबकी शंका का समाधान कर दिया। तब इन्द्र ने आकर अपने अपराध के लिये नन्द नंदन से क्षमा याचना की, सुरभि ने आकर भगवान् 'गोविन्द' की उपाधि प्रदान की। इस प्रकार ग्यारह अध्यायों में यह गोवर्धन लीला का प्रकरण समाप्त होता है।

फिर एक अध्याय में वह कथा है, जिसमें वरुण के चर रात्रि स्नान करते हुए नन्दजी को पकड़ कर वरुण लोक में ले गये। इस समाचार को सुनकर भगवान् वरुणलोक में गये, वरुण की पूजा को स्वीकार करके उसके ऊपर अनुग्रह की और अपने पिता को सकुशल वरुणलोक से लौटा लाये। तदनन्तर गोपों की

प्रार्थना पर भगवान् ने उन्हें वैकुण्ठ के दर्शन कराये। यहाँ आकर "भागवती कथा" का इकतालीसवाँ खंड समाप्त होता है, अब आता है बयालीसवाँ खंड।

बयालीसवाँ खण्ड "भागवती कथा" का प्राण है, इसमें भगवान् के सरस रास विलास की कमनीय कथा है। सब प्रथम गोपियों के मन में अनुराग का उफान उठा। उधर श्यामसुन्दर का भी चित्त भी रास करने के लिये ललचाया। सुन्दर सुखमय शोभायुक्त शरद् का समय भी आ गया। सभी सामग्री जुट गयी। उस समय छवि का वर्णन कवि के ही शब्दों में सुन लीजिये—

अति निरमल नभ भयो नीलिमा गहरी छाई।
शारदीय शशि विहँसि चन्द्रिका शुभ छिटकाई॥
प्राची दिशि की ललित लालिमा लागे ऐसे।
पति निदेश तैं आइ रँग्यो प्यारी मुख जैसे॥
प्रिया रक्त पट तैं निकसि, पूर्णचन्द्र विकसित भये।
सूर्य ताप संताप दुख, निरखत शशि सब भगि गये॥

श्यामसुन्दर ने ब्रजाङ्गनाओं को।बाँसुरी बजाकर आह्वान किया। शरद की पूर्णिमा को अपना अनन्य प्रेमी वृन्दावन की एकान्त रासस्थली में आह्वान करे तो उनकी अनन्य प्रियतमा भला घर में कैसे रह सकती हैं, उन्होंने अभिसार का उपक्रम किया, कवि ने बड़ी ललित भाषा में गोपियों के गमनौत्सुक्य का सजीव वर्णन किया है। जो सम्बन्धियों के कारण न जा सकीं, उनके हृदय में तीव्रताप की ज्वाला जलने लगीं, जिससे उनका बाह्य शरीर निर्जीव हो गया। राजा परीक्षित् की शंका का समाधान करते हुए भी शुक ने सिद्धान्त स्थिर किया कि कृष्ण में काम भाव भी कल्याणप्रद है। श्री कृष्ण ने गोपिकाओं को देखकर उन्हें लौटाना चाहा, अर्थात् प्रेमाधिक्य का प्रस्ताव किया। विहारी की

विषभरी बातें सुनकर व्रजाङ्गनायें विवश बन गयीं। उन कामाभितप्ता व्रजवल्लभियों ने आत्मरति आत्मरमण करने की अपनी आन्तरिक आकांक्षा व्यक्त की सरस श्यामसुन्दर ने सहर्ष स्वीकृति दे दी। तदनन्तर आप्तकाम आत्माराम ने रास रसेच्छुका रमणियों के साथ रमण किया, पुनः रसकी अभिवृद्धि के हेतु वे रसिकराज अन्तर्हित हो गये। तब वे विरहोन्मादिनी व्रजाङ्गनायें लतापतादिकों से प्रभु का पता पूछती हुई प्रेम में पगली बनीं भ्रमरी के सदृश इधर से उधर भ्रमण करने लगीं। इस प्रकार समस्त सखियों की दशा का वर्णन करके, पुनः श्रीराधाजी के सम्बन्ध में कहा गया है, उन निरस्त साम्यातिशया श्री राधाजी को गोपिकायें अपने बीच में न देखकर तर्कना करने लगीं कि प्यारी को सँग लेकर प्रियतम कहाँ अन्तर्हित हो गये। अब प्रेम में पगली बनीं व्रज बालायें भावावेष में आकर श्रीकृष्ण लीलानुकरण करने लगीं। हृदय में सात्विक ईर्ष्या का भी उदय हो आया उधर आनन्द कंद श्रीकृष्णचन्द्र ने कामियों का दैन्य तथा दाराओं की दुरात्मता का दिग्दर्शन कराया यहाँ तक "भागवती कथा" का बयालीसवाँ खण्ड हुआ अब आता है, तैंतालीसवाँ खंड।

तैंतालीसवें खण्ड में रासलीला को ही चालू रखते हुए सर्व प्रथम श्री जी के मान का ही वर्णन है, फिर विरह विह्वला व्रजाङ्गनाओं की विरह वेदना की झाँकी करायी गयी है। वे श्रीकृष्ण विरह में तन्मय होकर रो रही हैं पछता रही हैं गीत गा रही हैं। उसी करुण क्रन्दन का नाम है गोपीगीत। कोई कृष्ण कटाक्ष कटुता की कड़ी आलोचना करती है तो कोई दीनता के साथ पुकारती है हे रक्षक! रक्षा करो। कोई विनया विनत होकर पुकारती है—"हे सखे माधो! हमारी विनय सुनो। कोई कहती है—'कृष्ण करुं कुइरों को कृतार्थ कर दो। यह दीनता से रोकर पुकारती है।

प्रिया पिपासित फिरहिं मधुर कछु पेय पियाओ।
अधरामृत मुख भरा निठुर ! कछु पुण्य कमाओ॥
प्याओ प्यारे परम स्वादयुत मीठो मीठो।
दुखहर अतिशय सुखद सौति वंशी को जूठो॥
कान कान्ह की कथा सुनि, होहिं कृतारथ रस लहहिं।
बड़ भागी ते जगत नर, कथा तुम्हारी जे कहहिं॥

इस प्रकार गोपिकाओं ने विविध भाँति से विनती की, बहुत देर तक विलाप किया। वे भगवान् के वियोग में अत्यन्त ही व्याकुल हो गयीं। उनकी दयनीय दशा दामोदर देख न सके और वे व्रजाङ्गनाओं के बीच में प्रकटित हो गये। गोपिकायें श्याम संस्पर्श जन्य सुख से कृतार्थ हो गयीं। उन्होंने प्रेम के कोप से कुपित होकर कृपालु से कुछ प्रश्न पूछे। प्रभु ने उनके यथोचित उत्तर दिये। फिर होने लगा रास। रास ही तो जीव का परम लक्ष्य है। यही तो भागवत का प्राण है। एक एक गोपी के बीच में एक एक श्याम उपस्थित हो गये। वह रास कैसा अनुपम था। कवि की लौह लेखनी से लिखे इस ललित प्रसङ्ग को उसी के शब्दों में सुनिये—

व्रज युवतिनि के कण्ठ डारि कर नृत्यत नटवर।
रुनुझुनु नूपुर बजत झनक चुरियनि की मनहर॥
हिलत छीन कटि केश लोल लोचन अति चञ्चल।
पीताम्बर सँग मिलत हिलत युवतिनि के अञ्चल।
पग पटकत कुण्डल हिलत, मुख मटकत लचकत कमर।
हिलत हार मुख मुख मिलत, करत गान इतउत भ्रमर॥

इस प्रकार रास महारास हुआ यह रास क्या था विम्ब प्रतिविम्ब की जलस्थल की अलौकिक क्रीड़ा थी जलकेलि करके केशव कामिनियों के सहित कमनीय काननों मे कोकिलाओं के कलरव को सुनते हुए भ्रमण करने लगे। यह रास विलास एक ही दिन

नहीं हुआ ! अनादि काल से निरन्तर होता है और अनन्त काल तक एक रस होता रहेगा।

राम की रसमयी लीला को सुनकर परम भागवत महाराज परीक्षित् ने चार शंकायें की, श्री शुक ने चार शंकाओं के ये चार उत्तर दिये। राजन् ! भगवान् को धर्मा धर्म स्पर्श नहीं करते, भगवान् का कोई पर नहीं, भगवान् की समस्त लीलायें श्रेयस्कर ही हैं रास दिव्य देह से ही होता है। इतना प्रसंग कहते कहते "भागवती कथा" का तैंतालीसवाँ खण्ड समाप्त हो जाता है, अब आता है चौवालीसवाँ खण्ड।

चौवालीसवें खण्ड में रासलीला के ही प्रसंग को चालू रखते हुए उसका उपसंहार किया है। अन्त में फलश्रुति कहकर कह दिया है—

निज निज घर पुनि प्रात होत आई ब्रजनारी।
यों नित क्रीडा करें कृष्ण प्यारी सुखकारी॥
जो नर श्रद्धा सहित रासलीला कूँ गावें।
पढ़ें सुनें सुख लहें अन्त में प्रभु पद पावें॥
वार वार जे प्रेम तैं, गद्य पद्य महँ गायँगे।
तिनिके हियके रोग सब, काम क्रोध नसि जायँगे॥

इस प्रकार रासलीला प्रसंग की समाप्ति की गयी है। फिर अम्बिका वन की यात्रा, सुदर्शन उद्धार की कथा, शङ्ख चूड़ उद्धार की कथा, गोपियों के काल क्षेप का वर्णन तथा अरिष्टासुर के उद्धार आदि की कथायें हैं। ये सब तो वृन्दावन की कथायें हुईं। अब आइये मथुरा की ओर।

कंस को पता चल जाता है, कि श्रीकृष्ण बलराम नन्द के पुत्र न होकर वसुदेव के पुत्र हैं ये मेरे शत्रु हैं उसने मंत्रियों के साथ गुप्त मंत्रणा की मिथ्या धनुर्याग का आडम्बर रचा और श्रीकृष्ण के चाचा अपने दानपति अक्रूर को बुलाया। अक्रूर ने बहुत सम-

भाया कि होनी होकर ही रहती है, किन्तु उस खल ने अक्रूरजी को डाट दिया। राम कृष्ण को मथुरा लाने का आग्रह किया, कंस की आज्ञा से अक्रूरजी व्रज की ओर चल दिये। इधर भगवान ने केशी और व्योमासुर का उद्धार कर दिया। नारदजी सब आगे का कार्य क्रम बता गये। अक्रूरजी रथपर चढ़कर नन्दगाँव की ओर नाना मनोरथ करते हुए जा रहे थे कि उन्हें पृथिवी पर उमड़े हुए भगवान् के चरणचिन्हों के दर्शन हुए। वे विह्वल हो गये, जैसे तैसे व्रज में आये। भगवान् राम और कृष्ण के दर्शन करके उन्होंने अपने जीवन को सफल माना। कंस का सब सन्देश सुनाया। सब सुनकर गोपों सहित भगवान् मथुरा चलने को उद्यत हो गये।

इधर भगवान् के भावी वियोग का स्मरण कर करके गोपिकायें दुखित होने लगीं। वे विरह से विह्वल बनी व्रजाङ्गनायें वनवारी के व्रज त्याग का स्मरण करके व्याकुल होने लगीं। सबको विरह में व्याकुल छोड़कर श्री रामश्याम मथुरा के लिये चल दिये। गोपिकायें रथ के पीछे रोती रोती भागीं अन्त में विह्वल होकर गिर गयीं।

अक्रूर घाट पर सन्ध्या वन्दन के लिये अक्रूरजी ने रथ खड़ा किया, उन्होंने ज्यों ही यमुनाजी में घुसकर गोता मारा कि भगवान् के चतुर्भुज रूप के दर्शन हुए। व्रज के कुछ रसिक भक्तों की भावना है, कि व्रजमंडल की परिधि के भीतर श्री कृष्ण सर्वदा द्विभुज रहते हैं, वे कभी चतुर्भुज नहीं होते। जहाँ चतुर्भुज हुए कि व्रज की रसमयी उपासना नष्ट हो जाती है, फिर वह ऐश्वर्यमयी उपासना हो जाती है। व्रज का कृष्ण कोई देवता नहीं। वह तो हम जैसा ही हमारा लाला है, सखा है, प्यारा दुलारा है, हमारी ही तरह उसे सुख दुख होता है भूख प्यास लगती है, चार हाथ हो जायँ तो वह तो भिन्न प्रकृति हो जाय। उसकी पीठ पर

चढ़कर चढ़ो कैसे ले सकते हैं। इसीलिये व्रज की सीमा परिधि अक्रूर घाट तक ही मानी जाती है। अक्रूर यहाँ तक श्रीकृष्ण बलराम को ले आये, व्रज को सीमा समाप्त हुई, "भागवती कथा" का चालीसवाँ खण्ड समाप्त हुआ और यह अध्याय भी समाप्त हुआ। अब अगले अध्याय में पञ्चमाह की बची सूची कहेंगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मैंने दो अध्यायों में पञ्चमाह की सूची तो कह दी। अब तीसरे अध्याय मे बची हुई विषय सूचीको कहता हूँ आप ध्यान पूर्वक श्रवण करें।

छप्पय

कीयो रास विलास भये अन्तरहित गिरिधर।
बिलपीं बनिता बहुत भये पुनि परगट नटवर ॥
महारास पुनि भयो सरसता अँग अँग छायी।
यों पुनि पूरन भई रास की पञ्चाध्यायी ॥
शङ्ख चूड़ अजगर असुर, केशी व्योमासुर मरन।
फेरि कह्यो अति भावमय, खफलक-सुत व्रज आगमन ॥

—:०:—

पञ्चमाह की विषय-सूची (तृतीय)

(१३७६)

ब्रजस्त्रीणां विलापश्च मथुरालोकनं ततः।
गजमुष्टिकचाणूर कंसादीनां च यो वधः ॥*

(श्री भा० १२ स्कं० १२० अ० ३४ श्लो०)

छप्पय

ब्रज तजि पुनि बल संग श्याम मथुराकूँ धाये।
गोपी व्याकुल भईं अश्रु अति सबनि बहाये॥
श्वफलक सुतपै करी कृपा मरि रजक तर्यो है।
कुब्जा कूँ करि सुघर धनुष को भंग कर्यो है॥
आये गज अरु मल्ल जे, मरे कंस मामा मर्यो।
नन्द गये ब्रजकूँ बिलखि, जननि जनक को दुख हर्यो॥

पञ्चमाह की विषय सूची बड़ी हो गई है, कारण कि पंचमाह पेट है और सब अन्य अंग उपांग है। पेट के आश्रय से ही अन्य अंग उपांग जीवित रहते हैं। पेट में कुछ न पड़े तो अन्य

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो! पंचमाह के अन्त में ब्रज बा[लाओं] का विलपना, भगवान् का मथु[रा] में आकर उसके हाट बाटों को देखना, कुवलियापीड़ गज, मुष्टिकचाणूर आदि मल्लों को मारना तथा कंस का वध और गुरु सान्दीपनि के मृत पुत्र को पुनः ले आना ये सब कथायें वर्णन की गई हैं।"

अंग निर्जीव हो जायँगे। पेट में पड़ने से सभी अंग प्रफुल्लित हो जायँगे। भागवत का मुख्य प्रतिपाद्य विषय श्री कृष्ण चरित्र ही है। उनका जितना भी विस्तार किया जाय उतना ही अच्छा है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! भागवती कथा के चौवालीसवें खण्ड की विषय सूची समाप्त होने पर अब मैं पैतालीसवें खण्ड की विषय सूची वर्णन करता हूँ। पैंतालीसवें खण्ड में सर्व प्रथम राम श्याम का मथुरा में भ्रमण का वृत्तान्त है। कैसे प्रभु ने पुरी में प्रवेश किया, कैसे धुले धुलाये कपड़े लिये धोबियों का चौधरी आगे आगया। हँसी में श्याम ने उससे कपड़े मांगे, वह अकड़ गया श्याम ने कसकर जो एक लप्पड़ लगाया, कि बच्चू जी टें कर गये। कपड़े लेकर दरजी से उन्हें सुधरवाया। सुदामा माली पर कृपा की उसके दिये हुए हारों को पहिना। फिर आ गयी कुब्जा काकी। उसके ऊपर कृपा की। उसके चन्दनको स्वीकार करके उसे टेढ़ी से सूधी बना दिया। फिर कंस की मखशाला में गये। यज्ञ के निमित्त जो धनुष रखा था, उसे तोड़ डाला। फिर डेरा पर लौट कर दूसरे दिन कंस की मल्लशाला की ओर चले। द्वार पर कुवलियापीड़ हाथी को मारा, रंग भूमि में पधार कर सभी को भावनानुसार दर्शन दिये। चाणुर ने दोनों भाइयों को युद्ध के लिये ललकारा। राम की मुष्टिक से और श्रीकृष्ण की चाणूर से भिड़न्त हो गयी। छोटे बालकों से मल्लों को लड़ते देख कर कामिनियों के मन में करुणा का स्रोत बहने लगा। चाणूर और मुष्टिक मर गये। अन्य सभी मल्ल भाग गये। कंस मामा भी न बच सके; भानजे के हाथों उनका उद्धार हो गया। अब कारागार में आकर भगवान् ने माता पिता को अपने हाथों मुक्त किया। उग्रसेन को राजा बनाया। नन्दजी को रोते रोते विदा किया। बाबा बिलखते हुए ब्रज बगद आये।

अब दोनों भाइयों का मथुरा में आकर यज्ञोपवीत संस्कार

हुआ। अवन्तिका पढ़ने गये। गुरुकुल में रहकर गुरुसुश्रूषा करने लगे। विद्याध्ययन समाप्त करके गुरुदक्षिणा की बारी आई। गुरु-आनी ने प्रस्ताव किया हमारे मृतपुत्र को लौटाकर ले आओ। राम श्याम यमपुरी जाकर मृत गुरुपुत्रको लौटा लाये गुरु दक्षिणा देकर पुनः मथुरा में आगये। यहाँ तक की कथा "भागवती कथा" के ४५ वें खण्ड तक में है। अब आता है छियालोसवाँ खण्ड।

छियालीसवें खण्ड में श्याम सुन्दर अवन्ती से पढ़कर—पंडित बनकर—मथुरा में आ जाते हैं और राजकाज में लग जाते हैं पैंतालीसवें खण्ड का अन्तिम छप्पय यह है—

आये मथुरा पुरी सुनत सबई उठि धाये।
राम श्याम के दरश पाइ सब अति हरषाये॥
द्वै पूरन शशि सरिस सबनिकूँ सुख सरसावें।
मथुरा में नित बसें प्रेमको सोत बहावें॥
यहाँ छोडि कछु कालकूँ, श्री मथुरा जी की कथा।
हृदय थामि सोचो तनिक, विरह माँहि व्रज की व्यथा॥

मूल श्री मद् भागवत में तो वृन्दावन की दशा का आभास बिना दिये ही मथुरा जी में श्रीश्याम सुन्दर उद्धवजी को बुलाकर व्रज जाने की आज्ञा देते हैं। किन्तु भागवती कथा में पहिले व्रजकी विरह दशा का वर्णन किया गया है। पहिले माता की विरह दशा का वर्णन है। ४६ वाँ खण्ड आरम्भ ही यहाँ से होता है—

हलधर गिरिधर बिना लगे व्रज सूनो सूनो।
लखि मैया की व्यथा बढ़ै सबको दुख दूनो॥
खोई खोई रहै यशोदा कछु नहिँ सूझै।
देखे आवत पथिक बात बरसनिकी बूझै॥
बार बार मैया कहै, बुढ़िया पै किरपा करो।
अरे, दिखाओ सुतनि मुख, होवे मेरो विरह हरो॥

माता के विरह को कहकर फिर ग्वाल बालों की विरह स्मृतियों का वर्णन है तदनन्तर गोपिकाओं के हृदय विदारक विरह की करुण कहानी है। इस प्रकार ब्रज वृंदावन के विरह को कहकर अब मथुरा की ओर आते हैं वहाँ श्याम सुन्दर गोप गोपियों के वियोग में आँसू बहाते रहते हैं। उद्धवजी इसका कारण पूछते हैं तो विलख विलख कर श्याम सुन्दर ब्रज वासियों के निष्कपट निश्छल प्रेम का वर्णन करते हैं और उद्धवजी को ब्रज जाने की आज्ञा देते हैं।

श्याम सुन्दर के सखा सुहृद् तथा सेवक उद्धवजी स्वामी के सन्देश को शिरोधार्य करके ब्रज के लिये जाते हैं। वन उपवनों की शोभा को निहारते हुए वे नन्द गाँव में पहुँचते हैं, नन्द जी तथा यशोदा जी की विरह दशा देखकर वे विह्वल हो जाते हैं उन्हें श्री कृष्णतत्व समझाते हैं, सान्त्वना देते हैं किन्तु वे तो वात्सल्य रस के उपासक हैं। उद्धवजी का वे विधिवत् आतिथ्य करते हैं, बातें करते करते सम्पूर्ण रात्रि बीत जाती है।

प्रातः काल नन्द पौरि पर स्वर्ण मय रथ खड़ा देखकर ब्रजाङ्गनायें तर्कना करती हैं, कि यह किसका रथ आगया। इतने में ही उद्धवजी यमुना स्नान करके आजाते हैं। इन नागरियों से उद्धव की भेंट होता है, एकान्त में वे श्याम का सन्देश सुनाते हैं उसी समय संयोग वश वहाँ भ्रमर आ जाता है। भ्रमर गीत बड़ा ही रसमय है। अनेकों कवियों ने भ्रमर गीत को अनेकों ढंग से लिखा है। 'भागवत चरित" के भ्रमर गीत की भी बानगी चखते चलिये। प्रेम कोप में कुपित ब्रजांगनायें श्याम सुन्दर को खरी खोटी सुना रहीं थीं। उनके अलौकिक अनन्य प्रेम को देखकर उद्धवजी मन ही मन सिहा रहे थे, उसी समय भ्रमर को देखकर गोपिकायें कहती हैं—

जिनि कुंजनि सुख दयो न ते अब तनिक सुहातीं।
अधरामृत कूँ प्याइ बनाईं हम मदमातीं॥
गये त्यागि मधुपुरी न अब व्रजवास सुहावै।
तू हू करि मधुपान त्यागि सुमननि कूं जावै॥
स्वामी सेवक एकसे, चोर चोर भाई सगे।
निज घर जा हम अति व्यथित, हरि कटाक्ष सर हिय लगे॥

जब भ्रमर का अत्यधिक तिरस्कार कर दिया, तो फिर ध्यान आया, अरे, यह तो प्यारे का दूत है। प्यारे का सन्देश लेकर आया है, इसका तो सत्कार करना चाहिये। इस भाव के आते ही वे सब उसे चुचकार कर प्यार के साथ कहने लगतीं हैं—

अच्छा मधुकर ! फेरि पठायो प्रियतम तुमकूँ।
प्यारे को सँदेश सुनाओ अब तुम हम कूँ॥
कैसे हरि तैं मिलें भ्रमर वर युक्ति बताओ।
उन उर पद्मा बसति सौतितें पिंड छुड़ाओ॥
कुशल कहो कपारि की, करत कबहुँ व्रजकी सुरति।
कब दासिनि पै दया करि, दरशन दंगे प्रनत पति॥

उद्धवजी ने जब श्याम सुन्दर में गोपाङ्गनाओं का ऐसा अनुपम अलौकिक अनुराग देखा तो वे बड़े ही प्रसन्न हुए उन्होंने उन महा भाग्यवती वन चरियों की भूरि भूरि प्रशन्सा की। कुछ दिन उद्धव व्रज में रहकर श्याम विरह का आनन्द लूटते रहे अन्त में सब से विदा होकर उद्धव जी चलने लगे। एक बार फिर से वही दृश्य उपस्थित हो गया जब यहीं से राम श्याम को लेकर अक्रूर जी गये थे। आज उद्धवजी श्याम के लिये सब का सन्देश उपहार लेकर जा रहे हैं। सब ने कुछ न कुछ उपहार राम श्याम के लिये दिया। उन सब व्रजवासियों की दशा वर्णनातीत थी कवि के ही शब्दों में सुनिये—

राम श्यामकूँ सबनि सँदेशो निज निज दीन्हों।
ऊधो रथपै चढ़े सबनि को आदर कीन्हों॥
ब्रजवासी मिलि कहें—हमें अब जिहही भावै।
कृष्ण चरन मन रमे नाम रसना नित गावै॥
तन हरि सेवा महँ निरत, सत सगति महँ होहि मति।
जहँ जहँ जनमें करम वश, होहि तहाँ हरि चरन रति॥

सब का सन्देश लेकर उद्धवजी श्याम सुन्दर के समीप मथुरा में आये। सब कुछ सुनकर श्याम सुन्दर का भी हृदय भर आया। और इस प्रकार भागवती कथा के छियालीसवें खण्ड के बीस अध्यायों में भ्रमर गीत का प्रसंग है।

फिर श्याम सुन्दर ने कुब्जा को इच्छित वर दिया दोनों भाई अक्रूर चाचा के घर पधारे। उन्हें कुन्ती बूआ की सुध लाने के लिये हस्तिनापुर भेजा। अक्रूरजी अपनी बहिन कुन्ती से मिले, धृतराष्ट्र को उन्हों ने डाँटा डपटा उपदेश दिया। यहाँ आकर छियालीसवाँ खण्ड समाप्त हो जाता है। साथ पंचमाह की कथा भी समाप्त हो जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने तीन अध्यायों में पञ्चमाह की विषय सूची बतायी। अब आप षष्ठाह की विषय सूची श्रवण कीजिये।"

छप्पय

फिरि गुरुकुल को बास मृतक गुरुसुत ज्यों लाये।
ब्रज उद्धव के हाथ आइ सन्देश पठाये॥
उद्धव देखे दुखी गोप गोपी गौ बछरा।
अस्त व्यस्त सब वस्तु परे टूटे घर छकरा॥
भ्रमर गीत, कुब्जा कृपा, कुन्ती ढिग श्वफलक तनय।
पञ्चमाह पूरन भयो, अब षष्ठाह सुनहु सदय॥

—:o:—

राज मुचुकुन्द को वरदान देते हैं और कालयवन के धन को लूटपाट कर गठरी बाँधकर ज्यों ही भागना चाहते हैं त्यों ही जगमन्ध फिर आ जाता है। अब तो लालाजी घिर जाते हैं लूट पाट के धन का मोह छोड़कर दोनों मुट्ठी बाँधकर भाग खड़े होते हैं. प्रवर्षण पर्वत पर चढ़ जाते हैं और दूसरी ओर से छिपाकर कूदकर—उसको आँखों में धूलि झोंककर, द्वारकापुरी में आ जाते हैं।

द्वारका में आकर विवाह का डौल डाल लगाते हैं। नारदजी से रुक्मिणी की प्रशंसा सुनते हैं, उस पर लट्टू हो जाते हैं। इधर रुक्मिणीजी भी मन ही मन श्याम सुन्दर का वरण कर लेती हैं, किन्तु उनका भाई रुक्मी शिशुपाल के साथ सगाई कर देता है। विवाह के कुछ दिन पूर्व रुक्मिणीजी अपने बूढ़े पुरोहित के हाथ श्याम सुन्दर को संदेश पठाती हैं। वह हरण के लिये श्याम सुन्दर चुपके से रथ में बैठकर कुंडिनपुर आ जाते हैं। देवी रुक्मिणी की निराशा में आशा होती है। वे अच्युत का आगमन सुनकर अत्यधिक आनन्दित होती है, गौरी पूजन के निमित्त जाती हैं श्रीहरि उसी समय सबके सिरों पर लात जमाकर कन्या को हरण करके भाग जाते हैं। लोग लड़ जाते हैं, पराजित होकर लौट आते हैं। रुक्मी कुछ पीछा करता है, वह विकृत बनकर—पराजित होकर लौट आता है। द्वारका में आकर श्याम सुन्दर रुक्मिणीजी के साथ विवाह कर लेते हैं। इस प्रकार यह प्रथम विवाह का वर्णन हुआ। रुक्मिणीजी के प्रथम पुत्र प्रद्युम्नजी होते हैं, इसे सूतिका गृह से ही असुर उठा ले जाता है।

भगवान् के १६१०८ विवाह हुए। सोलह सहस्र एक सौ कन्यायेंतो इकट्ठोही मिल गयीं। आठ विवाहोंमें खटपट हुई। पहिले विवाहमें तो इतनी खटपट नहीं हुई। चुपकेसे गये कन्या को भगा लाये, किन्तु दूसरे तीसरे विवाह में बड़ी कलह हुई। अत्यन्त

कटुता आ गयी। यह कामिनी कांचन का प्रसंग होता ही बड़ा कटु है। इसमें दोनों को ही लोभ था। यदुवंशियों में एक सत्राजित नाम का यादव था उसे सूर्य से स्यमन्तक मणि मिल गयी सहज स्वभाव से श्याम सुन्दर उससे मणि माँग बैठे। लोभवश उसने नहीं दी। उसके भाई को सिंह ने मार दिया मणि जाम्ब-

वान् ऋक्षराज पर पहुँच गयी। माधव को मिथ्या कलंक लगा। क्या करते गये मणि को ढूँढ़ने मणि तो मिल ही गयी, एक जाम्बवती नामक बहू लाभ में ही मिली। सत्राजित् ने भी अपनी कन्या सत्यभामा का विवाह भगवान् से कर दिया। मणि सत्राजित् पर ही रही। शतधन्वा ने मणि के पीछे सत्राजित् को मार डाला, ससुर के हत्यारे को श्याम सुन्दर ने मार दिया। लेखा जोखा बराबर हो गया। शतधन्वा के साथ अक्रूर कृतवर्मा भय से द्वारका छोड़कर भाग गये। बलदेवजी रूठ गये। बड़े

बड़े बखेड़े के पश्चात् यह प्रसंग समाप्त हुआ। इसके अनन्तर चौथे, पाँचवें और छठे विवाह की कथायें हैं।

यहाँ आकर 'भागवती कथा' का सैंतालीसवाँ खण्ड समाप्त होता है अब आता है अड़तालीसवाँ खण्ड।

अड़तालीसवें खण्ड में भगवान् के विवाहों की ही कथा चालू रखते हुए उनके सप्तम तथा अष्टम विवाहा का वृत्तान्त है। अब सोलह सहस्र एक सौ विवाहों का वृत्तान्त आरम्भ होता है। भौमासुर ने किस प्रकार अन्याय करके राजाओं की सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं को बन्दिनी बना लिया। इन्द्र की प्रार्थना पर कैसे भगवान् ने भौमासुर को मारकर उन कन्याओं का उद्धार किया। फिर आप सत्यभामा को साथ लेकर भौमासुर द्वारा परिहृत दिति के कुंडलों को देने स्वर्ग गये। वहाँ पारिजात के पुष्प के कारण भगवान का इन्द्र के साथ कैसे युद्ध हुआ। द्वारका में उन सोलह सहस्र एक सौ कन्याओं से कैसे विवाह किया ये सब कथायें विस्तार के साथ वर्णन की गयी हैं। इस प्रकार सोलह सहस्र एक सौ आठ विवाहों का वृत्तान्त तो हो गया अब इन सबकी सन्तानों की कथा आरम्भ होती है। सर्व प्रथम रुक्मिणी नन्दन प्रद्युम्न जी की कथा है, सूतिका गृह से प्रद्युम्न जी को शम्बरासुर हर ले गया था, वहाँ कामदेव की पूर्व पत्नी रति रहती थी, ये भी कामावतार थे। उसी से साठ गाँठ भिड़ाकर शम्बरासुर को मारकर वहू सहित द्वारका में आ गये। इतने इतने वर्षों के पश्चात् सहसा आने से पुरी में परम आनन्द हुआ। ये रुक्मिणी जी के सबसे बड़े पुत्र थे। इसी प्रकार आठों पटरानियों के दश पुत्र एक एक पुत्री हुई फिर रुक्मी की लड़की से प्रद्युम्नजी के विवाहका वर्णन है, उसकी नातिनी से प्रद्युम्न पुत्र अनिरुद्ध के विवाह का वर्णन है। उसी विवाह में बलदेवजी द्वारा

रुक्मी मामा मारे गये। इस प्रकार भगवान् के विवाह बच्चों की कथा समाप्त हुई। अब चली विनोद की कथा।

भगवान् को एक दिन रुक्मिणी जी से विनोद करने की सूझी। आपने कहा—रुक्मिणी जी राजकुमारी होकर आपने ऐसी भूल क्यों की। शिशुपाल को छोड़कर हमसे विवाह क्यों किया। अस्तु अब भी कुछ हानि नहीं, किसी योग्य राजकुमार के साथ चली जाओ।" पति के इतने कठोर विनोद को सुनकर रुक्मिणी जी व्याकुल हो गयीं। कवि के शब्दों में सुनिये :—

सुनि पति-वचन कठोर रुक्मिनी अति घबरायीं।
मूर्छित ह्वै महि गिरीं तुरत उठि श्याम उठायीं॥
प्रेमालिङ्गन करयो पौंछि मुख केश सम्हारे।
पलँग पास बैठाइ मधुर स्वर वचन उचारे॥
अरे, प्रिये! रूठो वृथा, हँसी हँसी में हौं कही।
नरक रूप घर में सरस, है प्रसङ्ग सुखकर जिहा॥

प्रियतम के भाव को समझकर प्रिया हँस गयी, परस्पर में उत्तर प्रत्युत्तर होकर खेल समाप्त हुआ। इसी भाँति भगवान् का सत्यभामा से भी विनोद हुआ। तदनन्तर ऊषा अनिरुद्ध की कथा है।

स्वप्न में अनिरुद्ध को देखकर ऊषा ने अपनी योगिनी सखी चित्रलेखा द्वारा उन्हें अपने महलों में सोते सोते उठवा मँगाया। यह बात ऊषा के पिता बाणासुर को मालूम हो गयी, उसने अनिरुद्ध को पकड़कर कारावास में बन्द कर दिया। समाचार सुनकर सैन्य सजाकर यादव गण बाणासुर की राजधानी शोणित-पुर चढ़ आये। बाणासुर की ओर से शिवजी यादवों से लड़ने आये। भगवान् का शिवजी से युद्ध हुआ। पीछे मेल जोल हो गया। ऊषा का अनिरुद्ध से विवाह हो गया। तदनन्तर नृगो-

द्धार क कथा है उसी प्रसंग में भगवान् ने यादवों को ब्राह्मणधन हरण न करने का उपदेश दिया। इसके पश्चात् बलदेवचरित है।

व्रजवासियों से भेंट करने द्वारका से बलरामजी व्रज में गये। वहाँ जाकर फिर वे ही रसमय क्रीड़ायें कीं। बीच में मिथ्या वासुदेव तथा काशिराज की कृत्या के कुपरिणाम की कथा कह कर फिर बलदेवजी ने जैसे द्विविद वानर का वध किया वह कथा है। यहाँ तक 'भागवती कथा' का अड़तालीसवाँ खण्ड समाप्त हुआ अब आता है उनचासवाँ खण्ड।

उनचासवें खण्ड में सर्व प्रथम वह कथा है जिसमें जाम्बवती पुत्र साम्ब ने दुर्योधन की पुत्री लक्ष्मणा का अपहरण किया और कौरवों ने उसे पकड़कर बाँध लिया। इस पर संकर्षण बलराम जाते हैं, कौरवों से कुछ कड़ी बातें कह देते हैं। वे कुपित हो जाते हैं इधर ये भी कुपित होकर हस्तिनापुर को उलटने लगते हैं। इतने में ही बात समाप्त हो जाती है साम्ब और लक्ष्मणाका विवाह हो जाता है।

एक दिन नारदजी को शंका होती है अकेले भगवान् सोलह सहस्र एक सौ पटरानियों को कैसे सन्तुष्ट रखते होंगे। वे सब घरों में जाते हैं, भगवान् को सभी घरों में विभिन्न कार्य करते देखकर उनकी उत्सुकता शान्त हो जाती है। इसके पश्चात् भगवान् की पूरी दिनचर्या का वर्णन है। अब राजसूय प्रसंग आरंभ होता है।

जरासन्ध ने सहस्रों राजाओं को बन्दी बना रखा था, उन सबने गुप्तदूत द्वारा अपनी मुक्ति के निमित्त श्याम सुन्दरके समीप संदेश पठाया। उसी समय नारदजी धर्मराज का राजसूय यज्ञ सम्बन्धी निमन्त्रण लेकर आ गये। प्रश्न उठा प्रथम कहाँ जाना

चाहिये। उद्धवजी को पंच माना गया, उन्होंने निर्णय दिया पहिले इन्द्र प्रस्थ चलना चाहिये। उद्धवजी की सम्मति मानकर सेवक सेना तथा समस्त परिवार के सहित भगवान् इन्द्र प्रस्थ पहुँचे। पांडवों ने भगवान् का हार्दिक स्वागत किया। राजसूय यज्ञ का प्रस्ताव हुआ। राजसूय यज्ञ मे जरासन्ध को कंटक समझकर उसे मारने भीम और अर्जुन सहित वेष बदल कर श्याम सुन्दर मगध चल दिये। ब्राह्मण वेष से उससे युद्ध की भिक्षा माँगी। जरासन्ध और भीम का घोर द्वंद युद्ध हुआ। जरासन्ध मारा गया। राजाओं ने भगवान् के दर्शन किये और सभी ने भगवान् की गद्गद् कंठ से इन शब्दों में स्तुति की :—

बन्दी राजाओं की स्तुति

देव देवेश्वर शोभाधाम। करें रक्षा नटवर घनश्याम।
यह संसार अपार अति, करें कृपा निधि पार।
तजि जग के नाते सकल, आय तुमरे द्वार॥
विपति भय भंजन तुमरो नाम॥१॥ करें रक्षा०
धनजनबलसरबसु समुझि,भजहिं तुमहिंसुख रूप।
धनमद में मदमत्त ह्वै, कहें अकरि हम भूप॥
भयो मद चूर श्याम अभिराम॥२॥ करें रक्षा०
वासुदेव हरि कृष्ण विभु, प्रणत पाल जगदीश।
कृपा कृपामय करें अब, हे गोविंद गोपीश॥
परमप्रिय पदुमनि माहिं प्रनाम॥३॥ करें रक्षा०
समुझि तुमहिं सरवस्व सत, करें नाम नित गान।
बलो धनी गुनवान हम, अब न होहि अभिमान।
करें सब तुमरे ही हित काम॥४॥ करें रक्षा०

भगवान् ने स्तुति सुनकर जरासन्ध संघ सहदेव द्वारा उनकी पूजा कराके विदा किया और आप सहदेव को गद्दी पर बिठाकर इन्द्रप्रस्थ आ गये। धर्मराज के हर्ष का ठिकाना नहीं रहा। बड़े

ठाठबाट से राजसूय यज्ञ हुआ। यज्ञ के अन्त में अग्र पूजा का प्रश्न छिड़ा। सहदेव ने अच्युत को ही अग्रपूजा का पात्र बताया। इनका शिशुपाल ने घोर विरोध किया, गोविन्द को गिन गिनकर गालियाँ देने लगा। तब भगवान् ने उसके सिर को धड़ से पृथक् कर दिया। धर्मराज की पूजा स्वीकार की अवभृत स्नान हुआ। यज्ञ समाप्त हुआ पाँडवों का महान् अभ्युदय हुआ, दुर्योधन इससे दुखी हुआ।" साथ ही "भागवती कथा" का उनचासवाँ खण्ड समाप्त हो गया। अब आता है पचासवाँ खण्ड।

पचासवें खण्ड में सर्व प्रथम आता है शाल्वप्रकरण। भगवान के परोक्ष में शाल्व ने द्वारका पर चढ़ाई कर दी। प्रद्युम्न और शाल्व का भयंकर युद्ध हुआ, अन्य यादव भी लड़े। सुनते ही श्याम सुन्दर आ गये शाल्व को मार दिया। उसका पक्ष लेकर दन्तवक्र और विदूरथ आये उनको भी मृत्यु के घाट उतार दिया। फिर बलदेवजी का चरित्र आता है। महाभारत युद्ध से तटस्थ होकर संकर्षणजी तीर्थयात्रा के निमित्त निकल पड़ते हैं नैमिषारण्य में सूत वध करके बल्वल वध करते हैं, पायश्चित स्वरूप यज्ञ करते हैं। तदनन्तर सरस सुखद सुदामा चरित आरंभ होता है।

पत्नी के कहने पर सुदामाजी अपने बाल सखा श्याम सुन्दर से मिलने द्वारका को ओर जाते हैं, वहाँ मित्र मित्र का मनोहर मिलन होता है। दोनों घुल मिलकर बातें करते हैं। श्यामसुन्दर अपने सखा सहपाठी सुदामा जी से हँसकर पूछते हैं :—

भाभी कैसी मिली मिले मन तुमरो वाते।
लड़ति भिड़ति तो नाहिं कान तो करे न ताते॥
कितने बालक भये सबनि के नाम बताओ।
सब घरका वृत्तान्त सुनाओ मति सकुचाओ॥

गुरुकुल के सुखमय दिवस, हाय! स्वप्न सम अब भये।
या दिनकी कछु यादि है, ईंधन लेवें बन गये॥

इस प्रकार दोनों मित्रों में बातें हुईं। श्याम सुन्दर ने सुदामा के तन्दुल छीनकर खाये, अन्त में कष्ट से मित्र को विदा किया। सुदामा ने घर आकर देखा कि सुदामापुरी तो सुवर्ण की बन गयी है। यहाँ तक सुदामा चरित हुआ अब आता है कुरुक्षेत्र में चन्द्रग्रहण पर भगवान् का व्रजवासियों से मिलन प्रसंग। भगवान् यशोदा मैया से मिले। देवकीजी भी रोहिणी जी भी रोती रोती मैया से मिलीं। एकान्त में गोपियों ने गोविंद से भेंट की उस समय करुणा भी द्रवित हो उठी। द्रौपदीजी और भगवान् की पत्नियों में अपने अपने विवाह की सरस बातें हुईं। इतने में बाहर भगवान् के दर्शन को मुनिगण आ गये। वासुदेव जी और मुनियों में शिष्टाचार के अनन्तर प्रश्नोत्तर हुए। मुनियों के कहने से वसुदेवजी ने कुरुक्षेत्र में बड़ा भारी यज्ञ किया। अंत में बड़े कष्ट से गोप गोपी श्याम सुन्दर से विदा होकर व्रज चले गये। श्याम सुन्दर परिवार सहित द्वारका आ गये "भागवती कथा" का पचासवाँ खण्ड समाप्त हो गया। अब आता है इक्यावनवाँ खण्ड।

इक्यावनवाँ खण्ड में वासुदेवजी को आत्मज्ञान हो गया। वे भगवान् में पुत्र भाव न करके भगवत् भाव से उनकी स्तुति करने लगे। देवकी जी ने भी भगवान् समझकर अपने मृत पुत्रों के दर्शन की इच्छा प्रकट की। भगवान् ने पुत्र लाकर माता को दिखा दिये। इसके अनन्तर अर्जुन और सुभद्रा के प्रणय तथा हरण की दो अध्यायों में कथा है। तदनन्तर राजा जनक और श्रुतदेव विप्र इन दोनों भक्तों पर भगवान् ने एक साथ ही कैसे कृपा की इसका रोचक वर्णन है। फिर हरिहर भक्तों के भेद का

रहस्य तथा वृकासुर और उसके चक्करसे भगवान् शंभु के छुटकारे की कथा है।

एक दिन ऋषियों में तीनों देवों में से कौन सर्वश्रेष्ठ है यह प्रश्न छिड़ा। भृगुजी तीनों देवों के समीप परीक्षार्थ गये। अन्त में श्रीविष्णु ही सर्व श्रेष्ठ हैं यही निर्णय हुआ। यहाँ तक तो सुखद कथायें हैं। अब दुखद प्रसंग छिड़ता है। भगवान् का ज्यों ही संकल्प हुआ कि हम स्वधाम पधारें त्यों ही उनकी प्रेयसी महीषियों को स्वतः ही आभास हो गया कि अब प्राणनाथ लीला संवरण करेंगे। उनके मुख से स्वतः ही विरहमय उद्गार निकलने लगे। वे अत्यन्त करुण स्वर में विरह के गीत गाने लगीं। कुररी, चकवी, समुद्र, चन्द्र, मलयानिल, सरिता, कोकिल, पर्वत तथा घन आदि को उपलक्ष्य करके वे अपने भावों को स्वतः उगलने लगीं। ये दश गीत बड़े ही मर्म स्पर्शी हैं। उनमें से एक की बानगी चखिये—कोकिला को लक्ष्य करके रानियाँ गा रहीं हैं :—

कोकिल ! कुहू कुहू का बोलति।
रसमें सनी सुधासम बानी बोलति तरुपै डोलति ॥१॥
ऐसे ही ये श्याम निगोड़े, प्रेम पिटारो खोलत।
नेह तुला में हिय कूँ धरिकैं, राग बाटतैं तोलत ॥२॥
कूजति तू कल कंठ कोकिले, प्रियकी सुरति दिवावति।
काप्रिय करें बहिन तेरो हम तव चरननि सिरनावति ॥३॥
गोविंदके गुन खगगन गावत, उड़ि उड़ि इतई रोवत।
तू तो प्रभु के प्रेम छीर महँ मधुरव मिसिरी घोरति ॥४॥

इसके अनन्तर एक द्विज के मृतक बालक को अर्जुन की प्रतिज्ञा पर परम वैष्णवधाम से लौटा लाने की कथा है। श्रीकृष्ण पत्नियों के लीला विहार तथा प्रलाप की कथा तथा भगवत् चरित का उपसंहार है। यहाँ आकर 'भागवती कथा' का इक्यावनवाँ

खंड समाप्त हो जाता है, साथ ही षष्ठाह की विषय सूची भी समाप्त हो जाती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यह मैंने आपको षष्ठाह की विषय सूची सुना दी, अब आप ध्यान पूर्वक सप्ताहकी विषयसूची श्रवण करें।"

छप्पय

कृष्ण-बाण संग्राम शम्भु-हरि सग लड़ाई।
राजा नृग की कथा कही अति परम सुहाई॥
बलदाऊ ब्रज गमन पौण्ड्र-वध साम्ब-सगाई।
गृहचर्या अति दिव्य श्याम नारदहिँ सिखाई॥
जरासन्ध बध भीम तैं, राजसूय को वृत्त सब।
शाल्व और शिशुपाल बध, कह्यो सुदामा चरित तब॥
कुरुक्षेत्र में भयो मिलन ब्रज वासिनि तैं ज्यों।
ललकि मिले घनश्याम पिता माता बल सँग त्यों॥
कृष्ण महिषी बात सरसता छाई सब पै।
जनक, जननि, द्विज तथा कृपा मैथिल भूपति पै।
हर, भृगु, अरजुन पै कृपा, करी सबनि को दुख हरयो।
गायो महिषी गौन पुनि, षष्ठ अाह पूरन करयो॥

—:o:—

सप्तमाह की विषय सूची (प्रथम)

(१३७८)

विप्रशापापदेशेन संहारः स्वकुलस्य च ।
उद्धवस्य च सम्वादो वासुदेवस्य चाद्भुतः ॥*

(श्रीभा० १२ स्क० १२ अ० ४१ श्लो०)

छप्पय

सप्तमाह में शाप दिवायो निजकुल गर्वित ।
नारद अरु वसुदेव कह्यो संवाद सुशोभित ॥
नव योगेश्वर ज्ञान कह्यो अवधूत सुगीता ।
उद्धवगीता कह्यो सुनत छूटै भव-भीता ॥
हंस ज्ञान पुनि भक्ति अरु, ध्यान सिद्धि सबई कहीं ।
पुनि हरि कछु बरनन करीं, जो विभूति उनिकी रहीं ॥

स्वयं ही हरि जगत् जाल को बनाते हैं, फिर स्वयं ही उसे निगल जाते हैं । स्वयं ही प्रस्ताव करते हैं स्वयं ही उसका उपसंहार कर लेते हैं । स्वयं ही विविध विषय बन जाते हैं और फिर

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! सप्तमाह में ब्राह्मणों के शाप के मिस से अपने कुल का संहार कराना तथा भगवान् वासुदेव तथा उद्धवजी के अद्भुत सम्वाद आदि विषयों का वर्णन है ।"

स्वयं ही उन विषयों की विषय सूची बनाकर उनका नाम निर्देश करते हैं। सब में सर्वत्र सब रूप में उन श्री हरि को ही देखना यही जीव का चरमलक्ष्य यही शास्त्रों का सार है, यही लिखने पढ़ने का फल है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मैंने षष्ठाह की विषय सूची 'भागवती कथा' के इक्यावन खण्ड तक कही। अब सप्तमाह की विषय सूची बावनवें खण्ड से श्रवण कीजिये।

बावनवें खण्ड में सर्व प्रथम ब्राह्मणों ने यदुकुल के साम्बादि कुमारों की अशिष्टता के कारण विनाश का शाप दे डाला। श्री उग्रसेन द्वारा शाप का व्यर्थ प्रतिकार किया गया। साम्ब के पेट से निकले मुसलचूर्ण को घिसवाकर समुद्र में फिकवा दिया गया। इस कथा को यहीं छोड़कर नारदजी और वसुदेवजी का आध्यात्म्य संवाद आरम्भ होता है। वसुदेवजी ने नारदजी से कुछ प्रश्न किये। नारदजी ने वसुदेवजी के प्रश्नों का अभिनन्दन किया और इसी प्रसंग में नवयोगेश्वरों और महा विदेह के सम्वाद को सुनाया महाराज विदेह के पूछने पर सबसे बड़े योगेश्वर कवि ने भक्ति तथा नाम संकीर्तन महिमा बतायी फिर योगेश्वर हरि ने भगवत् भक्तों के लक्षण बताये। इसी प्रकार अन्तरिक्ष द्वारा भगवान् की महिमा का वर्णन, प्रबुद्ध द्वारा माया से पार होने का उपाय तथा भागवत धर्म, पिप्पलायन द्वारा नारायणके स्वरूपका वर्णन, आविर्होत्र द्वारा कर्मयोग का विवेचन तथा पूजा पद्धति, द्रुमिल द्वारा भगवत् लीलाओं तथा अवतारों का चरित, चमस द्वारा हरि विमुख जनों की गति का वर्णन, तथा वेदों का वास्तविक सिद्धान्त कर भाजन द्वारा युगधर्म का विवेचन तथा कलियुग में केवल नाम संकीर्तन ही एकमात्र सरल सुगम उपाय है, इन सब बातों का प्रतिपादन किया गया है। योगेश्वर कर भाजन कलियुग का धर्म बताते हुए कहते हैं—

या कलियुग तें रीझि जनम कलिमहँ चाहें सुर।
होवें कलिमहँ भक्त करें कीर्तन धरि हरि उर॥
तजि सब विषय विलास शरन हरि की जे जावें।
सब रिनतें ह्वै उरिन श्याम के धाम सिधावें॥

अशुभ करम यदि भूल तें, कबहुँ भक्त तें बनि परें।
तिनिकूँ शरनागत वछल, अघहारी श्रीहरि हरें॥

इस प्रकार कवि,हरि, अन्तरिक्ष, प्रबुद्ध,पिप्पलायन, आविर्होत्र द्रुमिल, चमस और कर भाजन इन नौ योगेश्वरों और जनक के सम्वाद को कहकर नारदजी ने वसुदेवजी को उपदेश दिया। यहीं वसुदेव नारद सम्वाद भी समाप्त हुआ और 'भागवती कथा' का बावनवाँ खण्ड भी समाप्त हुआ अब आता है त्रेपनवाँ खण्ड।

त्रेपनवें खण्ड में सर्व प्रथम श्रीकृष्ण उद्धव सम्वाद की प्रस्तावना है। पहिले उद्धवजी ने भगवान् से विनय की तब भगवान् ने उद्धवजी को सन्यास धर्म का उपदेश दिया। संक्षिप्त उपदेश श्रवण करके उद्धव की विस्तृत व्याख्या श्रवण करने की जिज्ञासा उत्पन्न हुई। तब दृष्टान्त के रूप में भगवान् ने अवधूत गीता आरम्भ किया। भगवान् दत्तात्रेय ने पृथिवी, वायु, आकाश, जल, अग्नि, चन्द्रमा, सूर्य, कपोत, अजगर, समुद्र, पतङ्ग, मधुमक्षिका, हाथी, मधुहारी, हरिण, मीन, वेश्या, कुररपक्षी, बालक, कुमारीकन्या, बाण बनाने वाला, सर्प, मकड़ी, तथा भृङ्गी इन चौबीस गुरुओं को बना कर इनसे कौन कौन सी शिक्षा ली है, इसका विस्तृत वर्णन किया है। एक गुरु से जो शिक्षा ली है उसका एक अध्याय में वर्णन है अन्त में अपने इस शरीर से क्या शिक्षा ली है यह भी एक पचीसवाँ गुरु है। इसलिये मनुष्य शरीर की उपयोगिता को ध्यान में रखकर कहा गया है:—

हरि ने नाना यानि रचीं परितोष न पायो।

मुनी भये लखि मनुज मोक्ष को द्वार बतायो ।।
पाइ मनुज को जनम जनम को अन्त न कीयो ।
विषयनि फँसि मरि गयो अमृत तजिकें विष पीयो ।।
सब योनिनि महँ विषय सुख, मिलै करै च्यौं श्रम अरे ।
छनिक दुखद सुख भजि सरस, नित्य सुखहिँ तजि बावरे ।।

इस प्रकार चौबीस गुरु और पच्चीसवें देह से शिक्षा लेकर अवधूत गीता की समाप्ति की गयी और साथ ही "भागवती कथा" का त्रेपनवाँ खण्ड समाप्त किया गया है अब आता है चौअ-नवाँ खण्ड।

चौअनवें खण्ड में पहिले समस्त शास्त्रों के सार उपदेश को कहा है। फिर परम भगवद्भक्तों के लक्षणों का वर्णन है। तद-नन्तर संसार सागर से पार होने के सरल साधन, भगवान् की पूजा के ग्यारह आश्रय, सत्संग की महिमा, गोपिकाओं की प्रभु में आसक्ति, इन तीनों गुणों से ऊपर उठने के उपाय तथा अन्तः-करण में विषय वासना की प्रवृत्ति कैसे होती है इन गूढ़ विषयों का सरलता तथा सरसता के साथ वर्णन किया है। इसी प्रसंग में भगवान् ने हंसरूप रखकर ब्रह्माजी को तथा सनकादि कुमारों को जो उपदेश दिया, जो हंसगीता के नाम से वर्णित है उसका कथन किया। यह जो हमें असत् में सत् का भ्रम हो गया है, इसका निवारण कैसे किया जा सकता है, इसके व्यवहारिक उपाय बताये हैं। इन सब गूढ़ विषयों को कहकर हंसगीता की समाप्ति की गयी है।

इसके अनन्तर श्रेयसिद्धि के अनेकों मार्गों की विवेचना करते हुए बताया है स्वर्ग में सुख नहीं। फिर भक्तों का उत्कर्ष है, भक्तों की महिमा, सत्संग और दुस्संग का प्रभाव, ध्यान की पात्रता ध्यान की विधि आदि विषयों को बताकर सिद्धियों के सम्बन्ध में

बनाया है। भगवान ने अपनी बहुत सी सिद्धियों को गिनाकर अन्त में कह दिया है, सभी सिद्धियों का स्वामी मैं ही सर्वेश्वर हूँ। इस प्रकार "भागवती कथा" का चौअनवाँ खण्ड समाप्त होता है, अब आता है पचपनवाँ खण्ड।

पचपनवें खण्ड में सर्व प्रथम भगवान् ने अपनी मुख्य मुख्य विभूतियोंका वर्णनकिया है,फिर भगवत् विभूतियोंकी मुख्यपहिचान बता दी है। तदनन्तर वर्णाश्रम धर्म का रहस्य, ब्राह्मण स्वभाव उसकी वृत्ति और धर्म, क्षत्रिय स्वभाव और वृत्ति, वैश्य स्वभाव और वृत्ति, शूद्रों का स्वभाव और वृत्ति तथा अन्त्यजों का स्वभाव वृत्ति बताकर अन्त में संक्षेप में सार्व वर्णिक धर्मों को बताया गया है। ये तो वर्ण धर्म हुए इसके अनन्तर आश्रम धर्म बताये गये हैं। ब्रह्मचर्याश्रम के धर्म, गृहस्थाश्रम के धर्म, वानप्रस्थाश्रम के धर्म, सन्यासाश्रम के धर्म बताकर सन्यासियों के भेद बताये गये हैं और फिर परम हंसचर्या का निरूपण किया गया है, फिर उद्धव जी ने ज्ञान तथा भक्ति सम्बन्धी प्रश्न किये हैं, यहाँ आकर "भागवती कथा" का पचपनवाँ खण्ड समाप्त होता है, अब आता है छप्पनवाँ खण्ड।

छप्पनवें खण्ड में सर्व प्रथम भक्ति योग का वर्णन है, फिर भगवान् ने विस्तार से भक्तियोग के साधन बताये हैं। तदनन्तर उद्धवजी ने कुछ पावन प्रश्न किये हैं। भगवान् ने अत्यन्त संक्षेप से उन सबके उत्तर दिये हैं। ज्ञान, तप, पंडित, मूर्ख आदि के सम्बन्ध में प्रश्न कियेहै भगवान ने उनके उत्तर दे दिये। फिर अन्त में कहा गुण दोष देखना ही दोष है। जो गुण दोष नहीं देखता वही गुणी है। इस पर उद्धवजी ने गुण दोषों के सम्बन्ध में शंका की। तब भगवान् ने योगत्रय का विवेचन किया। मन के निरोध के उपाय बताये, साधन विहीनों की गति का वर्णन किया, शुद्धि

अशुद्धि के विशेष नियम बताये अंत में बताया कि कर्म की प्रशंसा श्रेय प्रवृत्ति के निमित्त है।

फिर शब्द ब्रह्म का निरूपण किया, भिन्न भिन्न आचार्यों ने तत्वों की संख्या भिन्न भिन्न बतायी है, इनमें इतना मतभेद क्यों है इसका कारण बताया है। फिर प्रकृति पुरुष के सम्बन्ध में विचार किया गया है। उद्धवजी के पूछने पर हरि विमुखों की गति तथा सत् असत् का वर्णन है। मान अपमान को कैसे सहन करना चाहिये इस सम्बन्ध में एक अवन्ती के कृपण ब्राह्मण की कहानी है। धन नष्ट होने पर उसे किस प्रकार वैराग्य हुआ और वह कैसे भिक्षुक बन गया यह कथा है। भिक्षु बन जाने पर उसने किस प्रकार मानापमान को समान समझकर तितिक्षा का आदर्श दिखाया इसकामार्मिक विवेचन है। यहाँ आकर "भागवती कथा" छाछप्पनवाँ खण्ड समाप्त होता है, अब आता है सत्तावनवाँ खण्ड।

सत्तावनवाँ खण्ड भिक्षुगीता से आरम्भ किया गया है। अवन्ती का जो कृपण ब्राह्मण भिक्षु बन गया था, उसके शरीर को खल लोग कष्ट देने लगे तब उसने गीत गाया, कि एक शरीर दूसरे शरीर को दुःख नहीं दे सकता। देवता भी दुख नहीं दे सकते, कोई भी किसी को कभी दुःख सुख नहीं दे सकता। दुख का कारण अपना मन ही है। मन जिसे दुख मान ले वह दुख है, मन जिसे सुख मान ले वह सुख है। "मन के हारे हार है मन के जीते जीत।" इस प्रकार तत्त्व ज्ञान की बात बताकर भिक्षु ने अन्त में कहा है—

नहीं दुःख सुख देहिं कबहुँ काहू कूँ कोई।
दुखको कारन अन्य बतावें तिनि मति सोई॥
मारें बाँधें चाहिं देहिं दुख मोकूँ सब जन।
समुझि देवगति कबहुँ होहुँ नहिँ दुखित मलिन मन॥

कहैं कृष्ण—"उद्धव' सुनो, भिक्षु कृतारथ ह्वै गयो।
सही यातना खलनि की, गाय गीत प्रमुदित भयो॥

इस प्रकार भिक्षु गीत कह फिर सांख्य विधि के सृष्टि, सांख्य विधि के प्रलय, तीनों गुणों की वृत्तियाँ, गुणों का सन्निपात और स्वरूप, त्रिगुणात्मक जगत और इससे तरने का उपाय, आदि विषयों का विवेचन किया गया है। फिर वैराग्य होने पर महाराज ऐल ने जो गीत वैराग्य को बढ़ाने वाले हैं और विषयी लोगों को विषयों से हटाने वाले हैं ये पाँच गीत वैराग्य के पंच प्राण ही हैं। इनमें से एक की बानगी के रूप में हम कह देते हैं

उर्वशी के विरह में व्याकुल होकर राजा पागलों की भाँति घूमे। अन्त में उन्हें वैराग्य हुआ और वे कहने लगे—

त्रिया की देह परम प्रिय जानी।
जो मल, मूत्र, रुधिर, मज्जा अरु, कफ खखार की खानी॥ १॥
रुधिर राधि मल कफ के कीरा, सुधा सरिस इनि जानी।
बुलबुलात हरषात इनहिं महँ हौं तैसो हो प्रानी॥ २॥ त्रि०
जोहत रहत नयन मुख पल पल, समुझि आपनी रानी।
तृन सम तोरि नेह की डोरी, छिन महँ भई बिरानी॥ ३॥ त्रि०
भ्रमवश सर्पिनि गर लपटानी, मनहर माला मानी।
कब आई कब गई सयानी, अब रहि गई कहानी॥ ४॥ त्रि०
माया नाना नाच नचावै, ठगिनी परम पुरानी।
हे मायेश बचाओ गिरिधर, यदुवर सारँग पानी॥ ५॥ त्रि०

ऐल गीत के अनन्तर संत समागम माहात्म्य, क्रियायोग में प्रतिमा पूजन, अग्नि आदि में पूजन, सारासार उपदेश, संसार की असारता, साधनावस्था से सिद्धावस्था तथा योग साधन के विघ्न और उनके उपाय ये विषय वर्णन किये गये हैं उद्धवजी ने भगवान् से पुनः भक्ति सम्बन्धी प्रश्न किये तब भगवान् ने भागवत धर्म का निरूपण किया इस प्रकार अन्त में उद्धवगीता का

उपसंहार किया गया। यहाँ तक "भागवती कथा" का सत्तावनवाँ खण्ड समाप्त हुआ अब आता है अट्ठावनवाँ खण्ड।

अट्ठावनवें खण्ड मे उद्धव जी को श्री भगवान् ने बदरीवन में जाने की आज्ञा दी। भगवान् की आज्ञा से उद्धवजी चल तो दिये किन्तु उनका मन नहीं मान रहा था, वे भगवान् के महा-प्रयाण के दर्शन करना चाहते थे अतः बदरी वन न जाकर प्रभास की ओर चल दिये। इधर यदुवंश के विनाश के लक्षण दिखायी देने लगे। सभी प्रभास की ओर चल दिये वहाँ आपस में लड़कर मर गये। यदुवंश के विनाश की अंतिम लीला हो गयी। भगवान् भी स्वधाम पधारने के निमित्त तरुतर आकर बैठ गये। व्याध ने हरिण समझकर भगवान् के चरण में बाण मारा। उस व्याध को भी भगवान ने सद्गति दी। फिर भगवान् के दारुक सारथी आ गये, उन्हें भी द्वारका के लिये भगवान् ने विदा किया। तदनन्तर श्याम सुन्दर अपने धाम को पधार गये। यदुवंश की अन्तिम लीला समाप्त हुई।

अब कलियुग के राजाओं का वर्णन है शिशुनाग आदि राजाओं की वंश परम्परा, नन्द वंश का विनाश, चन्द्रगुप्त मौर्य तथा वारिसार अशोक आदि अन्य मौर्य वंशी राजाओं का वर्णन शुङ्ग, कण्व तथा आन्ध्र जातीय राजाओं का इतिहास, आभीर तथा गर्दभी वंश, कंक वंश, यवन तुरुष्क और गुरुण्ड राजाओं को बताकर अंत में कलियुग के कुछ अन्यान्य राजाओं का वर्णन किया गया है। फिर कलिकाल की कुछ काली करतूतों के सम्बन्ध में कहा गया है। कलियुग की प्रबलता के चिन्ह बताये गये हैं और अन्त में वसुधागीत गाया गया है।

महाराज परीक्षित् ने पूछा—"महाराज! आपने इन इतने राजाओं की कथायें सुनायीं इनसे लाभ क्या? हँसकर भगवान् शुक ने कहा—"राजन्! मैंने केवल वैराग्य की वृद्धि के लिये ये

सब कथायें कहीं। इनमें से कोई यथार्थ तत्त्व नहीं केवल वाणी का विलासमात्र है। कितने बड़े बड़े राजा हुए उनका अब केवल नाममात्र रह गया है—

ऐसे भूपति भये नई जे सृष्टि बनावें।
सूरज पथकूँ रोकि रैनि के तमहिँ भगावें॥
रथतें करैं समुद्र भूमि पै यान चलावें।
सप्त द्वीप नवखंड विजय करि भूप कहावें॥
किन्तु कालके गालमें, तेऊ घुसिकें नसि गये।
करि जगतैं वैराग्य हरि-शरन गये ते तरि गये॥

इस प्रकार कलियुग तक वंश परम्परा कहकर "भागवती कथा का अट्ठावनवाँ खण्ड समाप्त किया गया है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने आपसे सप्तमाह की प्रायः सभी सूची कह दी। अब कुछ और शेष है उसे अगले अध्याय में कहकर इस विषय सूची प्रकरण को समाप्त करूँगा।

छप्पय

वर्णाश्रम को धरम विविध प्रश्ननि को उत्तर।
भिक्षु गीत कहि कही सांख्य की महिमा सुखकर॥
नृपति ऐल का गीत उद्धवहिँ शिक्षा दीन्हीं।
पुनि यदुवंश विनाश सवरन लीला कीन्हीं॥
करि कलियुग के नृपनि कूँ, भूमि गीत हू पुनि कह्यौ।
फेरि ब्रह्म उपदेश शुक—ने नरपति कू ज्यों दयौ॥

—:o:—

सप्तमाहकी शेष विषय सूची और माहात्म्य

(१३७९)

देहत्यागश्च राजर्षेविष्णुरातस्य धीमतः ।
शाखाप्रणयनमृषेर्मार्कण्डेयस्य सत्कथा ।
महापुरुषविन्यासः सूर्यस्य जगदात्मनः ॥ *

(श्रा० भा० १२ स्क० १२ अ० ४४ श्लो०)

छप्पय

त्यागि परीक्षित् देह परमपद पायौ जैसें ।
शाखा वेदनि कहीं पढ़ी विप्रनिने कैसें ॥
मार्कंडेय चरित्र कही पूजा विधि उत्तम ।
कहि रवि सप्तक कही विषय-सूची मुनिसत्तम ॥
फेरि भागवत सार सब, कह्यो महातम नाम पुनि ।
पुण्य भागवत चरित को, पूर्ण भयो सप्ताह मुनि ॥

भगवान् के चरित्र अनन्त हैं, उनका आरंभ नहीं समाप्ति नहीं। अनादि अनन्त का आरम्भ और अन्त बनता ही नहीं, किन्तु उपचार रूप से आरम्भ भी कहा जाता है अन्त भी। जब

---

* श्री सूतजी कहते हैं—"मुनियो। सप्तमाह में बुद्धिमान धीमान् राजर्षि परीक्षित् का देहत्याग, वेद की शाखाओं का विस्तार ऋषिवर मार्कण्डेय जी की सत्कथा महापुरुष भगवान् के अङ्गोपाङ्ग की कल्पना तथा जगदात्मा सूर्यनारायण के व्यूह आदि की कथायें कही गयी हैं।"

भगवान के चरित्र ही आरम्भ नहीं होते इनका कभी अन्त नहीं होता, तो इन चरित्रों का विषय सूची का अन्त कैसे होगा। तथापि यह विषय सूची आरम्भ की गयी थी, अतः इस अध्याय में समाप्ति होगी।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने पिछले अध्याय में सप्ताह की विषय सूची कही, उसमें से कुछ शेप रह गयी है, उसे अब आगे कहता हूँ। भागवती कथा के अट्ठावनवें खण्ड में वसुधागीत तथा राजाओं की कथाओं से क्या उपदेश लेना चाहिये यहाँ तककी कथा हो गयी, अब उनसठवें खण्डकी कथा सुनिये।

'भागवती कथा' के उनसठवें अध्याय में सर्व प्रथम कलियुग के दोप और उनसे बचने के उपाय बताये गये हैं। फिर प्रश्न यह उठता है, कि कलिकाल तो अधर्म का मित्र है, वह दोषों की खानि है उसमें होने वाले दोषों को काटने की क्षमता किसमें है, इस पर *कहा गया है, कि कलि कल्मपों को कृष्णकीर्तन* ही काट सकता है। इस प्रकार कृष्ण कीर्तन का माहात्म्य बताकर प्रलय के चार प्रकार बताये हैं, पुनः भगवान् शुक ने सम्पूर्ण शास्त्रों का सार बताते हुए अन्त में इन शब्दों में परमार्थ विवेचन किया है :—

आत्मचिन्तना करो अहं सतचित कहलाऊँ।
परमधाम हौं ब्रह्म परम पद ब्रह्म कहाऊँ॥
परमात्मा में जबहिँ आतमाकूँ तुम देखो।
फिरि तक्षक, जग, देह सकल आत्मा में पेखो॥
सात दिवस में यथामति, भव भयहर सुखकर सुकर।
कही विष्णु गाथा कछुक, कहूँ कहा अब भूपवर॥

जब भगवान् शुक ने इस प्रकार राजर्षि परीक्षित् को अंतिम उपदेश दिया, तब राजा ने अत्यन्त ही दीनता के साथ मुनि के प्रति कृतज्ञता प्रकट की और कह दिया—मैं सिद्ध हो गया आपने बड़ी कृपा की।" ऐसा कह कर राजा ने सविधि मुनि की पूजा

की। उनकी पूजा को स्वीकार करके मुनियों के सहित भगवान् शुक वहाँ से चल दिये।

भगवान् शुकदेव जब गये, तब सात दिन में कुछ ही समय शेष था, उसी समय ब्राह्मण का वेष बनाकर तक्षक नाग आता है, मार्ग में उसे कश्यप गोत्रीय विष को हरने वाला ब्राह्मण परीक्षित् के समीप जाता हुआ मिलता है, उसे विपुल धन देकर तक्षक लौटा देता है। तदनन्तर ब्राह्मणों के फलों में कीड़ा बनकर वह राजा के समीप पहुँच जाता है, राजा उसे विनोद में उठाकर कंठ से लगाते हैं, तुरन्त वह सर्प बनकर राजा को डस लेता है, राजा का शरीर भस्म हो जाता है।

अपने पिता की सर्प द्वारा मृत्यु सुनकर परीक्षित् नन्दन महाराज जनमेजय सर्प सत्र करते हैं, मंत्रोंसे सर्पोंको बुलाकर अग्नि में उनकी आहुति देते हैं, उसी समय एक ब्राह्मण आकर सर्प सत्र की समाप्ति करा देता है। यहाँ तक शुक परीक्षित् सम्वाद हुआ। अब उपसंहार रूप में शौनक जी ने सूतजी से कुछ प्रश्न किये हैं उनका उत्तर है।

शौनकजी के पूछने पर सूतजी ने वेद और उनकी शाखाओं का वर्णन किया है। यजुर्वेद की शुक्ल यजुर्वेद और कृष्ण यजुर्वेद ये शाखायें कैसे हुईं इसकी कथा है, चारों वेदों की शाखाओं को कहकर फिर पुराणों की शाखायें बतायी हैं। तदनन्तर चिरजीवी महर्षि मार्कण्डेयजी की मनोहारिणी कथा है। बालक मार्कण्डेय कैसे अल्पायु से चिरायु हो गये, किस प्रकार उन्होंने बदरीवन के समीप घोर तप किया, कैसे भगवान् नर नारायण ने आकर उन्हें दर्शन दिये, किस प्रकार उन्होंने भगवान् से माया दर्शन का वर माँगा और भगवन् कृपा से कैसे उन्हें माया के दर्शन हुए। वट के पुट पत्र पर पड़े बालमुकुन्द के उदर में विशाल ब्रह्माण्ड दिखायी दिया, इस प्रकार मायाके दर्शन

करके वे माया से रहित कृतार्थ हो गये, तभी कामारि कपर्दी भगवान आशुतोष ने उन पर कृपा की वरदान दिया। इस प्रकार मार्कंडेय चरित्र की समाप्ति की गयी है।

तदनन्तर भगवान की अङ्ग, उपाङ्ग, आयुधादि रूपाविभूति को बताकर द्वादशादित्यों का वर्णन किया गया है, किस महीने में कौन से सूर्य रहते हैं और उनके गणों में कौन कौन ऋषि, गंधर्व नाग, अप्सरा यक्ष और राक्षस रहते हैं, फिर लेखक के सम्बन्ध की चर्चा है, तदनन्तर विषय सूची कही गयी है। सूचीका सप्ताह के अनुसार क्रम रखा है। प्रथमाह, द्वितीयाह और तृतीयाह की सूची एक एक अध्यायों में कही है। चतुर्थाह की सूची में दो अध्याय हैं, चतुर्थाह की सूची और पंचमाह की सूची तीन अध्यायों में समाप्त की है फिर षष्ठाह की एक और सप्ताह की सूची दो अध्यायों में कही गयी है।

सूची कहने के अनन्तर श्रीमद् भागवत् का सारातिसार रहस्य बताकर भगवन्नाम संकीर्तन की महिमा फिर से बतायी है क्योंकि श्रीमद्भागवत नाम पुराण है, भगवन्नाम को ही सबकी पावनता का कारण बताया है, इसका भी विवेचन किया गया है। फिर भक्ति की महिमा बताते हुए यह सिद्धान्त स्थिर किया है कि यदि भक्तिहीन होकर वर्णाश्रम धर्म का पालन भी किया जाय तो वह अशोभन है। फिर भागवत श्रवण के लिये द्वारका मथुरा और पुष्कर इन विशेष स्थानों का महत्व बताया है, दो अध्यायों में भागवती कथा को कामधेनु और कलिकल्मष कालिनी बताया है। फिर बार बार नमस्कार करके अष्टादश पुराणों की श्लोक संख्या कहकर श्रीमद्भागवत को सबमें श्रेष्ठ सिद्ध किया है। इसके पश्चात् श्रीमद्भागवत के दान की विधि तथा दान और पाठ का माहात्म्य बताया है। फिर सत्यं परं धीमहि अध्याय में परस्परागत सम्प्रदाय परस्पर ध्यान वन्दन करके अन्तिम प्रणाम

तथा मानसिक पूजा करके भागवती कथा की समाप्ति की गयी है।

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! मैंने अत्यन्त संक्षेप में भागवती कथा की यह विषय सूची आपको सुना दी। जिसको पूरा ग्रन्थ पढ़ने का अवसर न हो वह इस विषय सूची को भी यदि पढ़ ले तो उसका कल्याण हो जायगा। मुनियो ! अब मैं श्रीमद्भागवत का सार तथा भगवन्नाम संकीर्तन का महत्व आपको और सुनाऊँगा। आप दत्तचित्त होकर इसे श्रवण करें।

छप्पय

जो न भागवत चरित पूर्ण पढ़िवे को अवसर।
विषय अनुक्रम पढ़े एक अध्याय पुन्यकर ॥
अति समास सप्ताह निकारयौ सार सार सब।
करैं कण्ठ को हार होहि नहिं तिनि बन्धन भव ॥
जो अध्याय विशेष कूँ, सुनहिं पढ़हिं गावहिं रटैं।
होहिँ मनोहर सफल सब, तिनि के भव बन्धन कटैं ॥

—:o:—

श्रीमद्भागवत का सार-नाम संकीर्तन

(१३८०)

पतितः स्खलितश्चार्तः क्षुत्त्वा वा विवशो ब्रुवन्।
हरये नम इत्युच्चैर्मुच्यते सर्वपातकात् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ४६ श्लो०)

छप्पय

जो जो कीये प्रश्न यथामति सकल बखाने।
सब चरितनि में सार श्याम शुभ नामहिँ जाने॥
रपटत ठोकर खात गिरत छींकत जमुहावत।
'हरये नमः' ये शब्द पाप परबतनि ढहावत॥
ज्यों रवि तमकूँ, पवन ज्यों छिन्न भिन्न मेघनि करै।
त्यों कीर्तन हरि नाम को, हिय के सब कल्मष हरै॥

कलियुगी जीवों पर कृपा करके भगवान् ने अपने मंगलमय सुमधुर नामों में अपनी सम्पूर्ण शक्ति भर दी है। अन्य युगों में बड़े बड़े कठोर साधन किये जाते थे, तब कहीं चिरकाल में भग-

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मनुष्य चाहें कहीं से गिरते हुए, रपटते हुए ठोकर खाते हुए, दुःख से दुखी होकर, छींकते समय अथवा कैसे भी विवश होकर "हरये नमः" इन शब्दों को उच्चस्वर से कहता है तो वह निश्चय ही सर्व पापों से छूट जाता है।"

वन् प्राप्ति होती थी। तिस पर भी समस्त साधनों में नाना भाँति की विधियाँ लगी हुई थीं। अमुक ही व्यक्ति अमुक साधन करे। अमुक समय में ही करे, अमुक प्रकार से ही करे अमुक अवस्था में ही करे, इन विधियों के कारण कठिनता और भी बढ़ जाती थी, किन्तु इस भगवन्नाम स्मरण में कोई विधि नहीं, देश का काल का पात्र का कोई नियम नहीं। सर्वावस्था में, सभी स्थानों में सभी साधक इस सरल सुगम सर्वोपयोगी सुकर साधन को सब कुछ करते हुए भी कर सकते हैं। कलियुगी लोगों का इससे अधिक दुर्भाग्य और क्या होगा, जो ऐसे सुन्दर साधन को पाकर भी उसका उपयोग नहीं करते।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! मैंने आप से भागवती कथा की सप्राह क्रम से विषय सूची कहा अब आप और क्या सुनना चाहते हैं?"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! हम यह जानना चाहते हैं, कि आपने श्रीमद्भागवत में सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति तथा प्रलय का भाँति भाँति से कई बार वर्णन किया है। सूर्य वंश तथा चन्द्रवंश के सहस्रों राजाओं के चरित्र सुनाये, बहुत से ऋषि, मुनि तथा तपस्वियों की कथायें कहीं। बहुत सी रोचक कथायें सुनायीं, भगवान् के मंगलमय बहुत से अवतारों का वर्णन किया, भिन्न भिन्न मुनियों के मतों को लेकर तत्वों की भिन्न भिन्न संख्यायें बतायीं। बहुत से प्रश्नों का उत्तर दिया। अब हम जानना यह चाहते हैं, कि इन सब में सार वस्तु क्या है?"

सूतजी ने कहा—"महाराज! मैंने सब शास्त्रों का सार लेकर ही तो आप से श्रीमद्भागवत कही है। मेरे गुरुदेव भगवान शुक ने सम्पूर्ण वेद, शास्त्र, इतिहास तथा पुराणादि समस्त ग्रन्थों की निचोड़ लेकर ही महाराज परीक्षित् को भागवत सुनायी थी, अब सार का भी सार मैं क्या बताऊं।"

शौनकजी ने कहा—"हाँ, सूतजी ! यह सत्य है, कि आपने सार सिद्धान्त बताया, किन्तु शास्त्रों का सार समन्वय आपने कहा। बहुत से साधन बताये, बहुत से योग बताये, कहीं भक्ति की प्रशंसा की, कहीं ज्ञान को सर्वोत्कृष्ट कह दिया, कहीं कर्म को सब कुछ बता दिया। वैसे तो संसार में जितने मनुष्य हैं, उतने ही साधन हैं। फिर भी कलिकाल के लिये कोई सरल सुगम सर्वोपयोगी साधन बता दीजिये। श्रीमद्‌भागवत का अधिक लक्ष्य किस ओर है ?"

हँसकर सूतजी ने कहा—"महाराज ! इस प्रश्न का अधिक नहीं तो सहस्रों बार तो मैंने उत्तर अवश्य ही दिया होगा। फिर भी आप स्थूणा खनन न्याय से उसे ही बार बार पूछते हैं। खूटे को गाड़ते हैं, फिर हिलाते हैं, फिर गाड़ते हैं फिर हिलाते हैं। बार बार हिलाने से तात्पर्य यह है, कि दृढ़ता के साथ गड़ जाय। इसी उद्देश्य से आप एक ही प्रश्न को बार बार करते हैं और मैं भी बार बार एक ही उत्तर देता हूँ। इस श्रीमद्‌भागवत ग्रन्थ में श्री भगवान् ने नाना अवतार धारण करके जो जो लीलायें की हैं, उन्हीं का वर्णन किया है। कभी भगवान् ने कच्छ मत्स्य वाराह नृसिंह का रूप रखा है, कभी हंस, हयग्रीव आदि का रूप रखा है कभी पृथु आदि राजा के रूप में अवतरित हुए हैं, सारांश कि भगवान् के अंशावतार, कलावतार, मन्वन्तरावतार, युगावतार आवेशावतार, परिपूर्णावतार जितने अवतार हुए हैं उन्हीं की लीला कथा का मैंने वर्णन किया है पापों के हरण करने वाले हरि की लीला कथा ही संसार से पार होने वाले पथिकों का प्रिय पाथेय है।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् का नाम हरि क्यों है ?"

सूतजी बोले—"इसलिये महाराज ! कि वे प्राणियों के पापों को हरते हैं।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! प्राणी पाप क्यों करते है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! संस्कारों के वशीभूत होकर प्राणी पाप करते हैं। शरीर पुण्य और पापों के कारण तो मिलता ही है। सूक्ष्म शरीर में पुण्य और पापों के संस्कार ही तो रहते हैं। पुण्य से भी बन्धन होता है, पुण्य से भी जन्म मरण होता है। इसलिये पुण्य भी एक प्रकार का पाप है। इसलिये यह शरीर क्या है पापों का पुञ्ज है। भगवत् सेवा भगवत् स्मरण को छोड़कर जीव जो भी काय करता है सब पाप ही करता है। संसारी असत् वस्तुओं को जुटाना एक प्रकार का पाप ही है। चारों ओर विष्ठा पड़ी है। उसे एकत्रित करके घर में भरते रहना। मेरी मेरी कहना यह एक प्रकार का पाप ही है पूजा के लिये यज्ञ के लिये प्रभु के लिये जो कर्म किया जाय उससे शेष सभी कर्म पाप हैं। मनुष्यों की उत्पत्ति भी पापमय है। माता पिता के मन में विकार होता है, संगम करते हैं उन्हीं के रजवीर्य से उत्पत्ति होती है। शरीर में छिद्र ही छिद्र हैं उन सब छिद्रों से मल निकलता है, शरीर में नाना रोग होते हैं। रोग कहो, मल कहो, दोष कहो पाप कहो सब पर्यायवाची शब्द हैं। मुझे कोई पृथिवी पर आप ऐसा शरीर बता दें जिसमें मल न हो रोग न हो। मुझे कोई ऐसा काम बता दें जिसमें पाप न हो।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! आप सत्य कहते हैं श्रीकृष्ण कैंकर्य के अतिरिक्त प्राणी पग पग पर पाप ही करता है, इन पापों से छुटकारा कैसे हो ?"

सूतजी ने कहा—"महाराज ! "न मम" कहने से पाप नहीं स्पर्श करते।"

शौनकजी ने कहा—"न मम" का क्या अर्थ है सूतजी स्पष्ट करें।"

सूतजी बोले—"महाराज ! यज्ञ में आहुति देने के अनन्तर कह देते हैं-'न मम' जैसे इन्द्राय स्वाहा" इदं न मम" यह आहुति इन्द्र के लिये है मेरे लिये नहीं। सब वस्तुओं में से अपना पन निकाल देने से मनुष्य को पाप पुण्य स्पर्श नहीं करता। इसलिये सब कुछ करते हुए "न मम न मम' करते रहो। न मम कहो नमो नमः कहो नमन कहो एक ही बात है। जो आदमी पापों के हरण करने वाले हरि को नमोनमः करते रहते हैं, वे अवश्य ही पापों से छूट जाते हैं। इसलिये पापों से छूटने का एक ही मन्त्र है—वह मन्त्र है "हरये नमः।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! इस मन्त्र को मन ही मन में शनैः शनैः कह लिया करें तो क्या हानि ?"

सूतजी बोले—"नहीं महाराज ! गुपचुप शनैः शनैः कहने से काम न चलेगा। उच्च स्वर से ही कहने से पाप पक्षी भगेंगे। खेत को पक्षी चुग रहे हैं आप मन ही मन कहें—"पक्षी उड़ जाओ।" तो वे कभी न उड़ेंगे। आप उच्च स्वर से हो हो पुकारिये ढोल बजाइये काठ खटखटाइये या ताली बजाइये तब कहीं पक्षी भागेंगे। इसी प्रकार हरये नमः कृष्णाय नमः वासुदेवाय नमः ऐसे उच्च स्वर से कीर्तन करने से ही पाप भगेंगे। चतुर्थी में नमः न भी लगावें केवल सम्बोधन में ही पुकारें। हे राम ! हे हरे हे कृष्ण हे वासुदेव ! तब भी सब पाप भग जायँगे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! मन से कहें तभी पाप भगेंगे या वे मन से भी कुछ लाभ होगा ?"

सूतजी बोले—'महाराज ! मन से कहे तब तो पूछना ही क्या है। किन्तु मन से न भी कहा जाय अकस्मात् विवश होकर

मुख से "हरये नमः" हरे राम हा राम, आदि ये शब्द निकल जायँ तो प्राणी सभी पापों से छूट जाता है।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! विवश होकर स्वतः ही मुख से कैसे निकल जाते हैं, इसे तनिक स्पष्ट करके समझाइये।"

सूतजी बोले—"जैसे महाराज! वर्षा के दिन हैं, चिकनी मिट्टी है पैर फिसल गया, धाम से गिर पड़े, गिरते समय मुख से निकल जाय हाय राम, यह क्या हुआ। मार्ग में चल रहे हैं, चलते चलते ठोकर लग गयी, उँगली से रक्त बहने लगा उसी की पीड़ा में 'हा भैया', हा बप्पा" न निकलकर रामकृष्ण हरि आदि भगवान् के नाम निकल जायँ। ज्वर आ रहा है, शरीर में पीड़ा है या और कोई व्याधि है, उसमें कराहते समय हे हरि हे राम रक्षा करो, ऐसे भगवन्नाम सूचक शब्द निकल पड़े। अथवा छींकने पर चुटकी बजाते हुए कृष्ण कृष्ण राम राम ये परम पावन नाम उच्च स्वर से स्वतः ही विवश होकर निकल पड़ें, तो इतने से ही प्राणी सभी पापों से छूट जाता है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! भगवान् के नामों में अक्षर तो वे ही हैं, उनमें विशेषता क्या है जो वे पापों को तुरन्त ही नाश कर देते हैं।

सूतजी ने कहा—"महाराज! शब्द तो एक ही हैं, किन्तु उनकी योजना में अन्तर होने से उनके फल में अनुकूलता प्रतिकूलता आ जाती है। "माताजी" बहिनजी" कितने प्यारे शब्द हैं, जिस स्त्री से भी कहो उसी के हृदय में वात्सल्य तथा भ्रातृत्व स्नेह उमड़ आवे। उन्हीं से आप कहें आपकी लुगाई, बहनोई की बहू, तो वे अपना अपमान समझेंगी। दश गालियाँ देंगी, आश्चर्य नहीं पूजा भी कर दें। भाव तो दोनों का एक ही है, किन्तु शब्द योजना में अंतर है। दूसरा दृष्टान्त लीजिये आटा, घृत, और चीनी इन तीनों के संयोग से संयाव-हलुआ बनता है। आप

किसी को पहिले चीनी खिला दें ऊपर से घृत पिलादें, फिर आटा फँकवा दें। यद्यपि तीनों वस्तुएँ जिह्वा को रस देती हुई उदर में उतरीं, किन्तु न जिह्वा को यथार्थ रस मिला न भली प्रकार उदर ही भरा। यदि इन तीनों वस्तुओं को यथा क्रम बनाया जाय। बराबर का घी डालकर मंद मंद अग्नि से पहिले आटा भूना जाय। जब वह लाल हो जाय, सुगन्ध देने लगे तब उसमें छनी हुई शक्कर की गरम चासनी छोड़ी जाय। जब पककर कड़ाह को छोड़ने लगे। उसे गरमागरम खाओ तब क्या आनन्द आता है। प्रतिग्रास पर जिह्वा जल बहावे और उदर कहे और लाओ और लाओ। इसमें भी वस्तुएँ सब पेट में ही गयीं किन्तु योजना के अन्तर होने से रस तथा विरस का अनुभव हुआ। तीसरा दृष्टान्त लीजिये। संखिया है, वैसे यदि खाओगे तो तुरन्त मर जाओगे, किन्तु यदि उसे युक्ति से औषधियों द्वारा शोधकर खाओगे, तो नाना रोगों से मुक्त हो जाओगे। बिच्छू घास है, उसे छू भी दोगे तो बिच्छू के काटने की सी तीन दिन तक पीड़ा बनी रहेगी उसी घास को युक्ति से काट लाओ और विधिवत् साग बना लो, तो वह साग सरदी को भगाने वाला बलप्रद होगा। अक्षर वे ही हैं उन्हें ही क्रम से बिठाकर गायत्री मंत्र बन गया। उसके जप से सभी सिद्धियाँ आती हैं, उन्हीं शब्दों को उलट फेर कर गाली बना लो तो वे नरक ले जाने को पर्याप्त हैं। अतः भगवन्नामों में यही विशेषता है कि आप मन से अथवा बिना मनके लें वे पापों के पहाड़ों को ढाते ही हैं। जैसे आकाश में मेघ उमड़ घुमड़ रहे हों, जहाँ प्रबल पवन का झोंका आया सभी छिन्न भिन्न हो जाते हैं, हाथियों का झुण्ड खड़ा है, सिंह के आने पर वे इधर उधर भाग ही जाते हैं, सहस्रों मन रुई रखी है, उसमें भूल से एक अग्नि की चिनगारी डाल दो तो वह सबको जलाकर ही छोड़ेगी। कितना भी अन्धकार हो सूर्य के उदय होते

ही वह विलीन हो ही जायगा. उसी प्रकार भगवान् अनन्त के नामों का उच्च स्वर से कीर्तन तथा भगवान् की लीलाओं को उनके अप्रतिम प्रभाव को कर्णों द्वारा हृदय में ले जाओ। कीर्तन करो या सुनो कथा कहो या सुनो। कहने सुनने वालों के हृदय में भगवन्नाम प्रवेश करके उनके सम्पूर्ण क्लेशों को हर लेते हैं। वाणी की सार्थकता व्यर्थ बातें बकने में नहीं है।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! वाणी की सार्थकता किसमें है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! वाणी की सार्थकता तो भगवन्नाम लेने में ही है। हीरा, पन्ना लाल आदि हैं आप उनसे विष तो लो तो वह उनका दुरुपयोग है उनका यथार्थ उपयोग तो यही है राजाओं के मुकुटों में लगें कामिनियों की कोमल कोमल पतली पतली उंगलियों में सुवर्ण की अँगूठियों में जड़कर शोभा बढ़ावें उनके कंठों का हार बनें। इसी प्रकार वाणी की सार्थकता संसारी बातों में नहीं है, जिस वाणी से भगवान् के मङ्गलमय मधुर नाम नहीं लिये जाते वह वाणी वृथा है और उससे भगवन्नाम के अतिरिक्त जो बातें बोली जाती हैं वे भी वृथा हैं। जिस वाणी में भगवान् के गुणों का उदय होता हो वही वाणी सत्य है वही मङ्गल मयी है वही परम पावन है। इस मांस की जिह्वा से निकलने वाले वे ही वचन उत्तम हैं, वे ही सुन्दर हैं, वे ही परम प्रशंसनीय हैं, वे ही मनोहर हैं वे नित्य नये नये हैं, वे ही मन को नित्य आनन्दित करने वाले हैं, वे ही मनुष्यों के शोक सागर को सुखाने वाले हैं, जिनसे भगवान् उत्तम श्लोक का सुयश गान किया जाता हो। मुनियो ! आपके ही कान धन्य हैं जो निरन्तर कथा श्रवण में लगे रहते हैं, आपकी ही वाणी धन्य है जो भगवन्नाम कीर्तन भगवत् लीला गुण कथन के अतिरिक्त अन्य उच्चारण नहीं

करती। महानुभावो ! भगवन्नाम माहात्म्य ऐसा अनंत अपार है कि उसका वर्णन मैं कर ही नहीं सकता।"

शौनकजी बोले—"सूतजी ! आपकी वाणी बड़ी मधुर है, हमें इससे बड़ा सुख मिल रहा है, तनिक भगवन्नाम गुण माहात्म्य हमें और सुनाइये।'

सूतजी बोले—"महाराज ! मैं जितना ही सुनाऊँगा, उतनी ही मेरी वाणी पवित्र होगी, अच्छा और सुनिये।"

छप्पय

सो बानी है व्यरथ नाम हरि के नहिँ गावै।
है वह कथा कलंक कृष्ण चरितनि न सुनावै॥
हैं अति पावन वचन सुयश हरि ही के बोलें।
ते पद पावन परम पुण्य तीर्थनि में डोलें॥
कथा कीतरन कृष्ण को, तुलसी हरि सेवा जहाँ।
हंस भक्त निरमल परम, नियम सहित निवसहिँ तहाँ॥

—::०::—

सबकी पावनता नाम के ही कारण है

(१३८१)

न तद्वचाश्चित्रपदं हरेर्यशो–
जगत्पवित्रं प्रगृणीत कर्हिचित् ।
तद्ध्वाङ्क्षतीर्थं न तु हंस सेवितम्,
यत्राच्युतस्तत्र हि साधवोऽमलाः ॥*

(श्री० भा० १२ स्क० १२ अ० ५० श्लो०)

छप्पय

जामें नहिँ हरि नाम भागवत चरित न जामें ।
काकतीर्थ सो निंद्य न्हायँ कौआवक तामें ॥
होवे कविता सुघर रसीली गुन प्रसाद युत ।
कृष्ण कथा तें रहित घृनित नीरस अति निंदित ॥
नित नव नव नटवर चरित, सुखद सरस अतिशय विमल ।
कहत पढ़त गावत सुनत, होवे विकसित हृद् कमल ॥

यह एक प्रसिद्ध कथा है, कि एक बार सीताजी ने प्रसन्न होकर

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! वह वचन कैसा भी चित्र विचित्र पदों वाला क्यों न हो, यदि उसमें जगत् को पवित्र करने वाले श्रीहरि का तनिक भी यश नहीं गाया गया तो वह उसी तीर्थ के समान है जिसे केवल काकरूप नीच पुरुष ही सेवन करते हैं। उस तीर्थ का हंसरूप ज्ञानी पुरुष कदापि सेवन नहीं करते क्योंकि अमल विमल साधुगण वहीं निवास करते हैं जहाँ भगवान् अच्युत के नाम तथा गुणों का वर्णन होता है।"

हनुमानजी को एक बहुमूल्य मणियों की माला दी। हनुमानजी उसकी प्रत्येक मणि को दाँतों से तोड़कर देखने लगे। किसी ने पूछा—"हनुमानजी इतनी बहुमूल्य मणियों को आप तोड़ क्यों रहे हैं?"

हनुमानजी ने कहा—"तुम इन मणियों को बहुमूल्य बता रहे हो, मैं कहता हूँ ये कौड़ी की भी नहीं।"

उस व्यक्ति ने कहा—"सो क्यों?"

हनुमान जी बोले—"वह इसलिये कि इनमें रामनाम नहीं। जिसमें रामनाम नहीं वह संसारी वस्तु है और व्यर्थ है।

इस कथा का लक्ष्य इतना ही है, कि हमारा जीवन भगवन्नाम मय हो। हम काम करें तो राम के लिये, हम उत्सव करें तो राम के लिये, गाना गावें तो राम का, नाम ले तो राम का, यश वर्णन करें तो राम का, किसी से प्यार भी करें तो नामके नाते, कविता भी करें तो राम के सम्बन्ध की जिस कार्य में जिस चेष्टा में राम नहीं वह सब व्यर्थ है।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! भगवन्नाम की महिमा को स्वयं साक्षात् भगवान भी कहने में असमर्थ हैं जीवन की सार्थकता भगवान् के कार्यों में ही है इन्द्रिय, मन और बुद्धि का यही सुन्दर सदुपयोग है, कि उनका प्रयोग भगवान् के लिये किया जाय। अजन्मा होकर भगवान ने जन्म इसीलिये धारण किये कि लोग वाणी से मेरे जन्म कर्मों की कथायें कहें, उन्होंने निरञ्जन निष्क्रिय होकर इसीलिये मधुरातिमधुर लीलायें कीं, कि उन्हें सुनकर मनुष्य अपने कर्णों को पवित्र करें।

कवियों की कविता की सार्थकता यही है, कि वे कन्हैया की कथा का काव्यरूप में कथन करें। बहुत से कवि बड़ी ही प्रसाद गुण युक्त कविता करते हैं, उनमें अत्यन्त ही श्रुत मधुर चित्र विचित्र पद रहते हैं कविता रूप तीर्थ का वे सेवन तो करते हैं.

किन्तु उस तीर्थ में स्वच्छ जल नहीं होता, कमल नहीं होते, विशु-द्धता नहीं होती, मल से वह आवृत रहता है वे काक रूप कुकवि मल भक्षण करके उस कीच में लोटते हैं अपने इह लोक और परलोक दोनों को बिगाड़ते हैं, किन्तु जो हंसरूप सुकवि हैं, वे ऐसे अश्लील अपवित्र तीर्थ की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखते, वे तो अत्यन्त निर्मल मानसरोवर के ही निकट निवास करते हैं, मोती खाते हैं, और अपनी स्वच्छता और पवित्रता के लिये विश्व में विख्यात हो जाते हैं। इसी प्रकार निर्मल स्वभाव साधुजन वहीं रहते हैं जहाँ नारायण के नामों का निरन्तर गायन होता रहता हो। जहाँ कृष्ण की कथा की मन्दाकिनी बहती हो, सुकवि उसी काव्य की रचना करते हैं, जिसमें भगवान् का गुण गान किया गया हो। कविता कवि की प्यारी दुलारी पुत्री है, कौन सत्पिता चाहेगा कि मैं अपनी पुत्री उस गलित कुष्टी को दूँ जिसके सर्वाङ्ग से पीव चूता हो। महाराज! इस सम्बन्ध में मुझे एक कथा स्मरण हो आयी।

दक्षिण देश में एक बड़े अच्छे सत् कवि थे, वे भगवान के ही सम्बन्ध की कविता लिखते, भगवान के ही गुणों का गान करते। भगवत् भक्त प्रायः निर्धन होते हैं। क्योंकि वे निस्पृह रहते हैं। उन भक्त कवि के भी ऊपर लक्ष्मीजी की बड़ी बहिन दरिद्रता की कृपा थी, उनको अन्न वस्त्र का अभाव रहता, बड़ी दयनीय दशा से निर्वाह करते। उनकी सह धर्मिणी भी सन्तोष धारण करने वाली सती साध्वी तथा पति परायणा थी, भगवदिच्छा से जो भी प्राप्त हो जाता उसी पर निर्वाह कर लेती। एक दिन उनकी पत्नी का भाई उनके घर आया। यह कवि था, वह एक राज सभा का राज पंडित था, राजा की प्रशंसा में वह कविता किया करता था, राजा उसे बहुत पारितोषिक दिया करते थे, इसी से उसका बड़ा वैभव था, अत्यन्त ठाठ बाट से रहता था।

अपने बहनोई की ऐसी दयनीय दरिद्र दशा देखकर उसने कहा—"पंडितजी ! आप इतने बड़े सत्कवि होकर भी इतना दारिद्र दुख क्यों भोग रहे हैं। आप राजा के निमित्त एक कविता लिख दो, राजा के गुणों का बढ़ा चढ़ाकर वर्णन कर दो, आप मालामाल हो जायँगे।" इस बात का उनकी पत्नी ने भी अनुमोदन किया। पत्नी तथा साले के बहुत बल देने पर पंडितजी ने भी स्वीकार कर लिया। रात्रि में वे लेखनी लेकर ज्यों ही बैठे त्यों सम्मुख वे क्या देखते हैं, कि कविता देवी उनके सम्मुख पुत्री का वेष बनाये खड़ी है और रो रही है।"

कवि ने पूछा—"पुत्रि ! तुम रोती क्यों हो ?

कविता कुछ बोली नहीं रोती ही रही रोती ही रही।

कवि के बहुत आग्रह करने पर रोते रोते कविता देवी ने कहा—"आप तो मुझे विष्णु को अर्पण करते थे, अब आपने मुझे एक विषयी को देने का निश्चय क्यों किया है ?"

इतना सुनते ही कवि की आँखें खुल गयी। उसी समय उसने एक बड़ी ही हृदयग्राही करुणापूर्ण कविता लिखी। उसका सार यही है—"कि हे देवि ! मैं दरिद्रता के कारण कर्तव्य च्युत होने जा रहा था, तैंने मुझे सचेत कर दिया। मैं तुझे अयोग्य के हाथों कभी न दूँगा मैं विषयी से तेरा पाणिग्रहण न कराऊँगा। मैं अवांछनीय पुरुष को तुझे न सौंपूँगा। जिसके हाथ में शङ्ख, चक्र, गदा पद्म है उसी के निमित्त तुझे दूँगा, मैं तुझे ऊपर से सजा बजाकर लोभवश बाजारू न बनाऊँगा, मैं तुझे विष्णु प्रिया ही बने रहने दूँगा।"

सारांश यह है कि प्राकृत पुरुषों के गुणगान करने से गिरा सिर धुनधुन के पछताती है, कि मैं किस असभ्य के पाले पड़ी। कविता में भले ही सभी सद्गुण विद्यमान हों वह ललित, श्रुत मधुर, यमक अनुप्रास युक्त भी क्यों न हो यदि उसमें गोविन्द

नहीं गाये गये हैं तो वह व्यर्थ है, परमहंस ज्ञानी पुरुष उनका आदर नहीं करते। इसके विरुद्ध जो कविता भले ही अशुद्ध भी क्यों न हो, उसमें अक्षर मात्रा, पद, दीर्घ, ह्रस्वादि अनियमित तथा असम्बद्ध भी क्यों न हो यदि उसमें श्री अनन्त भगवान् के गुणों का गान किया गया है, श्यामसुन्दर की ललित लीलाओं का वर्णन है, तो भक्तगण उसे बड़े चाव से पढ़ते तथा सुनते हैं, अच्युत प्रिय गायक उसकी पुनः पुनः सराहना करते हुए आनन्द में विभोर होकर गाते हैं और परम सुखका अनुभव करते हैं, क्योंकि वह रचना जनता के पाप पुञ्जों को नष्ट करने में सर्वथा समर्थ है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! जो आत्मकाम आत्माराम ज्ञानी पुरुष हैं, जो आत्मा में ही रमण करते हैं, जिनके लिये कोई कर्तव्य ही नहीं रहा जिन्होंने अग्नि का सर्वथा त्याग कर दिया है जो अक्रिय बन गये। उनके लिये तो भगवत् कथा लीला सुनने को कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। ऐसे ज्ञानी तो भगवान् की भक्ति न करते होंगे ?"

हँसकर सूतजी ने कहा—"भगवन्! मेरे गुरु भगवान् शुकदेव से बढ़कर कौन ज्ञानी होगा, उन्हें तो स्त्री पुरुषों में भी कोई भेद दिखायी नहीं देता था। उन्होंने स्वयं कहा है मैं निर्गुण ब्रह्म में परिनिष्ठित भी हूँ तो भी उत्तमश्लोक भगवान् श्याम सुन्दर के गुण ऐसे आकर्षक हैं, कि उन्होंने मुझे बलपूर्वक अपनी ओर खींच लिया निर्ग्रन्थ आत्माराम पुरुष भी भगवान् में भक्ति करते हैं क्योंकि भगवान् के गुण हैं ही ऐसे लुभावने। इसी लिये कहा है कि इस आत्मज्ञान में भले ही कर्मों का सर्वथा अभाव भी है, निर्दोष तथा पूर्ण भी है फिर भी यदि वह ज्ञान भगवद् भक्ति से शून्य है तो वह उसी प्रकार शोभा नहीं देता जैसे विधवा के मस्तक पर सिंदूर का तिलक अथवा हाथ में शङ्ख की चूड़ियाँ।

आत्मज्ञान नो वही प्रशंसनीय है जो भक्तिरस से परिप्लावित हो।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! मीमांसकों के कर्म में तो भगवद्भक्ति की आवश्यकता नहीं। जैसे वे स्वर्ग की कामना से यज्ञ करते हैं, उसी कर्म के द्वारा उन्हें स्वर्ग मिल जाता है उसमें तो भक्ति की अपेक्षा नहीं।"

सूतजी बोले—"महाराज ! भक्तिहीन कर्म तो बन्धन कारक है, स्वर्ग का बन्धन हो या नरक का दोनों ही बन्धन समान हैं। भगवत् भक्त कर्म का निषेध नहीं करते हैं, वे कहते हैं, तुम नित्य नैमित्तिक, काम्य तथा और भी समस्त कर्मों को करो, किन्तु उनके फल को भगवान के लिये अर्पण कर दो। यदि कर्म भगवान् के निमित्त नहीं है, तो करते समय भी उसमें अत्यन्त क्लेश उठाना पड़ेगा और उसका फल भी क्षुद्र होगा पुण्य क्षीण होने पर फिर यहीं आना होगा। इसलिये वह साधन काल में तथा फल काल में दुःख ही दुःख देगा, इसके विपरीत जो भगवान् के निमित्त कर्म किया जायगा और करके भी भगवान् के ही अर्पण कर दिया जायगा, तो करते समय भी फल की इच्छा न रहने से दुख न देगा और भगवान को अर्पण करने पर तो वह अक्षय और अनन्त ही बन जायगा। भगवान् आप ही सोचिये जब नैष्कर्म्य निर्दोष पूर्ण आत्मज्ञान भी भगवद्भक्ति से शून्य शोभित नहीं होता तो जो कर्म अदृढ़ है वह भक्ति से विहीन शोभा कैसे पा सकता है उससे सुख शान्ति की प्राप्ति कैसे हो सकती है ?"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! वर्णाश्रम धर्म में तो भक्ति की कोई आवश्यकता नहीं, उसमें तो कर्तव्य की ही प्रधानता है मोक्ष तो वर्णाश्रम धर्म के पालन से भी हो ही सकती है, फिर भक्ति में क्या विशेषता है ? कृपा करके हमारे इस प्रश्न का उत्तर दीजिये।

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज ! मैं आपके इस प्रश्न का उत्तर देता हूँ, आप का प्रश्न बहुत ही उत्तम है।

छप्पय

मिलै न छंद प्रबन्ध न उपमा अनुप्रास गुन।
यमक न मात्रा शब्द मिलैं नहिँ तुक सब अवगुन॥
रहैं श्याम के नाम सुयश गुन यदि मन भावन।
तो वह अघहर छन्द गाइ होवै जग पावन॥
भगवद्भक्ति विहीन यदि, होहि ज्ञान करमनि रहित।
नहिँ फल हरि अरपित किये, उत्तम नहिँ सो दुख सहित॥

—:०:—

भक्तिहीन वर्णाश्रम धर्म अशोभन है

(१३८२)

यशः श्रियामेव परिश्रमः परो

वर्णाश्रमाचारतपः श्रुतादिषु ।

अविस्मृतिः श्रीधरपादपद्मयो-

गुणानुवाद श्रवणादिभिर्हरेः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ५३ श्लो०)

छप्पय

तप चरनाश्रम धरम-आचरन श्रीयश देवें।
प्रभु-पद सुमिरन सतत होहि तिनि जे हरि सेवें॥
हरि लीला गुन श्रवन नित्य हरि भक्ति बढ़ावें।
इस्मृति हरि-पद रहे अमङ्गल सकल नसावें॥
करें शान्त विस्तार नित, चित्त शुद्धि होवे अवसि।
भक्ति, ज्ञान, वैराग्य, मिलें होहिँ हिय प्रभु परसि॥

वर्णाश्रम धर्म एक श्रद्धामय कर्तव्य परायणता से युक्त सीधा

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! वर्णाश्रमाचार, तप और वेदादि में महा परिश्रम इन सबसे यश और लक्ष्मी की ही प्राप्ति होती है, किन्तु श्रीधर भगवान् के पादपद्मों की निरन्तर स्मृति तो श्रीहरि के गुणानुवाद श्रवणादि से ही रह सकती है।"

सब साधारण को अपने गन्तव्य स्थान पर ले जाने वाला सर्वोपयोगी सुन्दर मार्ग है। यदि आप उसका आश्रय लेकर आँख मूँद कर चलोगे, तो देर सवेर कभी न कभी अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच ही जाओगे।। इसीलिये प्राचीन महर्षियों ने वर्णाश्रम धर्म पर बड़ा बल दिया है। वर्णाश्रम धर्म मे दो बातें हैं एक तो धर्म एक आजीविका के लिये वृत्ति। जिसकी वृत्ति शुद्ध न होगी वह धर्म का पालन कर ही नहीं सकता। इसीलिये वर्णाश्रम धर्म वृत्ति प्रधान धर्म है। धर्म पालन का सम्बन्ध तो विशेष कर मन से है, किन्तु वृत्ति का सम्बन्ध तो कर्म से है। इसीलिये वर्णाश्रम धर्म में वृत्ति से ही वर्ण तथा जाति का निर्णय होता था। जैसे ब्राह्मण का धर्म तो है वेदों का पढना, दान देना, और यज्ञ करना। यदि ब्राह्मण इन तीनों धर्मों का पालन नहीं करता तो वह ब्रह्मत्व से गिर जाता है। अच्छा धर्म ही पालन करता रहे, तो खाय क्या? इसके लिये तीन उसकी वृत्ति हैं। वह यज्ञ कराके जो दक्षिणा मिले उससे निर्वाह करे। दक्षिणा दान से भिन्न वस्तु है दक्षिणा एक प्रकार का पारिश्रमिक है। हमने यज्ञ कराने में परिश्रम किया; आपने उसके बदले हमें कुछ द्रव्य दे दिया। यह ब्राह्मण की उत्तम वृत्ति है। दूसरी वृत्ति है अध्यापन। जो ज्ञान हमने प्राप्त किया है उसको छात्रों को दें और छात्र जो भिक्षा माँगकर लावें उसमें से अपने को निकालकर शेष उन्हें दे दें, इस प्रकार अपनी वृत्ति चलाना यह ब्राह्मण की मध्यम वृत्ति है। यदि इससे भी काम न चले तो जो लोग दान करते हों उस योग पात्र के दान से निर्वाह करना यह ब्राह्मण की अधम या निकृष्ट वृत्ति है। दान लेने की प्रशंसा नहीं है, स्थान स्थान पर उसकी निन्दा ही की गयी है, ब्राह्मण को दान लेना ही चाहिये यह आवश्यक नहीं, जब अन्य वृत्ति से कार्य न चले तो वह दान ले सकता है। इसी प्रकार क्षत्रिय का वेद पढना, यज्ञ करना, दान देना और प्रजा की रक्षा

करना ये चार तो धर्म हैं और प्रजा से कर लेकर उससे निर्वाह करना यह उसकी वृत्ति है। ऐसे ही वेद पढ़ना, यज्ञ करना, दान देना ये वैश्य के धर्म हैं और धर्म पूर्वक खेती कराके, गौओं का पालन कराके तथा व्यापार करके आजीविका चलाना ये उसकी जीवन निर्वाह की वृत्तियाँ हैं। शूद्र का सेवा करना धर्म भी है और सेवा से ही जीवन निर्वाह करना यही उसकी वृत्ति है। जो अपने वर्णोपयोगी धर्म का पालन करता हुआ धर्मपूर्वक अपनी ही वृत्ति से अपना निर्वाह करता है उसे इस लोक में यश मिलता है और परलोक मे उसे पुण्य लोकों की प्राप्ति होती है। वर्णाश्रम धर्म से उत्तमोत्तमलोक मिल सकते हैं उससे परम्परया मुक्ति भी मिलती है, किन्तु साक्षात् रूप से उससे मुक्ति नहीं मिलती। मुक्ति या भगवत् प्राप्ति तो ज्ञान तथा भक्ति से ही मिलती है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! कोई आदमी चाहे कि हम केवल कर्म करके ही उत्तम सुख को प्राप्त कर लें यह असम्भव है। आप कर्म करते हैं, तो उसमें परिश्रम होता है चिन्तायें होती हैं, नाना साधन जुटाने पड़ते हैं, इन सब कारणों से कर्मों के करते समय भी दुःख होता है, और उनसे जो उत्तम लोक प्राप्त होते हैं, उनमें पतन आदि की चिन्ता, असाम्य और निरतिशय दोष होने से फल काल में भी दुख ही होता है। यही बात वर्णाश्रम धर्म के सम्बन्ध मे है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! वर्णाश्रम धर्म को आप इतना हेय क्यों बता रहे हैं ?"

शीघ्रता के साथ सूतजी ने कहा—"भगवन् ! मेरा आशय वर्णाश्रम धर्म की निंदा में नहीं है। मेरा एकमात्र उद्देश्य तो भक्ति की श्रेष्ठता दिखाना है। आप ही विचार करें। वर्णाश्रम धर्म एक क्रमिक मार्ग है। जैसे कोई शूद्र है, वह धर्मपूर्वक गृहस्थ धर्म का पालन करता है। धर्म मानकर द्विजातियों की सेवा में जुटा रहता

है, तो उसकी इस लोक में प्रशंसा होगी, मरकर उसे स्वर्ग मिलेगा। स्वर्ग सुख भोग लेने पर उसे दूसरी योनि वैश्य की प्राप्ति होगी। केवल वर्णाश्रम धर्म के ही पालन से वह शूद्र योनि से कभी मुक्ति लाभ नहीं कर सकता। इसी प्रकार वैश्य जन्म में विधिवत् ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करके फिर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे और अपने धर्म का पालन करते करते शरीर त्याग करे तो स्वर्गलोक में सुख भोगकर दूसरे जन्म में वह क्षत्रिय होगा। यदि वैश्य स्वधर्म को छोड़कर वानप्रस्थ या सन्यासी धर्म का पालन करे तो वह पतित हो जायगा। शूद्र के लिये एक आश्रम और वैश्य के लिये दो आश्रम तथा क्षत्रिय के लिये तीन आश्रम है। क्षत्रिय ब्रह्मचर्याश्रम के अनंतर गृहस्थाश्रम में प्रवेश करे प्रजा का पालन करे, अंत में सर्वस्व त्यागकर वन में रहकर कंदमूल फल खाकर निर्वाह करे, तपोमय जीवन बितावे। इस प्रकार स्वधर्म का पालन करते करते मरे तो उसे तपलोक तक की प्राप्ति हो सकती है। तप लोक के सुखों को भोगकर अंत में उसे ब्राह्मण योनि मिलेगी। केवल प्रथम वर्ण ब्राह्मण के ही लिये चतुर्थ आश्रम सन्यास का अधिकार है। यदि वह चारों आश्रमों का सत्यता के साथ विधिवत् पालन करे सन्यासी बनकर विधिवत् सन्यास धर्म को निभावे तो उसके प्रभाव से उसे सत्यलोक की प्राप्ति होगी। क्योंकि वर्णाश्रम धर्म का फल उत्तम से उत्तम लोकों की प्राप्ति ही है। सत्यलोक यदि पुण्य कर्मों से प्राप्त हुआ है तब तो उससे भी पुनरावृत्ति हो सकती है। यदि त्याग से-सन्यास से-प्राप्त हुआ है तो वहाँ ब्रह्माजी उसे ज्ञान देते हैं, उस ज्ञान से मुक्ति होती है। वर्णाश्रम धर्म में सन्यास का अधिकार केवल ब्राह्मण को है। इस प्रकार वर्णाश्रम धर्म का फल है यश और श्री की प्राप्ति कराना। शूद्र, वैश्य अथवा क्षत्रिय चाहे हम वर्णाश्रम धर्म के ही द्वारा अपने वर्ण में रहकर मुक्ति प्राप्त कर सकें यह असम्भव है। यदि वह

अपने धर्म को छोड़कर परधर्म-ब्राह्मण धर्म-का आचरण करता है तो वह उसके लिये भयावह है। हाँ यदि वह अपने वर्णमें रहकर भी भक्तिमार्ग का अनुसरण करे। श्रीहरि के गुणानुवादों को श्रवण करता रहे, भगवान् के नामों का गुणों का कीर्तन करे, उनका स्मरण वन्दन करे। उनमें दास्यभाव सख्यभाव या मधुर भाव रखकर उनकी सेवा करे आत्म समर्पण कर दे, तो वह अपने वर्ण में रहकर भी आवागमन से छूट सकता है। भक्ति मार्ग न तो वर्णाश्रम धर्म की उपेक्षा ही करता है। निष्काम भाव से तुम जिस वर्ण में हो, जिस आश्रम में हो वहीं रहकर उस वर्णाश्रम के धर्म का पालन करो किन्तु श्रीधर भगवान् के चरण-कमलों का निरंतर स्मृति रखना यह आवश्यक है। वह स्मृति रहती है सत्संग करने से भगवान् की कथाओं के श्रवण से तथा अन्यान्य नवधाभक्ति के आचरण करने से। अतः भगवान् की कथा सुनना परमावश्यक है। भक्तिमार्ग का पथिक सत्सङ्ग भगवत् कथा का बिना आश्रय लिये इस पथ में एक पग भी नहीं बढ़ सकता।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! भगवत् स्मृति से क्या होता है ?"

हँसकर सूतजी बोले—"महाराज ! क्यों ऐसी भोली भाली बात पूछ रहे हो। यदि भगवत् स्मृति से कुछ होता ही नहीं तो आप सब कुछ छोड़कर निरन्तर कथा ही क्यों सुनते रहते ? भगवन् ! यदि श्रीकृष्ण चन्द्र भगवान् के चरणारविन्दों की निरन्तर स्मृति बनी रहे, तो जीव के समस्त अमङ्गलों को वह उसी प्रकार भस्मसात् कर देती है, जिस प्रकार प्रज्वलित अग्नि ईंधन का नाश कर देती है। यह मनुष्य प्राणी सर्वदा अशान्त क्यों बना रहता है ? इसीलिये न, कि यह सदा अंट की संट सोचता रहता है। इन क्षण भंगुर नश्वर पदार्थों के ही लिये चिन्तित

रहता है, सदा यह आ जाय वह आजाय इसी का विचार करता रहता है। नश्वर पदार्थ आज आये कल नाश हो गये। मृगमरीचिका के जल से कहीं प्यास बुझती है। ये संसारी पदार्थ अशाश्वत हैं इनके चिंतन से शाश्वती शान्ति कैसे मिल सकती है। यदि मनुष्य इन अनित्य अशाश्वत अशान्तिकर पदार्थों का चिंतन छोड़कर नित्य शाश्वत, एक रस श्री भगवान् के चरणारविन्दों का चिंतन करे, उन्हीं की स्मृति में सदा निमग्न रहे, तो उसे शान्ति की प्राप्ति होगी। उसके चारों ओर शान्ति का ही साम्राज्य हो जायगा।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! आप बात तो सुन्दर कह रहे हैं, किन्तु महानुभाव जब तक शास्त्रोक्त प्रायश्चित्तादि करके चित्त शुद्ध नहीं होता, तब तक सभी साधन व्यर्थ से हैं।"

सूतजीने कहा—"महाराज! भक्तिमार्ग में ये उपवासादि काया क्लेश कर प्रायश्चित्त आवश्यक नहीं। यहाँ तो कथा श्रवण नाम संकीर्तन आदि को करते करते स्वतः ही चित्त शुद्ध हो जाता है। आप ही सोचें चित्त में अशुद्धि क्या है। इन असद् अपवित्र विषय भोगों का स्मरण भर गया। इनके स्मरण को विस्मरण करके उसका स्थान श्रीकृष्णचन्द्र के चारु चरणारविन्दों को दे दिया जाय, तो चित्त तो अपने आप ही विशुद्ध बन जायगा। प्रायश्चित्तादि से किया हुआ चित्त तो कभी फिर मलिन हो भी सकता है किन्तु जिस चित्त में चित चोर के चरणारविन्द समा गये उसको तो फिर कोई वहाँ से हटा ही नहीं सकता।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! कुछ भक्तिभाव हृदय में हो तब तो ऐसा किया जाय?"

सूतजी बोले—"महाराज! ईश्वर भक्ति भी इसी श्रवण कीर्तनादि से हो जाती है। यही साध्य भी है और यही साधन भी। भगवत् कथा श्रवण, कीर्तन तथा स्मरणादि साधन करते करते ये

अभ्यास में आ जाते हैं। जब तक करने में कठिनता हो, मनको हठपूर्वक लगाना पड़े तब तक यह उपाय साधन है, जब अपने आप ये कार्य होने लगें। श्रवण कीर्तन स्मरण, पादसेवन, दास्यादि में स्वतः आनन्द आने लगे इसके बिना रहा ही न जाय यही साध्य स्थिति है। ईश्वर भक्ति तो करते करते स्वतः ही प्राप्त हो जाती है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! भक्ति भले ही प्राप्त हो जाय, किन्तु ज्ञान वैराग्य तो श्रवण कीर्तन से प्राप्त नहीं हो सकता?"

हँस कर सूतजी बोले—"महाराज! जो कलियुगी नीच पुत्र होते हैं वे माता को भले ही छोड़ दें, किन्तु सत्पुत्र तो सदा माता का साथ देते हैं, माता की सेवा करते हैं, उसके संकेत पर नाचते हैं। ज्ञान वैराग्य तो भक्ति के पुत्र हैं, जहाँ भगवत् भक्ति आयी तहाँ अनुभव ज्ञान तथा वैराग्य के सहित तत्वज्ञान हाथ बाँधे वहाँ आकर उपस्थित हो जाते हैं। इसलिये महाराज इन सब के लिये प्रयत्न न करके निरंतर भगवत् कथाओं के श्रवण तथा कीर्तन आदि में ही श्रद्धा सहित लगे रहना चाहिये। इन साधनों के अतिरिक्त परमश्रेय का अन्य कोई निष्कंटक सरल सुगम साधन नहीं है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! क्या बतावें हम तो इस यज्ञ याग में लग गये, हमारे मनमें भगवान् की भक्ति उदय नहीं होती?"

आँखों में आँसू भरकर सूतजी बोले—"अजी, महाराज! आप अपनी न कहें। आप सब लोग धन्य हैं। आप सबके समान बड़भागी संसार में कौन होगा। भगवन्! यज्ञ याग तो लोक संग्रह के निमित्त करने ही चाहिये। यज्ञ, दान तपस्या यह तो मनुष्यों को पावन बनाने वाले साधन हैं। किन्तु आपका लक्ष्य याग यागों द्वारा स्वर्ग प्राप्त करना तो है ही नहीं। आप तो अपने

अन्तःकरण में उन अच्युत अखिलेश अजन्मा श्री हरि को विठाये हुए हैं, जो सभी के शासक हैं, जिनका कोई दूसरा शासन कर्ता नहीं। जो सर्व स्वतन्त्र है जो सर्वान्तर्यामी हैं, जिनका बलवीर्य अकोच है जो सबके नियामक हैं, सर्व शक्ति मान हैं। आपने अपने हृदय में दृढ़ता से उन सर्वेश्वर को स्थापित कर रखा है, आपकी बराबरी भला संसार में कौन कर सकता है। परमार्थ पथ के पथिक आपका ही पदानुसरण करके इस अपार संसार सागर से सरलता के साथ पार जा सकेंगे। भगवन्! आप सब साधारण मनुष्य नहीं। आप तो तरणतारण हैं आपकी मैं कहाँ तक बड़ाई कर सकता हूँ।"

शौनकजी ने कहा—'सूतजी! इस ग्रन्थ के श्रवण का फल तो हमने आपसे बार बार सुना, किन्तु किसी विशेष स्थान में विशेष प्रकार से इसके सुनने का कुछ विशेष फल हो तो बताइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, इसके श्रवण में जो कुछ विशेषता है उसे मैं सुनाता हूँ, आप सब सावधान होकर श्रवण करें।"

छप्पय

बड़भागी सब आपु कहाँ तक करूँ बड़ाई।
तजि सब जगत प्रपञ्च कृष्ण पद भक्ति दृढ़ाई॥
निन्दा इस्तुति त्यागि भजन में चित्त लगायौ।
तुमने ही मुनिवृन्द मनुज जीवन फल पायौ॥
मैं हूँ अतिशय धन्य हूँ, तुमरी संगति पाइकें।
करया कृतारथ कुमति हू, हरि यश यादि दिवाइकें॥

—::○::—

विशेष स्थानों में भागवत श्रवण माहात्म्य

(१३८३)

पुष्करे मथुरायां च द्वारवत्यां यतात्मवान् ।
उपोष्य संहितामेतां पठित्वा मुच्यते भयात् ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १२ अ० ६० श्लो०)

छप्पय

नृपति परीक्षित त्यागि राज गंगातट धाये।
भावी अति ई प्रबल तहाँ मम गुरु शुक आये॥
हौं हूँ पहुँच्यो तहाँ कथा गुरुदेव सुनाई।
सकल मुनिनि नृप संग सुनी मैंने सुखदाई॥
श्रीगुरु मुखतें जो सुनी, कही जथामति सो सकल।
कलि कलमष नाशन निमित, अनंत सरित यह अति विमल॥

साधारण देश में साधारण काल में सर्व साधारण पुरुष जैसा कार्य करते हैं, उसका साधारण ही फल होता है। यदि गंगा तट अथवा पुण्य पवित्र प्रदेश में, अमावस्या पौर्णिमा, संक्रान्ति तथा

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! यदि जितेन्द्रिय होकर इस भागवती संहिता का पुष्कर में, मथुरा में अथवा द्वारकापुरी में जो उपवास पूर्वक इसका पाठ करता है, वह सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है।"

व्यतीपात आदि पुण्यकाल में और शान्त, दान्त, उत्साही शुद्ध अन्तःकरण वाले कर्तांद्वारा किये हुए उन्हीं कार्यों में विशेषता हो जाती है। इसीलिये सभी कार्यों में देश, काल तथा पात्रता की शुद्धि पर बड़ा ध्यान दिया जाता है। श्रीमद्भागवत को जो भी पढ़े, जहाँ भी पढ़े, जिस समय चाहे पढ़े लाभ ही लाभ है, किन्तु शुद्ध अन्तःकरण से, नियम व्रत तथा उपवास पूर्वक पुण्य पवित्र देश में एकादशी द्वादशी तिथियों में तथा श्रावण, भाद्रपद वैशाख तथा कार्तिक आदि पवित्र महीनों में जो अनुष्ठान पूर्वक पढ़ता है उसका फल विलक्षण ही होता है।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो मैंने यह परम पावन भागवती संहिता भाद्रपद मास में गंगाजी के तट पर नियम पूर्वक महात्माओं की सन्निधि में अपने गुरुदेव भगवान् शुक के मुखारविन्द से सुनी थी।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! गंगाजी तो हस्तिनापुरके समीप भी थीं, महाराज परीक्षित अपने नगर के समीप की गंगाजी को छोड़कर ८-१० कोश दूर शुकाश्रम पर उपवास करने क्यों गये?"

इस पर सूतजी बोले—"महाराज! यह सत्य है, कि गंगाजी हस्तिनापुर के नीचे ही बहती थीं, किन्तु भगवन्! पुण्य पवित्र तीर्थों में जहाँ ऋषि मुनियों ने व्रत अनुष्ठान जप तप किये हों वहाँ का वातावरण अत्यन्त सात्विक तथा निर्मल होता है, वहाँ पाठ, जप, तप तथा अनुष्ठान करने से विशेष फल होता है। जहाँ महाराज परीक्षित् ने कथा सुनी थी वह हरिद्वार के समीप ही है, हरिद्वार के पर्वत वहाँ से दिखाई देते हैं, उसका पहिले "आनंद तट" नाम था। ऋषि महर्षि वहाँ रहते थे, नारदजी ने इसी स्थान पर सनकादि महर्षियों से श्रीमद्भागवत का सप्ताह सुना था। यहीं बूढ़े ज्ञान वैराग्य युवक हुए थे और यहीं भगवती भक्ति ने

हरि पार्षदों के साथ महा संकीर्तन में नृत्य किया था इसलि
यह सिद्ध क्षेत्र माना जाता था, श्री भागवत सप्ताह यज्ञ यहीं
आरम्भ हुआ। इस क्षेत्र की पवित्रता के ही कारण महाराज
अपने नगर के निकट उपवास व्रत न करके यहाँ आकर किय
था और यहीं दैवयोगसे सत्यवती नन्दन व्यासके पुत्र पधारे उन्हों
महर्षियों के बीच में राजा को सात दिन में कथा सुनायी, तभ
से इस आश्रम का नाम शुकाश्रम पड़ गया। इसी के सम्मुख

उस पार महाभागवत विदुर जी की कुटी है। शुक-आश्रम परम
पवित्र है। महाराज परीक्षित यहीं कृतकृत्य हुए थे। मैंने भी
परमर्षियों की सभा में राजा के साथ ही साथ परमर्षि शुकाचार्य

से प्रथम बार ही यह दिव्य भागवती कथा सुनी थी। चिरकाल से इसकी आवृत्ति न होने से मैं कुछ कुछ भूल-सा गया था, किन्तु मुनियो ! आप धन्य हैं, कि आप तो कथा सुनकर धन्य हुए ही, मुझे भी धन्य बना दिया, मुझे भी गुरुमुख से विश्रुत उस आत्म तत्व का स्मरण करा दिया।"

शौनकजी ने कहा--सूतजी ! हमने क्या स्मरण करा दिया आपकी कृपा से हमारा इतना समय बड़े ही सुख से कट गया। "अब न जाने मन किधर भटकेगा।"

सूतजी ने कहा--"भगवन ! आप सब तो जन्म सिद्ध महापुरुष हैं, आपका चित्त तो सदा भगवत् चिन्तन और स्मरण में ही लगा रहता है। किन्तु जो भी कोई इस भागवती संहिता को एक प्रहर अथवा एक क्षण भी अनन्य भाव से सुनता है चित्त को इधर उधर न जाने देकर इसी में चित्त लगाये रहता है, श्रद्धा और विश्वास के साथ सुनता है, उसका चित्त अवश्य ही पवित्र हो जाता है। चित्त को पवित्र करने के लिये साधकों के लिये भागवती कथा 'भागवत चरित' तथा मूल संहिता पाठ से पढ़कर उत्तम कोई साधन ही नहीं। जो इस मूल संहिता का अखंड पाठ करते हैं, उनकी अकाल मृत्यु नहीं होती, वे दीर्घायु हो जाते हैं।

शौनकजी ने पूछा--"अखंड पाठ कैसे करें सूतजी ?"

सूतजी बोले--महाराज ! एकादशी को त्रिव्रता कहा है। इसमें दशमी के सायंकाल को पूरी एकादशी को और द्वादशीकी रात्रि में भोजन नहीं किया जाता। जो लोग स्मार्त पद्धति से एकादशी व्रत करते हैं, उनकी द्वादशी में पारणा होती है और जो द्वादशी का व्रत रखते हैं, उनकी त्रयोदशी में पारणा होती है। चाहे एकादशी का व्रत हो अथवा द्वादशी का प्रातःकाल अरुणोदय में संक्षिप्त नित्य नियम करके पाठ में बैठ जाय, किसी शारीरिक क्रिया को उठना हो तब तो उठे नहीं तो

निरन्तर पाठ ही करता रहे। रात्रि में सोवे भी नहीं। दूसरे दिन द्वादशी अथवा त्रयोदशी को जब भी पाठ समाप्त हो जाय, तभी व्रत की पारणा करे। जो ऐसा करता है, वह सभी पापों से छूट जाता है, जिसमें पढ़ने की सामर्थ्य न हो, तो दूसरे से पाठ करा कर उसे सुनता ही है, तो वह भी दीर्घायु की प्राप्ति करता है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! दो दिन उपवास तथा जागरण करके पाठ करने की सामर्थ्य न हो तो क्या करे?"

सूतजी ने कहा—"तब महाराज! सात दिनों में सुने, सात दिन में सुनने से सुगमता होती है। एकाहार, फलाहार, दुग्धाहार, पंचामृत पान, पयपान अथवा निराहार आदि नियम लेकर वह भागवत का श्रवण करे। पाठ करना हो तो निराहार रहकर सात दिन में पाठ करे।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! पाठ करने को कौन-सा स्थल उत्तम है?"

सूतजी बोले—"महाराज! सभी स्थल उत्तम हैं। बदरीवन, शुकाश्रम, हरिद्वार, नैमिषारण्य, मथुरा, वृन्दावन, गोवर्धन, काशी, प्रयाग तथा अन्य सभी पुराण कथित तीर्थ पाठ करने को उत्तम स्थल हैं, किन्तु तीन स्थानों में उपवास पूर्वक पाठ करने का विशेष माहात्म्य है।"

शौनकजी ने पूछा—"वे तीन स्थल कौन कौन से हैं सूतजी!"

सूतजी बोले—"महाराज! उन तीनों के नाम पुष्कर, मथुरा अथवा द्वारावती हैं। पुष्कर में ब्रह्माजी ने आदि सृष्टि की। वहीं से सृष्टि चक्र चला इसलिये यह सभी तीर्थों का गुरु है। मथुरा में आनन्द कन्द, श्रीभागवत के प्रधान नायक श्री कृष्ण चन्द्र भगवान् अवतरित हुए इसीलिये भगवान वहाँ नित्य सन्निहित

रहते हैं। द्वारावती में भगवान् ने अपनी उत्तर लीला की। मथुरा से भागकर वहीं निवास किया वहाँ भी भगवान् की नित्य सांनिधि है। इन तीनों परम पावन पुरियों में जो जितेन्द्रिय होकर उपवास पूर्वक श्रीभागवत का पाठ करते हैं, वे सभी प्रकार के संकटों से छूट जाते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इन तीनों पुराणों में क्या विशेषता है ?"

सूतजी बोले—"भगवन् ! पुष्कर का माहात्म्य अनन्त है, इसे तो फिर कभी बताऊँगा। किन्तु यहाँ इतना ही समझ लीजिये कि पुष्कर गायत्री की जननी है। यहीं पर गायत्री देवी का ब्रह्माजी के साथ विवाह हुआ यह पौराणिक कथा बहुत बड़ी है। संक्षेप में कथा यों है, कि पुष्कर में ब्रह्माजी ने एक बड़ा भारी यज्ञ करने का विचार किया। यज्ञ का मुहूर्त आ गया था, किन्तु तब तक सरस्वती देवी आयी ही नहीं। बिना पत्नी के यज्ञ कैसे हो यज्ञ का समय निकल रहा था, इसलिये देवता एक कन्या को ले आये ब्रह्माजी का उनके साथ विवाह करके उनके साथ ही ब्रह्मा जी ने यज्ञ की दीक्षा ली। ये ही देवी गायत्री के नाम से प्रसिद्ध हुईं।"

यह श्रीमद्भागवत गायत्री का भाष्य ही है। चौबीस अक्षर वाली गायत्री का ही विस्तार श्रीमद्भागवत के द्वादश स्कन्धों में किया गया है। फिर सृष्टि का आदि स्थान भी है। इसी विशेपता के कारण पुष्कर में और विशेषकर कार्तिक में इसका बड़ा पुण्य है।

मथुरा में तो भगवान् ने जन्म ही धारण किया था। मथुरा पुरी का तो ग्रहण होता है, सम्पूर्ण माथुर मंडल भी लिया जा सकता है, व्रज में सर्वत्र इस संहिता के पाठ का बड़ा माहात्म्य है। इसी प्रकार द्वारका में भी निवास करके भगवान् ने गृहस्थो-

चित अनेकों कमनीय क्रीड़ायें कीं। द्वारावती के कण कण में भगवान् की अनन्त स्मृतियाँ सन्निहित हैं। वहाँ के वायु मंडल में वे सब अब भी विद्यमान हैं, इसलिये इन तीनों पुरियोंका अनंत माहात्म्य है।"

सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो मैं अभी कुछ भागवत माहात्म्य और भी वर्णन करूँगा। उसे आप सब समाहित चित्त से श्रवण करें।

छप्पय

प्रतिदिन समय निकारि भागवत चरित सुनिगे।
सुनिके सब नर नारि आसि चित विमल करिंगे॥
हरि बासर व्रत करैं प्रेमतें सब पढ़ि जावें।
आयु बढ़े अघ घटें अन्त में प्रभु-पद पावें॥
पुष्कर, मथुरा, द्वारका, काशी पुन्य प्रयाग थल।
पाठ करें तें भय छुटें, होंहि बुद्धि अतिशय विमल॥

—:०:—

भागवती कथा-कामधेनु है

(१३८४)

विप्रोऽधीत्याप्नुयात्प्रज्ञां राजन्योदधिमेखलाम् ।
वैश्यो निधिपतित्वं च शूद्रः शुद्धयेत पातकात् ॥*

(श्री भा० १२ स्कं० १२ अ० ६४ श्लो०)

छप्पय

शुद्ध चित्त तें मनुज गाइकें जाइ सुनावें।
तिनिके अति अनुकूल पितर, ऋषि, सुर ह्वै जावें ॥
सिद्ध, पितर, सुर, भक्त देहिँ इच्छित फल ताकूँ।
भुक्ति, मुक्ति, सब सिद्धि सहजमें मिलि हैं ताकूँ ॥
पढ़ भागवत चरित कूँ, ते सबई फल पाइँगे।
द्विज धी, नृप भू, वैश्य धन, शूद्र शुद्ध ह्वै जाइँगे ॥

ऋषि मुनियों के आश्रमों में कामधेनु रहती थी उसके द्वारा वे अपने समस्त मनोवांछित कार्यों को करते थे। वशिष्ठजी के आश्रम में कामधेनु थी, उससे उन्होंने महाराज विश्वामित्रजी को

---

* सूतजी कह रहे हैं—"मुनियो ! इस भागवत का अध्ययन करने से ब्राह्मण की बुद्धि बढ़ती है। क्षत्रिय को समुद्र पर्यन्त पृथिवी की प्राप्ति होती है। वैश्य बहुत सी सम्पत्ति का स्वामी हो जाता है और शूद्र सभी प्रकार के पापों से छूट जाता है।"

सेना के लाखों सैनिकों को सन्तुष्ट किया, उन्हें मनमाने भोग प्रदान किये। महर्षि जमदग्नि के आश्रम पर भी कामधेनु थी, उसके द्वारा उन्होंने हैहयवंशी महाराज सहस्रार्जुन के सभी सैनिकों का सभी भाँति सन्तुष्ट किया। महर्षि भरद्वाज के आश्रम पर भी कामधेनु थी, जिससे वे श्रीरामानुज भरतजी का स्वर्ग से भी बढ़कर सत्कार कर सके। भरतजी के सैनिक तो ऐसे अभूत पूर्व दिव्य सत्कार को पाकर यहाँ तक कहने लगे—"अब हम भरतजी की सेना में नहीं रहेंगे यहीं मुनि के आश्रम पर रहकर स्वर्गीय भोगों का उपभोग करेंगे। मुनि के आश्रम पर चार पैर की कामधेनु रहती थी, सद्गृहस्थियों के यहाँ दो पैर की कामधेनु अब भी रहती है। वह है सुलक्षणा गृहिणी। शास्त्रकारों ने गृहिणी को गृह कामधेनु कहा है। संसार में जिसे अपने मनोनुकूल प्रिय भाषिणी सुन्दर लक्षणों वाली जीवन की चिरसंगिनी गृहिणी प्राप्त है, उसके यहाँ सभी सुख विद्यमान हैं। कामधेनु तो नियम से सदाचार पूर्ण जीवन व्यतीत करने वाले सत्यवादी तपस्वियों के ही यहाँ रहती है और गृह कामधेनु भाग्यशाली पुण्यात्मा सद्गृहस्थों के ही घर में रहती है, किन्तु एक ऐसी कामधेनु है, जो गृहस्थ, विरक्त, राजा, रङ्क, ब्राह्मण, शूद्र सभी के घरों में समान रूप से रह सकती है और सभी को सुख शान्ति और सन्तोष प्रदान कर सकती है। उस कामधेनु का नाम है "भागवती कथा"।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो! श्रीमद्भागवत की कथा इस लोक में सभी सुखों को देने वाली है, मुनियो! मैं तो अल्पज्ञ हूँ, एक मुख वाला हूँ, मरणशील हूँ, यदि संकर्षणावतार भगवान् शेषजी जो सर्वज्ञ हैं, जिनके सहस्र मुख और दो सहस्र जिह्वायें हैं जो नित्य तथा अजर अमर हैं, वे भी यदि निरन्तर श्रीमद्भागवत के माहात्म्य को निरन्तर कहते ही रहें, तो पूर्णरूप से वे भी वर्णन

नहीं कर सकते। महानुभावो ! श्रीमद्भागवत में ऐसा रस है, कि स्त्री, पुरुष, बालक, वृद्ध तथा सभी श्रेणी के मनुष्य सन्तुष्ट हो

जाते हैं। आपको अपने इष्टदेव को सन्तुष्ट करने के लिये मंत्र जप या अन्य अनुष्ठान की आवश्यकता नहीं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! बिना मन्त्रानुष्ठान के देवता कैसे सन्तुष्ट हो सकते हैं ?"

सूतजी बोले—"बस, महाराज आप अपने इष्ट देव के सम्मुख श्रीमद्भागवत का केवल पाठ ही करते रहें। भागवत के श्लोक मंत्र ही हैं। पाठ करते करते देवता स्वयं ही आप को आप की इच्छित वस्तु प्रदान कर देंगे।"

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! किसी को ऐसा हुआ भी है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! बहुतोंको हुआ है। बिना पढ़े, बिना वेदान्त का अभ्यास किये बिना चान्द्रायणादि व्रत किये केवल भागवत के पुण्य चरित्रोंका पाठ करने से ही अनेकों सिद्ध हो चुके हैं। अभी कुछ ही दिनोंकी बात है। ऐसी ही एक घटना घट गयी।

शौनक जी ने पूछा—"सूतजी ! उस घटना को हमें अवश्य सुनाइये। ऐसे प्रत्यक्ष उदाहरणों से श्रद्धा बढ़ती है।"

सूतजी ने कहा—"मुनियो ! यह सतयुग, त्रेता, द्वापर की बात नहीं युधिष्ठिर या परीक्षित् के राज्य की भी बात नहीं बौद्ध हूण शक या म्लेच्छोंके शासनकी भी बात नहीं। अभी गुरुंडों के राज्य जाने के कुछ ही पूर्व की बात है। दक्षिण में पूना के निकट सितारा जनपद में एक वाई क्षेत्र है। वहाँ पर कृष्णा के तीर पर एक वृद्धा विधवा ब्राह्मणी रहती थी। उसके एक अनपढ़ पुत्र था। जिसका नाम नृसिंहा चार्य था। वृद्धा अत्यत निर्धन थी किसी प्रकार माँग जाँच कर अपना निर्वाह करती थी।"

एक बार सोमवती अमावास्या पड़ी। उस दिन मातायें किसी फल के सहित अश्वत्थ की १०८ परिक्रमा करती हैं, पूजन करती हैं। एक परिक्रमा करली एक फल रख दिया। इस प्रकार कोई भी फल हो १०८ फल उसमें आवश्यक होते हैं। कोई केला से करती हैं कोई आमसे कोई जामुनसे। जैसा समय हो, जैसी शक्ति हो, जैसी सुविधा हो।

उस वृद्धा के पास १०८ फल थे ही नहीं। न इतनी शक्ति ही थी, कि वह इतने फल क्रय कर सके। उसने कहा—"मैं बिना फल के ही १०८ प्रदक्षिणा कर लूँगी। अपने पुत्र को लेकर वह मन्दिर के समीप के अश्वत्थ वृक्ष के समीप गयी और आँखों में आँसू भरकर बोली—"तू मेरा ऐसा अयोग्य पुत्र हुआ कि १०८

फल भी नहीं जुटा सका। मुझे अश्वत्थदेव की बिना फल के ही प्रदक्षिणा करनी पड़ रही है।"

पुत्र ने कहा—"माँ! तू चिन्ता न कर। मैं १०८ श्रीमद्-भागवत रूप फल इन अश्वत्थ देव के अर्पण करूँगा।"

माँ यह सुनकर हँस पड़ी और बोली—"तुमसे अक्षर पढ़ना तो भली भाँति आता नहीं। श्रीमद्भागवत के १०८ पाठ क्या करेगा?"

दृढ़ता के स्वर में पुत्र ने कहा--"माँ! तू विश्वास कर मैं अवश्य ही अश्वत्थ देव को १०८ श्रीमद्भागवत रूप फल अर्पण करूँगा।"

माँ को अपने अपठित पुत्र की बात पर विश्वास नहीं हुआ। दूसरे दिन सबने देखा वह अठपित बालक श्रीमद्भागवत की पुस्तक लेकर वहाँ से दो कोश की दूरी पर कृष्णा नदी के किनारे धौम्य महाबलेश्वर में नृसिंह भगवान् के मन्दिर में बैठा है। उसे अक्षरों का ज्ञान था। अतः एक एक अक्षर पढ़ पढ़कर पाठ करने लगा। ऐसे उसने सूर्योदय से सूर्यास्त तक पाठ करके दो मास में समस्त श्रीमद्भागवत का एक पाठ पूरा किया। फिर तो भागवत ने उन पर कृपा की। दूसरा पाठ एक डेढ़ महीने में हुआ। इस प्रकार कई वर्षों में उसने १०८ पाठ पूरे किये। जो प्रत्यक्ष देव भागवत के रूप में हैं, वे ही देव अश्वत्थ तथा नृसिंह मन्दिर में बैठे उनकी कथा सुन रहे थे, वे प्रसन्न हो गये नृसिंह भगवान् ने कृपा की अब तो वे अर्थ भी करने लगे। इनके अर्थ ऐसे चमत्कार पूर्ण होते थे, कि बड़े बड़े महा महोपाध्याय उनकी कथा सुनने आते थे। धन की तो उन्हें कमी ही न रही। द्रव्य की वर्षा होती थी। इच्छानुसार लुटाते थे। समस्त महाराष्ट्र प्रान्त में उनका नाम छा गया। अब वे इस पृथिवी पर सशरीर नहीं हैं, किन्तु उनका अमल विमल धवल यश अब भी विद्यमान है। इस

प्रकार श्रीमद्भागवत के कीर्तन करने वाले पर देवता प्रसन्न होते हैं और उन्हें मनोवांछित फल देते हैं। श्रीमद्भागवत के सुप्रसिद्ध टीका कार श्रीधर स्वामीजी पर भी नृसिंह भगवान् ने कृपा की। इसके पाठ करने वाले पर देवता ही नहीं मुनि, सिद्ध, पितर, मनुष्य तथा नृपति गण सभी प्रसन्न हो जाते हैं। जो श्रीमद्भागवत को पढ़कर भावना से कथा करते हैं, वे संसारी पदार्थ के लिये दुखी नहीं होते।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! ब्राह्मण का तो मुख्य धर्म है, वेद पढ़ना। वेदों के अध्ययन से ही उसका ब्राह्मणत्व बना रहता है। वेदों के बिना पढ़े तो उसे किसी भी शास्त्र के पढ़ने का फल नहीं मिलता।"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज यह सत्य है, कि ब्राह्मण का मुख्य कर्म निष्काम भाव से वेदों का पठन पाठन ही है। शास्त्रों में बताया है कि ऋग्वेद के अध्ययन से मधु की नदी मिलती है। यजुर्वेद के पढ़ने से घृत की नदी और सामवेद के अध्ययन से दूध की नदी मिलती है। वेदत्रयी के अध्ययन का माहात्म्य है; किन्तु श्रीमद्भागवत में तो सम्पूर्ण वेद और शास्त्रों का सार सिद्धान्त निहित है। अतः जो फल वेदों के अध्ययन से मिलता है, वही फल इस भागवती संहिता के अध्ययन से भी मिलता है। भगवन् मैं अधिक क्या कहूँ, गीता आदि में साक्षात् श्री भगवान् ने अपने श्रीमुख से जिसे परमपद कहा है, परागति कह कर जिसका वर्णन किया है, वह पद इस पुराण संहिता को एकाग्रचित्त से पढ़ने पर सहज में ही प्राप्त हो जाता है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी! इसके अध्ययन से सबको एक-सा ही फल प्राप्त होता है, या पात्र भेद से फल में भी भेद हो जाता है।"

सूतजी बोले—"हाँ, भगवन् ! पात्र भेद से भावना भेद से—फल में भिन्नता हो जाती है। जैसे ब्राह्मण है, उसे सर्वथा मेरी बुद्धि शुद्ध रहे यही चिन्ता रहती है। वह निरन्तर गायत्री मन्त्र का जप करता रहता है। गायत्री मन्त्र में यही तो कहा गया है, हे वरेण्य ! हमारी बुद्धि को सदा शुभ कर्मों में प्रेरित करते रहो।" इसलिये यदि ब्राह्मण इस संहिता का अध्ययन करता है, तो उसकी बुद्धि निर्मल हो जाती है, वह बड़ा बुद्धिमान् बन जाता है। इसी तरह क्षत्रिय को पृथिवी की चिन्ता रहती है, यदि वह श्रद्धा से पाठ करता है, तो समुद्र पर्यन्त पृथिवी का शासक बनता है। वैश्य को सदा धन की चिन्ता बनी रहती है, वह यदि इसका अध्ययन करता है, तो उसे कोषाधिपत्य की प्राप्ति होती है और यदि शूद्र सुनता तथा पढ़ता है, वह सभी प्रकार के पातकों से छूटकर पवित्र हो जाता है।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! आपने तो इस श्रीमद्भागवत संहिता की आवश्यकता से अधिक प्रशंसा कर दी। और भी तो अनेक शास्त्र हैं, महाभारत तो पंचमवेद ही है। आप इसी की इतनी महिमा क्यों गा रहे हैं, इसमें ऐसी कौन सी विशेषता है। आप कहो, कि इसमें भगवान् के चरित्रों का गान किया गया है, तो ऐसा कौन-सा आर्ष ग्रन्थ है, जिसमें भगवान् के नाम रूप तथा चरित्रों का गान न किया गया हो। वेदों में महाभारत रामायण तथा अन्य सभी पुराणों के आदि मध्य तथा अंत में सर्वत्र हरि हो हरि गाये गये हैं, उन्हीं को नाना रूपों से कहा गया है। फिर इस ग्रन्थ में ऐसी कौन सी विशेषता है। कृपा करके हमारे इस संशय का नाश करो।"

यह सुनकर सूतजी गम्भीर हो गये और कुछ रुककर बोले—बोले 'भगवन् ! मैं आपका भाव समझ गया, ऐसा प्रश्न करके आप इसके माहात्म्य को और श्रवण करना चाहते हैं, भगवन् !

यदि इसमें अन्य शास्त्रों से विशेषता न होती तो आप इसे इतनी उत्सुकता के साथ कभी भी श्रवण न करते, इसमें क्या विशेषता है, इसे मैं कई बार कह चुका हूँ, उन्हीं बातों को फिर दुहराता हूँ:- आप दत्तचित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

सब ग्रंथनिते श्रेष्ठ भागवत—चरित मनोहर।
भक्त भागवत वृत्त कहे पद पद पै सुंदर॥
अवतारनि की कथा चरित भक्तनि को अघहर।
भगवन्नाम महात्म्य छोड़ि जामें नहिँ दूसर॥
जो अच्युत अखिलेश हैं, जिन के अगनित नाम हैं।
तिनि के पद पाथोजमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम हैं॥

—:o:—

कलि कलुष काटिनी भागवती कथा

(१३८५)

कलिमलसंहति कालनोऽखिलेशो-
हरिरितरत्र न गीयते ह्यभीक्ष्णम् ।
इह तु पुनर्भगवानशेषमूर्तिः
परिपठितोऽनुपदं कथा प्रसङ्गैः ॥*

(श्री भा०१२ स्क० १२ अ० ६५ श्लो०)

छप्पय

जीव चराचर रचैं प्रकृति अरु विकृति बनावैं ।
आचारज बान स्वयं साधना सीख सिखावैं ॥
सत्य सनातन धाम भुवनपति अज विश्वम्भर ।
जिनकी सत्ता बिना रहैं नहिं जंगम थावर,।
रचना पालन नासिवौ, जिनिको नित नित काम है ।
तिनिके पावन पदनि में, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है ॥

इस संसार में सार कम है, असार अधिक है। गेहूँ जो के

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! अन्य ग्रन्थों में कलिकाल के पाप समूहों को नाश करने अखिलेश श्री भगवान् का गान तो किया है, किंतु बारम्बार गान नहीं किया गया है, किन्तु इस भागवत कथा में तो अशेष मूर्ति भगवान् वासुदेव का कथाओं के प्रसङ्ग मे प्रत्येक पद पर वर्णन किया है।"

बीज को बोओ, तो उसमें भूसा अधिक निकलेगा। अन्न न्यून। धान में पुआल भूसी अधिक होती है, चावल थोड़े। मूँगफली में, बादाम में, काजू में, चिलगोजा तथा अखरोट में खाने योग्य गिरी थोड़ी रहती है, छिलका आदि अधिक। बिना छिलका भूसी के सारपदार्थ टिक नहीं सकता। वही तो आधार है, नींबू मौसमी संतरा, कमला में रस तभी रहेगा जब उसमें छिलका, बीज और तंतु तथा भीतर के फल पतले छिलके रहें,। रस निकाल लेने पर वे अनावश्यक पदार्थ फेंक दिये जाते हैं। इसी प्रकार पुराण शास्त्रों में कुछ अनावश्यक विस्तृत कथायें होती हैं। वे अनावश्यक कथायें इसी लिये कही जाती हैं, कि उनमें से सार भाग निकाल लिया जाय। उसका शेप भाग छोड़ दिया जाय, किन्तु कुछ फल ऐसे होते हैं, जिनमें कुछ भी त्याज्य अंश नहीं रहता जैसे अंगूर अमरूद तथा अंजीर आदि। इसी प्रकार शास्त्रों में एक श्रीमद्-भागवत शास्त्र ही ऐसा शास्त्र है, जिसमें कोई भी त्याज्यांश नहीं है।"

सूत जी कहते हैं—"मुनियो! आपने मुझ से श्रीमद् भागवत की अन्य शास्त्रों से विशेषता पूछी उसे मैं आपसे बताता हूँ। देखिये इस कलिकाल में लोगोंकी पाप में स्वाभाविक प्रवृत्ति है। कलियुगी जीवों को पाप करने में तनिक भी हिचक नहीं होती। कलिकाल में सहस्रों वर्ष के जप तप, नाना भाँति के अनुष्ठान, कृच्छ्र चान्द्रायण आदि विविध प्रायश्चित्त होने असम्भव हैं, जिनसे पापों का नाश हो सके। कलियुग में तो समस्त पापों के नाश करने का सुगम सरल सर्वोपयोगी एक ही सुखद साधन है। वह है भगवान् के सुमधुर पाप हारी नामों का कीर्तन करना। और शास्त्रों में हरिनाम कीर्तन न्यून है धर्म अधर्म तथा प्रवृत्ति मार्ग का वर्णन विस्तार के साथ किया गया है, किन्तु श्रीमद् भागवत में तो भगवन्नाम और भगवान् के अवतार चरित्रों का

छोड़कर दूसरी बात ही नहीं कही गयी है। इसमें जहाँ देखो वहीं अवतारों के ही चरित गाये गये हैं। इसीलिये इस को 'नाम पुराण' कहा है। इदं भागवतं नाम पुराणं ब्रह्म सम्मितम्, यह वेद के ही समान है। यही नहीं कलिकाल में तो यह वेद से भी बढ़कर है।

यह सुनकर चौंककर शौनक जी बोले—"सूत जी! आप यह कैसी बात कर रहे हैं। वेद से बढ़कर पुराण कैसे हो सकता है?"

सूत जी ने कहा—महाराज, बड़ापन छोटापन तो कार्य सिद्धि में माना जाता है। हम मानते हैं अमृत बड़ा है, किन्तु हमारे वह किस काम का। उससे देवताओं की तृप्ति भले ही होती हो, हमारी तृप्ति तो दूध, घृत तथा अन्न से होती है हमारे लिये वही बड़ा है। हम मानते हैं, ऊख बड़ी है क्योंकि उसीसे गुड़, शकर, खाँड़ बूरा तथा अन्य मिठाइयाँ बनती हैं, किन्तु ब्रह्म भोज हो रहा हो, उसमें दही तो परस दिया जाय और उसमें चीनी न परसकर बड़ी समझकर ऊख परस दी जाय, तो उससे किसी की तृप्ति होगी? भले ही चीनी बूरा ऊख से ही बने हैं, किन्तु ब्रह्म भोज में दही के साथ मिलाकर खाने के कार्य में तो चीनी बूरे की ही आवश्यकता है, उस काम के लिये तो वही बड़ा है। इस प्रकार सतयुग, त्रेतादि युगों में लोग बुद्धिमान, बहुश्रुत तथा मेधावी होते थे, उन्हें सुनते ही स्मरण हो जाता था, उस समय सर्वत्र वेदों का प्रचार प्रसार था, उस समय के लिये वे ही बड़े थे। जब मेरे बाबा गुरु भगवान् वेद व्यास ने देखा कलियुगी अल्पवीर्य अल्पायु तथा अल्प बुद्धिवाले होंगे उनमें वेदों को धारण करने की शक्ति न होगी, तो उनके ऊपर कृपा करके भगवान् वेद व्यास ने पुराणों का संग्रह किया। स्त्री, शूद्र तथा द्विजबन्धु-नाम मात्र के द्विज कहलाने वालों—को तो वेदाध्ययन का अधिकार ही नहीं। उन्हीं के निमित्त व्यास जी ने महाभारत की रचना की। जब उससे

भी उनके मनको शान्ति न हुई, तो भगवान् नारद जी की आज्ञा से उन्होंने इस भागवती संहिता को बनाया। अन्य ग्रन्थों से इसमें यही विशेपता है, कि इसमें दूध को मथकर उसमें से मक्खन निकाल लिया गया है। जहाँ भी कहीं श्री कृष्ण कथा है, उनके अवतारों के चरित्र हैं अथवा उनके आश्रय से भगवत्भक्तों के चरित्र हैं वे ले लिये गये हैं, शेप सब छोड़ दिये हैं। इसमें इस बातपर विशेप ध्यान दिया गया है, कि कोई पद ऐसा न आजाय जिसमें विश्वमूर्ति भगवान् का वर्णन न किया जाय। ऐसी कथाओं का बयान किया है, कि जिनमें बारम्बार श्री हरिका ही गान हो।"

शौनक जी ने कहा—"सूत जी! आप सत्य ही कह रहे हैं। जितना सुख हमें इस भागवत कथा के श्रवण से मिला, उतना कभी भी नहीं मिला। अब कृपा करके कुछ और सुनाइये।"

सूत जी बोले—"अब क्या सुनाऊँगा महाराज! इसका तो न कभी आदि है न अन्त। मुझे तो सुनाना था सुना चुका अब फिर कभी देखा जायगा। अब मैं अपने इष्ट देव तथा गुरुदेव को प्रणाम करके इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ।"

शौनक जी ने कहा—"सूत जी जैसी आप की इच्छा। किन्तु महानुभाव हमारी तृप्ती तो अभी नहीं हुई।"

शौनक जी की बात का सूत जी ने कुछ भी उत्तर नहीं दिया। उन्होंने दोनों हाथों की अंजलि बाँधली। नेत्र बन्दकर लिये। गद्-गद् कंठ से वे कहने लगे—

अखिलात्मा श्री हरि की सत्व, रज और तम प्रधान शक्तियाँ हैं जिनसे इस विश्वब्रह्मांड की उत्पत्ति स्थिति तथा प्रलय कार्य होते रहते हैं। जो इतने महान् हैं, कि उनकी महत्ता को मनुष्य देवताओं की बात ही क्या इन्द्र, ब्रह्मा तथा शङ्कर भी पूर्णतया नहीं जान सकते। उन आत्मतत्व स्वरूप अनन्त, अज, अच्युत अखिलेश को मैं श्रद्धा भक्ति सहित नमस्कार करता हूँ।

जिन्होंने पृथिवी, जल, तेज, वायु, आकाश अपने में ही पड़े हुए अहंकार, बुद्धि, महत्तत्व तथा प्रकृति इन नौ तत्वों से-इनकी शक्तियों से इस चराचर के आश्रय भूत सम्पूर्ण संसार को क्रीड़ा में बना दिया, खेल ही खेल में इस स्थावर जंगम रूप जगत् की रचना कर दी उन समस्त देवों में श्रेष्ठ ज्ञान स्वरूप एकमात्र सनातन पुरुष के पाद पद्मों में मैं पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ।

जिनकी दृष्टि में स्त्री पुरुष, जड़ चैतन्य में कोई भेद भाव ही नहीं, जिनका चित्त आत्मानन्द रूप महार्णव में निरन्तर निमग्न बना रहता है, यद्यपि उनके हृदय में अज्ञान की एक भी ग्रन्थि नहीं है, जो आत्माराम पूर्णकाम हैं, फिर भी भगवान की ललित ललाम लीलाओं के गायन में जिनका चित्त फँस गया है, जिनकी हरि गुणगान में आत्मानन्द जनित स्थिरता आकर्षित हो गयी है। यद्यपि जो आप्तकाम हैं, जिन्हें कुछ भी कर्तव्य शेष नहीं है, जो विधि निषेध, कर्तव्य अकर्तव्य, त्याज्य ग्राह्य आदि भावों से परे हैं, तो भी जिन्हों ने कलि कल्मषों से शोषित जीवों पर कृपा करके इस परम पुण्य प्रद परमार्थ प्रकाशक पावन पुराण का प्रचार प्रसार किया है, उन स्वच्छन्द विहारी, कलि कलमषहारी सर्व पाप प्रहारी, जगत् हितकारी व्यास नन्दन अपने गुरुदेव भगवान् शुक के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम करके इस पुण्य प्रसंग को समाप्त करता हूँ।" इतना कहकर चिरकाल तक सूत जी अश्रु विमोचन करते रहे।

कुछ काल के अनन्तर शौनक जी ने पूछा—तो क्या सूतजी! अब भागवती कथा समाप्त हो गयी ?"

आँसू पोंछते हुए सूत जी बोले—"हाँ, महाराज ! अब समाप्त ही समझिये। कथा तो समाप्त हो गयी। अब उपसंहार रूप में कुछ भागवत् स्मरण कुछ पुराणों के सम्बन्ध में और कहूँगा उसे भी आप सुन लें। वैसे कथा तो समाप्त हो गयी।"

छप्पय

आत्माराम, निरीह, निरामय मुनि मम गुरुवर।
भेद भाव तैं रहित ज्ञान निष्ठा जिनि दृढ़तर॥
हरि गुन सुनिकें बधे भागवत चरित सुहाये।
निमित परीक्षित करें, जगत हित हरि प्रकटाये॥
परमहंस अवतंस मुनि, श्री शुक जिनिको नाम है।
तिनिके पावन पदनिमें, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है॥

—:०:—

नमो नमः

(१३८६)

यं ब्रह्मा वरुणेन्द्ररुद्रमरुतः स्तुन्वन्तिदिव्यैः स्तवैः ।
वेदैःसाङ्गपदक्रमोपनिषदैर्गायन्ति यं सामगाः ॥
ध्यानावस्थिततद्गतेन मनसा पश्यन्ति यं योगिनः ।
यस्यान्तं न विदुः सुरासुरगणा देवायतस्मै नमः ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १३ अ० १ श्लो०)

छप्पय

जिनिकी इस्तुति करें वरुन, अज,इन्द्र, मरुद्गन ।
सस्वर गावें जिनहिँ वेदविद मुनि योगीजन ॥
पाइँ न जिनिको अन्त शारदा, अज, चतुरानन ।
शेष, सुरेश, महेश दिनेश हु देव असुरगन ॥
जिनिके अगनित नाम हैं, रूप अनूपम श्याम है ।
तिनिके पद पाथोज में, पुनि पुनि पुन्य प्रनाम है ।

कृष्णाय नमः वासुदेवाय नमः हरये नमः परमात्मने नमः

* सूतजी कहते हैं—"जिन भगवान् की दिव्य स्तोत्रों से ब्रह्मा, वरुण इन्द्र, रुद्र तथा मरुद्गण स्तुति करते हैं, अङ्ग, पद, क्रम और उपनिषदों के सहित वेदों से – साम गान करने वाले ऋषिगण, जिनका गान करते हैं, ध्यान द्वारा स्थिर किये हुए मन से योगी जन जिनका साक्षात्कार करते हैं, तथा जिनका अन्त सुर तथा असुरगण भी नहीं पा सकते ऐसे परदेव प्रभु के लिये प्रणाम है।"

प्रणतक्लेश नाशाय नमः गोविन्दाय नमो नमः गोविन्दाय नमो नमः गोविन्दाय नमो नमः।

उन अनन्त शक्ति वाले भूमा पुरुष का महत्व कोई क्या जान सकता हैं उनकी महिमा का कोई क्या बखान कर सकता है, कोई उनके बल, वीर्य, पराक्रम, श्रोजतेज, प्रभाव, गुण तथा ऐश्वर्य का पार नहीं पा सकता। एक बार गरुड़जी को अभिमान हो गया 'ओ हो! मैं कितना बली हूँ, जो भुवनपति भगवान् विष्णु के भार को बड़ी सरलता से धारण कर लेता हूँ। उन्हें अपनी पीठ पर चढ़ाकर इधर से उधर ले जाता हूँ। मैं न होऊँ तो विष्णु भगवान् इतनी शीघ्रता से कैसे आते जाते।"

भगवान् समझ गये, मेरे भक्त गरुड़जी को अभिमान हो गया है, मेरे भक्तों के मन में यदि अभिमान की जड़ जम जाय, तब तो सर्व नाश ही हो जायगा, भक्त के मन में उठे अभिमान का मुझे तुरन्त नाश कर देना चाहिये अविलम्ब उसे जड़ से उखाड़ कर फेंक देना चाहिये।" यही सब सोच विचार कर भगवान् ने गरुड़जी को बुलाया और उनसे कहने लगे—"गरुड़जी! आप मेरे बोझ को उठा सकते हैं।"

गरुड़ जी ने भीतर से अभिमान के साथ किन्तु बाहर से शिष्टता के साथ कहा—"क्यों नहीं, महाराज! मैं तो सदा आप को उठाता हूँ।"

भगवान् ने कहा—"आप मुझे उठाते हो?"

गरुड़जी ने कहा—"मैं नहीं उठाता तो क्या महाराज कोई दूसरा उठाने आ जाता है।"

भगवान् ने कहा—"अच्छी बात है, आप ही उठाते हैं, तो मेरे सम्पूर्ण शरीर की बात तो जाने दो मेरे इस हाथ को ही उठाओ।" यह कहकर भगवान् ने अपने एक हाथ का पंजा गरुड़जी के ऊपर रख दिया। गरुड़जी उस पंजे के बोझ से दब गये, वे

हुच हुच करने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत होने लगा मानों अभी प्राण निकलते हैं वे बड़े कष्ट से बोले—"महाराज! मारकर ही छोड़ोगे क्या? मेरे तो प्राण निकले जाते हैं।"

हँसकर भगवान् बोले—"बस, इतने ही से घबरा गये अभी तो मैंने अपने पंजे का भी पूरा बल नहीं रखा। आप तो मेरे सम्पूर्ण शरीर को ढोते थे।"

पंजे को उठाते हुए भगवान् बोले—"गरुड़जी! मुझे कौन उठा सकता है। मैं तो आप के ऊपर कृपा करके अपने आप ही उठ जाता हूँ। मेरी शक्ति अनंत है, अपार, अपरिमेय है। उसका पार स्वयं मैं भी नहीं पा सकता। मेरे गुण अनन्त हैं उनका सम्पूर्ण गान मैं भी नहीं कर सकता फिर भी जीव मेरी ही

सम्बन्ध में कुछ कह सकते हैं मेरे गुणों का गान कर सकते हैं मुझे नमस्कार प्रणाम कर सकते हैं।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! मैं उन महा महिम श्रीहरि को बारम्बार नमस्कार करता हूँ, जिनकी महिमा का पार आज तक कोई पा ही न सका।"

देखिये, ब्रह्माजी इस सम्पूर्ण चराचर विश्वके एकमात्र जनक हैं। स्थावर जंगम सभी की सृष्टि चतुरानन द्वारा ही हुई है। वे ब्रह्मा जी जिनकी दिव्य स्तोत्रों से स्तुति करते हैं। उत्तर दिशा के लोक पाल वरुण, समस्त देवताओं के अधीश्वर स्वर्गपति इन्द्र, इस सम्पूर्ण चराचर सृष्टि को संहार करने वाले रुद्र, तथा उनंचास मरुद्गण जिनका निरन्तर स्तव गान करते हैं, फिर भी उनकी महिमा का पार नहीं पा सकते, तो उन अचिन्त्य महिमा वाले प्रभु के सम्बन्ध में हम क्या कहें। बस उन्हें पुनः पुनः प्रणाम है। बारम्बार नमो नमः नमोनमः कहकर ही हम विश्राम लेते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! वेद तो उनके भेद को जानते होंगे।"

सूतजी बोले—"अजी, महाराज ! जिनसे वेदों की उत्पत्ति हुई है, जिनके गर्भ में वेद रहने से जो वेद गर्भ कहाते हैं' वे ब्रह्मा बाबा ही जब उनके भेद को नहीं जान सके, तो फिर भला वेद क्या भेद जानेंगे। वे अपनी शक्ति के अनुसार वर्णन करते हैं, फिर नेति नेति कहकर चुप हो जाते हैं। वेदज्ञ ब्राह्मण बड़े नियम, संयम से रहकर सूर्य, अग्नि, गुरु तथा देवताओं की आराधना करते हैं; अंग, पद, क्रम तथा उपनिषदों के सहित सस्वर साम का गान करते हैं, किन्तु वे भी भगवान् की पूरी महिमा नहीं गा सकते। केवल अपनी श्रद्धाञ्जलि मात्र समर्पित करते हैं।

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी गान भले ही न कर सकते हों,

किंतु योगिजन अपने हृदय में उनका ध्यान तो कर ही लेते होंगे ?"

सूतजी बोले—"हाँ, महाराज ! ध्यान द्वारा मनको स्थिर करके योगिजन उनका साक्षात्कार अवश्य करते हैं, किन्तु वे भी उनके भेद को पूर्णरीत्या नहीं समज सकते। वे ध्यान करते हैं, साक्षात् होने पर नमो नमः नमो नमः करके उनको बारम्बार प्रणाम करते हैं।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! मनुष्य, देवता, असुर, गन्धर्व यक्ष राक्षस कोई तो भगवान् का अन्त जानते होंगे ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! मैं कह तो चुका ब्रह्मादिक देवता, बलि प्रह्लाद आदि बड़े बड़े प्रतापशाली असुर भी उनका अन्त नहीं पा सके उन्हें नमो नमः नमोनमः कहकर नमस्कार करते रहते हैं,उन्हीं देवाधिदेव भगवान्‌के लिये मैं बारम्बार नमस्कार करता हूँ भगवन् ! उन अजित भगवान् की महिमा क्या कहूँ। देखिये समुद्र मंथन रूपी खेल करने के लिये उन्हीं भगवान् ने अपने अनेक रूप बना लिये। एक रूप से तो मन्थराचल में घुस गये, एक रूप से उसकी रई बनाकर मथने लगे, एक रूप से अमृत लेकर समुद्र से निकले, एक मोहिनी रूप बनाकर बाँटने लगे। एक रूप से देवता असुरों के भीतर घुस गये एक कछुआ का रूप बन कर मन्दराचल को उठाये रहे।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! भगवान् की महिमा अचिन्त्य है। देखिये उतने बड़े मन्दराचल को भगवान् अपनी पीठपर कैसे रोके रहे। इतना भारी मन्दराचल और फिर जिसे इतने भारी भारी देवता असुर पूरी शक्ति से खींचते होंगे, स्वयं अमित बल वाले अजित भगवान् अपने युगल कर कमलों से मथते होंगे, क्या उस समय कूर्म भगवान् की पीठ छिलती न होगी ?"

यह सुनकर सूतजी खिल खिलाकर हँस पड़े और बोले—

"महाराज ! आप पीठ छिलने की बात कहते हो उन कूर्म भगवान् को तो मथते समय मीठी मीठी नींद आने लगी।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! नींद का वहाँ क्या प्रसङ्ग था। इतना भारी पर्वत पीठ पर फिरता रहा, वहाँ जल में कच्छ भगवान् को नींद कैसे आ गयी ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! जैसे कोई सुन्दर शैया पर पड़ा रहता है। कोमलांगी सुन्दरी प्रमदा उसके पैरों को शनैः शनैः सुहलाती रहती हैं, तो उससे जैसे उसे निद्रा आने लगती है वैसे ही मंदराचल की शिलाओं के नोंक की जब उनकी पीठ पर रगड़ लगती तो उन्हें ऐसा लगता मानों कोई मेरे शरीर को सुखपूर्वक खुजला रहा है, सुहरा रहा है। उस खुजलाहट से वे खुर्राटे लेने लगे। उनका श्वास प्रश्वास कुछ तीव्रता से चलने लगा। भगवान् की वह सुखकारी श्वास आप सबकी रक्षा करे। उन श्वासों का प्रभाव समुद्र में अभी तक दिखायी देता है।"

शौनकजी बोले—"सूतजी ! समुद्र तो जाने कब मथा गया, अभी तक उसका प्रभाव कैसे दिखायी देता है ?"

सूतजी बोले—"देखिये महाराज ! हम जल में एक कंकड़ी छोड़ते हैं, छोड़कर चुप हो जाते हैं तो कंकड़ी के गिरने से जो क्षोभ हुआ, वह क्षोभ तरंगों के रूप में कुछ काल तक तट पर दीखता है। यदि कंकड़ी से बड़ा पत्थर डाल दें तो तरंगें अधिक देर तक टकराती रहेंगी। यदि पहाड़ डाल दें तो और भी अधिक काल तक लहरें उठती रहेंगी। यदि क्षोभ करने वाला अनन्त हो तो अनन्त काल तक लहरें उठती रहेंगी। कूर्म भगवान् जब श्वांस छोड़ते तो समुद्र में ज्वार भाटा आ जाता समुद्र चढ़ जाता जब श्वांस खींचते तो समुद्र शान्त हो जाता उतर जाता। वह अनन्त कृत जल में क्षोभ हुआ था, अतः अनन्त काल तक समुद्र का जल चढ़ता उतरता रहेगा। यद्यपि अब समुद्र मंथन नहीं हो रहा है

तो भी कूर्म भगवान् के श्वास प्रश्वास के संस्कार लेश का अनुवर्तन करने से आज तक भी समुद्र शान्त नहीं हो सका। वह भी विश्राम लेता ही नहीं। उसमें हिलोरें उठती ही रहती हैं। ऐसी जिन भगवान् की महिमा है, उनके पाद पद्मों में अनंत प्रणाम हैं। उनको पुनः पुनः नमो नमः नमो नमः है। महाराज! जिनकी कृपा से मैंने सभी पुराणों में श्रेष्ठ इस महापुराण को पढ़ा और आपको सुनाया उस पुराण पुरुष प्रभु को पुनः पुनः नमो नमः है।

शौनकजी ने पूछा—"पुराण कितने हैं? उनका समाहार किसमें है? श्रीमद्भागवत सब पुराणों में श्रेष्ठ क्यों है, इसका प्रतिपाद्य विषय क्या है, इसमें कौन सा विषय प्रधान है इसके कहने का प्रयोजन क्या है, इसका दान कैसे करना चाहिये। इसके दान का और पठनादि का क्या विशेष फल है इन बातों को अन्त में चलते चलते और बताते जाइये। भगवान् आपका कल्याण करें आपने भागवती कथा सुनकर हमें कृतार्थ कर दिया।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है, महाराज! मैं आपके प्रश्नों का यथावत यथामति उत्तर दूँगा, आप इसे दत्त चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

जब कच्छप वपु धरयो पीठ धारयो प्रभु मन्दर।
अगनित योजन कूट फिरै ऊपर तैं घर घर॥
तिनि ऐसो सुख होइ नारि जनु पद सुहरावै।
मन्दर ज्यों ज्यों फिरै नाथ कूँ निदिया आवै॥
जिनिके श्वास प्रश्वास तैं, अब तक उदधि अशान्त अति।
तिनि पद जे बन्दन करैं, तिनिकी होवै शुद्ध मति॥

——❀❀——

अष्टादश पुराणों में श्रेष्ठ भागवत

(१३८७)

पुराणसंख्यासम्भूतिमस्य वाच्य प्रयोजने।
दानं दानस्य माहात्म्यं पाठादेश्च निबोधत ॥*

(श्री भा० १२ स्क० १३ अ० ३ श्लो०)

छप्पय

दश अरु आठ पुरान सार सब शास्त्रनि लीये।
कहे भागवत चरित भक्तिके सम्पुट दीये॥
शौनक पूछें—सूत! पुराननि संख्या कितनी।
सब की संख्या कहो, छन्द संख्या है जितनी॥
सूत कहें—"सब अठारह, सुनी पिता अरु मुनिनितैं।
चार लाख हैं छन्द सब श्रेष्ठ भागवत सबनितैं॥

प्रथम वेद एक ही था और अनन्त था, उसमें से जो अत्यावश्यक युगोपयोगी ऋचायें थीं उनको छाँटकर व्यास भगवान् ने एक वेद का संग्रह किया उसी को चार भागों में विभक्त कर

---

* सूतजी कहते हैं—"मुनियो! अब आप मुझसे इतनी बातें और सुनिये। पुराणों की संख्या 'उनकी सम्भूति' श्रीमद्भागवत का प्रतिपाद्य विषय। उसका प्रयोजन, उसके दानकी विधि, दान और उसके पाठादि का माहात्म्य।"

दिया जो ऋक्, यजु, साम तथा अथर्व चार नामों से प्रसिद्ध हुआ उसकी चार संहितायें हुईं। इसी प्रकार पुराण भी अनन्त हैं। अनन्त भगवान् की सभी वस्तुएँ अनन्त हैं। पूर्ण की सभी वस्तुएँ पूर्ण हैं। पुराणोंका भी भगवान् वेद व्यासने व्यास किया। उनको भी लोकोपयोगी बनाकर अठारह भागों में बाँट दिया। जो अठारह पुराण हुए। वास्तव में पुराण एक ही है। जैसे महाभारत ग्रन्थ एक ही है उसे अठारह भागों में विभक्त कर दिया है। श्रीमद्भगवत् गीता एक ही ग्रन्थ है उसे अठारह अध्यायों में बाँट दिया है उसी प्रकार पुराण एक ही है सबकी परिभाषा एक है, किन्तु उसके पुराण, उपपुराण और पुराण ऐसे भेदकर के अठारह अठारह भागों में बाँट दिये हैं। अठारह पुराण हैं, अठारह उपपुराण हैं, अठारह औप पुराण हैं तथा इनके अतिरिक्त भी बहुत से अल्प पुराण हैं। मुख्यतया अठारह पुराणों का ही विशेष माहात्म्य है। उन अठारह पुराणों में से श्रीमद्भागवत भी एक है। पुराण रूपी महाग्रंथ का श्रीमद्भागवत भी एक अध्याय है। जब श्रीमद्भागवत की विषय सूची बतायी जा रही है, तो संक्षेप में अन्य पुराणों के सम्बन्ध में कुछ जान लेना चाहिये।"

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! आप मुझसे अठारह पुराणों के सम्बन्ध में पूछते हैं। पुराणों का विस्तृत विवेचन तो आपकी कृपा हुई तो आगे करूँगा। इस समय तो मैं केवल श्लोक संख्या बताऊँगा। प्रथम आप ब्रह्म पुराण की संख्या सुनिये ब्रह्म पुराण आदि पुराण है और इसकी श्लोक संख्या केवल दश सहस्र है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! आपने पहिले ब्रह्म पुराण की ही श्लोक संख्या क्यों बतायी, श्रीमद्भागवत या दूसरे पुराण को क्यों नहीं बतायी ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! मैं पहिले ही बता चुका हूँ, कि पुराण एक बड़ा ग्रन्थ है, उसके ये अठारह अध्याय हैं, यह नहीं कि आप चाहे जिस पुराण को पहिले कह दें। ब्रह्म पुराण प्रथम है। जहाँ कह दिया पहिली पुराण, वहाँ ब्रह्म पुराण का ही बोध होगा। आठवीं पुराण कहनेसे अग्निपुराणका ही बोध होगा। अठारहवीं पुराण कहने से ब्रह्माण्ड पुराण ही समझी जायगी। मुझे पहिले से अठारहवीं पुराण तक संख्या बतानी है इसलिये प्रथम पुराण की संख्या बतायी। इन अठारहों में छै ब्रह्म पुराण छै विष्णु पुराण छै रुद्र पुराण हैं। इसलिये छै सात्विक छै राजस् और छै तामस पुराण मानी जाती हैं। इसका विवेचन प्रसंगानुसार फिर होगा।"

शौनकजी ने पूछा—"हाँ, सूतजी ! अब हम समझ गये। अब यह बताइये दूसरी पुराण कौन-सी है इसकी श्लोक संख्या कितनी है ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! दूसरी पद्म पुराण है। यह बहुत बड़ी पुराण है। स्कन्द पुराण को छोड़कर इससे बड़ी पुराण और कोई नहीं है। इसकी श्लोक संख्या पचपन सहस्र बतायी है।"

शौनकजी ने पूछा—"तीसरी पुराण कौन-सी है सूतजी ?"

सूतजी बोले—"महाराज ! तीसरी विष्णु पुराण है यह दो भागों में विभक्त है। विष्णु पुराण और विष्णु धर्मोत्तर पुराण दोनों को मिलाकर इसकी श्लोक संख्या तेईस सहस्र है। यह तो वैष्णव पुराण है ही। चौथी शैव पुराण है।"

शैव पुराण में शिव महिमा का विशेष वर्णन है, उसकी संख्या चौबीस सहस्र है। जैसे वैष्णव गण श्रीमद्भागवत् का विशेष आदर करते हैं, वैसे ही शैवलोक शिव पुराण को अधिक महत्व देते हैं। पंचम पुराण श्रीमद्भागवत है।

श्रीमद्भागवत सभी पुराणों में तिलक है। इसकी श्लोक संख्या अठारह सहस्र है। इसमें शुक और परीक्षित् सम्वाद है। इसमें आनन्द कन्द श्रीकृष्ण चन्द्र के चारु चरितों का विशेष रूप से वर्णन है। अब आता है छठा पुराण।

पुराणाचार्यों ने नारद पुराण को षष्टम पुराण बताया है। यह अत्यन्त दिव्य पुराण है। इसकी श्लोक संख्या पच्चीस सहस्र है। इसके अंत में एकादशी व्रत का माहात्म्य बड़े विस्तार से मोहिनी चरित्र में वर्णन किया गया है। इसके अनन्तर है सप्तम पुराण।

मार्कण्डेय पुराण सप्तम पुराण माना गया है इसकी श्लोक संख्या नौ सहस्र ही है, यह सबसे छोटा किन्तु बड़े ही महत्व का पुराण है। अब आया अष्टम पुराण।

अग्नि पुराण अष्टम पुराण है इसमें सभी शास्त्रों का सार आ गया है इसकी श्लोक संख्या पन्द्रह सहस्र चार सौ बतायी है, इसके अनन्तर नवमाँ भविष्य पुराण है।

भविष्य पुराण के विषय में बड़ा मतभेद है। फिर भी पुराणों में इसकी श्लोक संख्या चौदह सहस्र पाँच सौ श्लोक की बतायी है। दसवाँ पुराण ब्रह्मवैवर्त है इसकी श्लोक संख्या अठारह सहस्र, एकादशवाँ पुराण लिङ्ग पुराण है इसकी संख्या ग्यारह सहस्र है, द्वादश पुराण बाराह पुराण है इसकी श्लोक संख्या चौबीस सहस्र है, त्रयोदशवाँ पुराण स्कन्द पुराण है, यह सभी पुराणों से बड़ा है, इसमें सभी तीर्थों का बड़े विस्तार से वर्णन है। इसकी श्लोक संख्या इक्यासी सहस्र एक सौ है। महाभारत से कुछ ही कम है। चतुर्दश पुराण है वामन पुराण यह छोटा है, दश सहस्र श्लोक इसमें हैं। पन्द्रहवाँ पुराण कूर्म पुराण को बताया है, सत्रह सहस्र इसकी श्लोक संख्या है। सोलहवाँ पुराण है मत्स्य पुराण इसमें चौदह सहस्र श्लोक हैं। गरुड़

पुराण सत्रहवाँ पुराण है, इसमें उन्नीस सहस्र श्लोक हैं तथा सबसे अन्तिम अठारहवाँ पुराण ब्रह्माण्ड पुराण को बताया है, बारह सहस्र इसमें श्लोक हैं। इस प्रकार सम्पूर्ण अठारह पुराणों की सब मिलाकर चार लाख श्लोक संख्या बतायी है। इन चार लाख में श्रीमद्भागवत के अठारह सहस्र श्लोक हैं। अठारह पुराणों में से ये अठारह सहस्र श्लोक सबसे मूल्यवान मणियोंके सदृश हैं।

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! हम तो पुराणों के सम्बन्ध में विशेष सुनना चाहते थे, आप तो एक श्वाँस में सबकी श्लोक संख्या गिना गये।"

सूतजी ने कहा—"भगवन्! आप आशीर्वाद दें, मैं पुराणों के विषय में कहूँगा, विस्तार के साथ कहूँगा। यहाँ तो मैंने प्रसंग वश पुराणों की संख्या बतायी। केवल सब पुराणों में श्रीमद्-भागवत ही श्रेष्ठ है इसे जताने ही के लिये यहाँ पुराणों का उल्लेख किया है। ये पुराण अनादि हैं। जब भगवान् विष्णु की नाभि कमल से लोक पितामह ब्रह्माजी की उत्पत्ति हुई, तो कमल-योनि ब्रह्मा संसारकी माया को देखकर डर गये। वे सोचने लगे—"कहीं मैं भी इस माया के चक्कर में न फँस जाऊँ।" संसार भय से भयभीत हुए अपने नाभि-कमल पर बैठे हुए ब्रह्माजी को अभय करने के निमित्त ही भगवान् ने करुणा के वशीभूत होकर उन्हें इस महापुराण को सुनाया। इसलिये इस पुराण के आदि आचार्य भगवान् विष्णु ही हैं और यह सभी पुराणों में श्रेष्ठतम है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी! जैसी ही अन्य पुराणों में कथायें हैं वैसी ही इसमें हैं, इसमें श्रेष्ठता की ऐसी कौन सी बात है?"

सूतजी बोले—"महाराज! अन्य पुराणों की कथाओं में और

इसकी कथाओं में अन्तर है। इसके आदि में, मध्य में तथा अंत में जितनी भी कथायें हैं, वे सब वैराग्य से भरी हुई हैं। सभी कथाओं का निष्कर्ष यही निकलता है कि, यह संसार मिथ्या है इसमें श्री कृष्ण चन्द्र ही एकमात्र सार पदार्थ हैं।"

शौनकजी ने कहा—"सतजी ! इसमें तो भगवान् की लीला की बड़ी श्रृङ्गारपूर्ण कथायें हैं ?" उनसे तो मन में और अधिक राग होगा। उन्हें आप वैराग्य पूर्ण कैसे बताते हैं ?"

यह सुनकर सूतजी ! खिलखिलाकर हँस पड़े और हँसते हँसते बोले—"महाराज ! विराग का अर्थ ही यह है कि संसार से तो राग विगत हो जाय तथा श्रीकृष्ण लीला कथामृत के प्रति विशेष राग हो जाय। विराग के दोनों अर्थ हैं। विगतो राग, विराग तथा विशेषण राग विराग।

इसमें जो भगवान् की मधुराति मधुर सरसाति सरस सुन्दराति सुन्दर कथायें हैं, वे साधु पुरुषों को ही नहीं सुर समुदाय को भी आनन्दित करने वाली हैं। इनसे सभी को सुख होता है। यह पूर्ण ग्रन्थ है। ग्रन्थों में चार बातें होती हैं, विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी। इसी से ग्रन्थ की महत्ता जानी जाती है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इस ग्रन्थ का मुख्य विषय क्या है ?"

सूतजी बोले—"भगवान् ! सम्पूर्ण वेदान्तों का जो सारभूत है, जो ब्रह्म और आत्मा का एकत्व लक्षण है, जिसे अद्वितीय वस्तु कहा गया है, वही ब्रह्म, परमात्मा, भगवान् इस ग्रंथ का विषय है।" इसके आदि मध्य तथा अन्त में सर्वत्र उसी का गान किया गया है।"

शौनकजी ने कहा—"इस ग्रंथ का प्रयोजन क्या है सूतजी।"

सूतजी ने कहा—"उन्हीं भगवान् के आश्रय से होने वाला कैवल्य इस ग्रन्थ का प्रयोजन है।"

शौनकजी ने पूछा—"इसका सम्बन्ध क्या है ?

सूतजी बोले—"जीव का भगवान् के साथ शांत, दास्य, सख्य, वात्सल्य या मधुर किसी प्रकार का सम्बन्ध आदि का प्रतिपादन जुट जाना यही इसमें सम्बन्ध है।"

शौनकजी ने पूछा—"सूतजी ! इसका अधिकारी कौन है ?"

सूतजी बोले—"महाराज जिसे भी इस असार संसार से पार होने की इच्छा हो, वही इसका अधिकारी है।"

शौनकजी ने कहा—"सूतजी ! हमने भागवत के विषय, प्रयोजन, सम्बन्ध और अधिकारी के विषय में तो सुन लिया, अब आप कृपा करके श्रीमद्भागवत का दान कैसे किया जाय, दान का क्या माहात्म्य है और इसके पाठ का क्या माहात्म्य है इसे कृपा करके और सुनाइये।"

सूतजी बोले—"अच्छी बात है महाराज ! अब मैं आपको दान तथा दान और पाठ के माहात्म्य को ही सुनाता हूँ, आप इसे दत्त चित्त होकर श्रवण करें।"

छप्पय

कथा भागवत लगै भाग्य शालि कूँ प्यारी।
यह पुरान-सिर-तिलक जगत जीवनि हितकारी॥
प्रथम कह्यो श्री विष्णु ब्रह्म तैं करुना करिकैं।
पूरन ज्ञान विराग भक्ति कूँ प्रतिपद भरिकैं॥
परब्रह्म जाको विषय, कह्यो प्रयोजन पावनो।
अति ई अनुपम ग्रन्थ है, विषय परम मन भावनो॥

श्री मद्भागवत दान तथा पाठ माहात्म्य

(१३८८)

प्रौष्ठपद्यां पौर्णमास्यां हेमसिंह समन्वितम् ।
ददातियो भागवतं स याति परमांगतिम् ॥

(श्री भा० १२ स्क० १३ अ० १३ श्लो०)

छप्पय

ब्रह्मसूत्र को अरथ सार वेदनि को अनुपम ।
दुह्यो उपनिषद दूध शरकरा तामें शम दम ॥
एक बार जिनि पियो शास्त्र सब फीके लागें ।
छोड़ि अमृत नर मधुर व्यरथ विष पीवें भागें ॥
ज्यों सरितनि में गङ्ग हैं, शिव उत्तम वैष्णवनि में ।
छेत्रनि में बारानसी, श्रेष्ठ भागवत सबनि में

संसार में सबसे बड़ा सुवर्ण दान है, क्योंकि सुवर्ण से सभी वस्तुयें मिल सकती हैं, किन्तु सुवर्ण का दुरुपयोग भी हो सकता है। सुवर्ण पाकर उसे बेचदे उससे व्यभिचार आदि करे तो दाता ग्रहीता दोनों ही नरक गामी होते हैं। इसलिये गौदान सुवर्णदान

---

*सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! जो पुरुष इस श्रीमद्भागवत ग्रन्थको सुवर्ण के सिंहासन पर रखकर भाद्रपद की पूर्णिमा के दिन दान करता है, वह परम गति को प्राप्त करता है।"

से भी बढ़कर है, गौ के अंगों में समस्त देवता वास करते हैं। दूध देनेवाली गौ जिसके भी घर में जायगी सम्पूर्ण घर वालों को दूध देगी। किन्तु गौ का भी लोग दुरुपयोग कर सकते हैं, द्रव्य लोभ से वधिक के हाथों बेच सकते हैं जिससे लेनेवाले देनेवाले दोनों ही घोर पाप के भागी बनेंगे। इसीलिये भूमिदान की अधिक प्रशंसा है। इसमें दाता गृहीता दोनों का ही कल्याण है किन्तु भूमि भी यदि अपात्र को दी जाय तो उसका वह दुरुपयोग ही करेगा, इसलिये भूमिदान से भी बढ़कर कन्यादान का महत्व है। योग्यवर को वस्त्राभूषणों से अलंकृत करके कन्या दी जाय तो दाता को हर्ष होगा, गृहीता का घर बसेगा वंश चलेगा। संतति हुई तो वह मातृकुल पितृकुल और अपने कुल इस प्रकार तीन कुलों को तो तारेगी। किन्तु कन्या को दे दिया और उससे कुछ ऊँची नीची बात बन गयी, तो उभयकुल की कीर्ति को बट्टा लग जायगा। इसलिये अन्नदान तथा जलदान में पात्रा-पात्र का भेद भाव नहीं। जो भी भूखा प्यासा है वही अन्न जल का अधिकारी है। भूखे को अन्न दे दिया, तो मानों उसे जीवन दे दिया। भूखे प्यासे को अन्न जल मिल जाय तो उसकी आत्मा तृप्त हो जाती है, बिना वाणी के ही हृदय से दाता के प्रति आशीर्वाद निकलने लगती है। किन्तु अन्न तो जिसे दिया जाय उसी को तृप्त करता है, एक बार ही तृप्त करता है, किन्तु किसी को विद्या दान दी जाय, तो उसके जीवन भर काम आवेगी। उससे इहलोक परलोक दोनों बनेंगे। इसलिये अन्न जल दान से भी अधिक विद्या दान की प्रशंसा है। किन्तु विद्या में भी एक त्रुटि है यदि किसी को दी जाय और वह ज्ञान खल निकल गया। पढ़कर किसी दूसरे को पढ़ाया नहीं। अपनी विद्या का प्रचार प्रसार नहीं किया, तो वह विद्या उसी के शरीर में जीर्ण हो जायगी। इसलिये विद्या दान से भी अधिक महत्व सद्ग्रन्थ दान का है। योग्य पात्र को श्रद्धा सहित सद्ग्रन्थ का दान दिया जाय,

तो इसमें दाता ग्रहीता दोनों का ही इहलोक तथा परलोक बनता है। रुपया, पैसा, अन्न वस्त्र तो कुछ काल में नष्ट हो जाते हैं, किन्तु ग्रन्थ तो चिरकाल तक बना रहता है, जो भी उसे देखता है वही दाता का स्मरण करता है, अमुक ग्रन्थ उसने लिखाकर या छपा कर दिया। जिसे दिया जाता है। उसके बन्धु बान्धव, इष्ट मित्र तथा परिवार के सभी जन पढ़ते हैं, लाभ उठाते हैं, अपने जीवन को उच्च बनाते हैं। यदि गृहीता के वंश में कोई अयोग्य या अनपढ़ भी निकल जाय जो उसे बेच डाले। तो जो भी उसे क्रय करेगा उसी के वंश के लोग पढ़कर लाभ उठावेंगे। सद्ग्रन्थ जहाँ भी जायगा वहीं ज्ञान का प्रचार प्रसार करेगा, इसलिये ग्रन्थों का दान सबसे श्रेष्ठ है। अन्य ग्रन्थों की अपेक्षा भागवती कथाओं का दान और भी श्रेष्ठ है। सभी लोग इन रस मयी श्री कृष्ण कथा को भागवत चरितों को उत्सुकता और उल्लास के साथ श्रवण करेंगे, पठित अपठित, बालक, युवा स्त्री पुरुष सभी का इन कथाओं की ओर स्वाभाविक आकर्षण होता है, सभी इन मधुमयी रसमयी कथाओं को बड़े चावसे सुनते पढ़ते हैं, अतः भगवत् लीला सम्बन्धी भागवती कथा सम्बन्धी पुस्तकों के दान का अनन्त माहात्म्य है। यदि वह दान पर्वो पर तीर्थ क्षेत्रों में किया जाय तो पूछना ही क्या ?

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! श्रीमद् भागवत को तो जब भी सुना जाय, जब भी दान दिया जाय तब ही शुभ है, तब ही कल्याण कारी है. फिर भी आषाढ़, कार्तिक तथा भाद्रपद इन मासों का विशेष महत्व है। इनमें भी भाद्रपद का माहात्म्य विशेष है ?"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी ! भाद्रपद का विशेष माहात्म्य क्यों है ?

सूत जी बोले—"महाराज ! मेरे गुरुदेव भगवान शुक ने

भाद्रपद मास में ही महाराज परीक्षित् को सप्ताह सुनाई थी। भाद्रशुक्ला नवमी को आरम्भ करके भाद्र की पूर्णिमा को समाप्त की थी। इस लिये इस सप्ताह को शुक सप्ताह कहते हैं। इन दिनों में जो श्रीमद् भागवत का सप्ताह सुनकर वक्ता के लिये श्रीमद्-भागवत की पुस्तक को दान करते हैं, वे अक्षय पुण्य के भागी बनते हैं।"

शौनक जी ने पूछा—"सूत जी ! दान कैसे किया जाय ?"

सूत जी बोले—"भगवन् ! दाता को चाहिये कि अपनी

शक्ति के अनुसार सुवर्ण का छोटा बड़ा सिंहासन बनवावे। उस पर ग्रन्थ को सुन्दर वस्त्र के वेष्टन से वेष्टित करके रखे उसका

विधिवत् पूजन करे, फिर शुद्ध सदाचारी योग्य वक्ता को उसे दे दे। इससे दाता को तो परमगति प्राप्त होगी ही गृहीता का और उसके परिवार का भी कल्याण होगा। क्योंकि यह ग्रन्थ बड़ा ही सरस और लोक प्रिय है।

शौनक जी ने कहा—"सूत जी! स्कन्द पुराण तो श्रीमद् भागवत से चार पाँच गुना है, पद्म पुराण इससे तिगुने से भी अधिक है, ये इतने बड़े पुराण उतने लोकप्रिय क्यों नहीं हुए?"

सूत जी ने कहा—"हाँ भगवन्! मुझे भी बड़ा आश्चर्य होता है। वैसे तो सभी पुराण भगवान् व्यास देव के रचे हुए हैं। सभी में न्यूनाधिक भगवान् के चरित्र गाये गये हैं, किन्तु बहुत ही कम ऐसे पुरुष होंगे जो अठारह पुराणों के नाम भी जानते होंगे, किन्तु इस श्रीमद् भागवत का तो देश देश, गाँव गाँव तथा घर घर में प्रचार है। जहाँ देखो वहीं भागवत सप्ताह होता है। अन्य पुराणों की कथा तभी तक अच्छी लगती हैं, जब तक श्रीमद् भागवत कथा न सुनी हो जहाँ कानों में श्रीमद् भागवती कथा पड़ी नहीं तहाँ अन्य सभी कथायें फीकी फीकी सी लगती हैं। सब लोग यही कहते हैं—"हमें तो भागवती कथा ही सुनाओ। इसीलिये सत्पुरुषों की सभा में नित्य नियम से श्रीमद् भागवत रूप अमृत सागर सदा ही हिलोरें लेता रहता है। यह ग्रन्थ उपनिषद् रूप दुग्ध का सारातिसार नवनीत है। जिसने इस मिश्री मिले टटके नवनीत को एक बार चख लिया, जिसने भागवत रूप अमृत कुंड में एक बार बुड़की लगाली उसका मन कहीं अन्यत्र चलायमान न होगा। भागवत रूप माखन मिश्री खाकर कुछ खाने को शेष नहीं रहता। भागवत रूपी दिव्य सागर में नहाकर फिर कहीं नहाने का मन नहीं चाहता। मुनियो! आप ने तो इसे इतने विस्तार से सुना ही है आप अपना अनुभव सुनावें।

शौनक जी बोले—"सूत जी ! क्या सुनावें। कुछ कहने योग्य बात हो तो कहें। यह ग्रन्थ तो अनुपमेय है। बहुत खोजने पर भी हमें कोई उपमा नहीं सूझती।"

सूत जी बोले—"मुनियो ! आप लोग ही धन्य हो आप श्रीमद् भागवत् रसामृत से संतृप्त हो। महानुभावो ! नदियाँ तो सभी उत्तम हैं, फिर समुद्रगा नदियाँ तो अत्यन्त ही पूज्य हैं, किन्तु सहित प्रवरा त्रिपथगा गंगा सभी सरिताओं में सर्वश्रेष्ठ मानी गयी है। देवता सभी पूज्य हैं, किन्तु सब देवों में भगवान् विष्णु सबसे श्रेष्ठ माने गये हैं, वैष्णव सभी पूज्य हैं, किन्तु भगवान् रुद्र के समान सभी वैष्णव नहीं हो सकते। इसी प्रकार पुराण सभी श्रेष्ठ हैं। सभी में लोकोत्तर ज्ञान विज्ञान भरा पड़ा है, किन्तु जो बात श्रीमद् भागवत में है वह अन्यत्र कहाँ ? यह ग्रन्थ सभी पुराणों में सर्वोत्तम है, शीर्ष स्थानीय है। जैसे सम्पूर्ण क्षेत्रों में वाराणसी को सर्व श्रेष्ठ क्षेत्र माना गया है उसी प्रकार पुराणों में यह सर्व श्रेष्ठ पुराण है। मुनियो ! कहाँ तक मैं इसकी प्रशंसा करूँ। शेष शारदा भी जिसकी महिमा का पार नहीं पा सके उसका मैं अल्पमति पार कैसे पा सकूँगा। अतः मैं इस ग्रन्थ को, ग्रन्थ के रचयिता को, ग्रन्थ के वक्ता अपने गुरुदेव को और जो इसमें सर्वत्र ओत प्रोत हैं, उन भगवान् को प्रणाम करके इस प्रसंग को पूर्ण करूँगा।"

छप्पय

अति ई निरमल चरित भागवत भक्तनि को धन।
जामें ज्ञान विशुद्ध भक्ति भगवत की बरनन ॥
करम, त्याग, वैराग्य यथाथल सबई भाखे।
अति समास सब कहे शेष कोई नहिं राखे ॥
श्रवन मनन अरु पाठ नित, करें प्रेमतें नारि नर।
देहिं भक्ति अरु मुक्ति तिनि, प्रभु परमेश्वर परात्पर ॥

—:o:—

सत्यं परं धीमहि

(१३८९)

कस्मै येन विभासितोऽयमतुलो ज्ञानप्रदीपः पुरा ।
तद्रूपेण च नारदाय मुनये कृष्णाय तद्रूपिणा ॥
योगीन्द्राय तदात्मनाथ भगवद्रातायकारुण्यतः ।
तच्छुद्धं विमलं विशोकममृतं सत्यं परं धीमहि ॥

(श्री भा० १२ स्क० १३ अ० १६ श्लो०)

छप्पय

हरिने अजतें कह्यो प्रथम अज नारद पाहीं ।
नारद तें मुनि व्यास व्यास शुक दियो पढ़ाहीं ॥
नृपति परीक्षित निकट कह्यो शुक हीं सुनि लीयो ॥
जैसो कछु बनि परयो ताहि तुम सबकूँ दीयो ॥
जिनि तैं निकस्यो चरित यह, सो हरि सुख के धाम हैं ।
मोइ दयो गुरुदेव ने, उभय पदनि परनाम हैं ॥

भगवान् अनादि हैं जीव अनादि है, जगत अनादि है, ज्ञान

सूत जी कहते हैं—"मुनियो ! अब हम सब मिलकर उस शुद्ध निर्मल, शोक रहित तथा अमृत रूप परम सत्य का ध्यान करते हैं, जिसने सर्व प्रथम विष्णुरूप से इस अतुल ज्ञान प्रदीप को ब्रह्माजी के प्रति प्रकट किया । फिर ब्रह्मारूप से नारद जी को सुनाया, फिर नारद रूपसे व्यास जी को उपदेश दिया, फिर व्यास रूपसे अपने पुत्र योगिराज शुक को पढ़ाया, फिर शुक रूप से अत्यंत करुणा के वश होकर महाराज परीक्षित को सुनाया । अर्थात् स्वयं श्रीहरि ने ही विविध रूप रखकर इसे सुनाया, इसका प्रचार प्रसार किया ।"

अनादि है, अज्ञान अनादि है। इस संसार में कुछ भी सादि नहीं कुछ भी नया नहीं सब पुराण ही पुराण है, इसीलिये पुराण भी अनादि हैं। आप आश्चर्य करेंगे कि ज्ञान को तो अनादि कहना उचित भी है, किन्तु अज्ञान को आप अनादि क्यों कह रहे हो। इसे आप ध्यानपूर्वक विचार करें। उत्पन्न होते ही भगवान् कमलासन भव से भयभीत हो उठे। यदि इस अज्ञान का प्रवाह अनादि न होता, तो सृष्टि के आदि में ही भव और भय दोनों कहाँ से आ जाते। पहिले कहीं सो रहे होंगे तभी तो ब्रह्माजी के उत्पन्न होते ही उनसे चिपट गये। तब ज्ञान स्वरूप भगवान् ने भागवत प्रदीप लेकर उनके अज्ञानांधकार को भगाया, वे ब्रह्म स्वरूप अभय हो गये। ब्रह्माजी के शरीर से तो वह भाग गया, यदि वह ऐसा वैसा कच्चा वीर होता तो मर जाता, किन्तु वह तो अनादि ठहरा। ब्रह्माजी तो ज्ञान दीप को पाकर ज्ञान स्वरूप बन गये अब भय कहाँ जाय। वह ब्रह्माजी के नैष्ठिक ब्रह्मचारी पुत्र नारद जी केशरीरमेंचिपट गया। उनको भीसंदेह नेघेर लिया। वे दौड़ेदौड़े पिता की शरण में गये। ब्रह्माजी उनकी दशा देखकर हँसे। समझ गये यह भवभय भूत मेरे पूत के शरीर में चिपट गया। भगवान् ने जो अखंड अनादि, एकरस, परिपूर्ण दीपक दिया था उसी को नारदजी को दे दिया। नारदजी भी ब्रह्म बन गये। पूर्ण में से पूर्ण देने पर ब्रह्माजीकी पूर्णता में कोई न्यूनता नहीं आयी, नारदजी भी परिपूर्ण हो गये। वह भव भयभूत चिन्ता रूपी भूतिनी का वेष बनाकर नारदजी के भतीजे के पुत्र व्यासजी के चित्त में चिपट गयी। नारदजी ब्रह्मरूप हो चुके थे, वे घूमते घामते व्यासाश्रम पर पहुँचे। ज्ञान प्रदीप से भूतिनी को भगाया, उन्हें चिन्ता हो गयी कहीं यह मेरे पुत्र के शरीर में न चिपट जाय, अतः उन्होंने उस ज्ञान प्रदीप को अपने परमहंस पुत्र को दे दिया। वे भी उसे पाकर भगवान् के स्वरूप ही बन गये। वह भवभय जाकर कलियुग का

रूप रखकर—राजा परीक्षित् के देह में चिपट गया। संत स्वभाव परोपकारी परमहंस श्री शुकदेव के हृदय में बैठी करुणा ने कहा—"क्यों नहीं आप इस धर्मात्मा राजा के भवभय भूत को भव्य भभूत देकर भगा देते !" करुणा की बात मानकर भगवान् शुक ने राजा के भय को भगा दिया। वह कलि कल्मष हारिणी ओषधि दे दी। कभी भी न बुझने वाला ज्ञान प्रदीप उन्हें थमा दिया। जिसे पाकर वे निर्भय हो गये। सूतजी ने भी सोचा—'लगे हाथ मैं भी इसे ग्रहण कर लूँ,उन्होंने भी उसे पा लिया और भवभय से भीत हुए नैमिपारण्य के अठासी सहस्र मुनियों को दिखाया। वहाँ से भगकर वह भवभय भूत कलियुग बनकर सम्पूर्ण पृथिवी पर व्याप्त हो गया। हे कलियुगी जीवो ! यदि तुम इस भूत को भगाना चाहते हो, तो मैं तुमसे दृढ़ता के साथ कहता हूँ, तुम श्रद्धा पूर्वक नित्य नियम से भागवती कथा पढ़ो सुनो और मनन करो, तुम अभय हो जाओगे, भव का भयङ्कर भारी भूत अवधूत बनकर भभूत लगाकर तुम्हारे गाँव से भाग जायगा, चला जायगा, तुम अजर अमर निर्भय और नित्य आनन्द स्वरूप बन जाओगे।

सूतजी कहते हैं—"मुनियो ! श्री मद्भागवत शास्त्र ऐसा सुवर्ण है, जिसे सहस्रों बार तपाकर मल रहित बना दिया गया है। यह ऐसी मिट्टी है, जिसमें किसी प्रकार मैल शेष नहीं। जो काँच के समान स्वच्छ है। जैसे स्त्रियों का धन शील, ब्राह्मणों का धन तप, क्षत्रियों का धन तेज और ओज वैश्यों का धन सुवर्ण मणि माणिक्य, ब्रह्मचारी का धन वीर्य, गृहस्थी का धन सुन्दर सद्गुणों से युक्त स्त्री पुत्र , वानप्रस्थों का धन तितिक्षा, संन्यासियों का धन त्याग, राजाओं का धन अप्रतिहत आज्ञा, विद्वानों का धन विद्या है, उसी प्रकार वैष्णवों का धन यह श्रीमद्भागवत शास्त्र है। यह परम पवित्र धन है। इसकी अत्यन्त पवित्रता का कारण यह

है, अन्य शास्त्रों के धर्म तो कुछ न कुछ सकाम हैं, कैतव सहित हैं, कामनाओं से युक्त हैं, किन्तु इसके धर्म वो कैतव रहित हैं, विशुद्ध हैं, निर्मल हैं, परमहंसों के प्राप्त करने योग्य हैं, निष्काम हैं। अन्य शास्त्रों में तो कहीं अर्थ का वर्णन है, कहीं धर्म का और कहीं काम का, किंतु इस भागवत शास्त्रों में तो अति विशुद्ध परम ज्ञान का ही वर्णन है। किसी शास्त्र में कर्म पर ही बल दिया गया है, कहीं उपासना को श्रेष्ठ बताया है, कहीं वैराग्य के ही गुण गाये हैं, कहीं भक्ति को छोड़कर सबको तुच्छ बताया है, किंतु यहाँ वैराग्य और भक्ति के सहित निष्काम कर्म का निरूपण किया है। सभी का सरसता के साथ शास्त्रानुकूल सुन्दर समन्वय किया गया है। जो भागवती कथाओं 'को प्रेम से, श्रद्धा भक्ति और विश्वास के सहित श्रवण करते हैं। पाठ करते हैं, दूसरों को श्रवण कराते हैं, जो पढ़ते हैं उसका एकाग्र चित्त से मनन करते हैं, वे अवश्य ही मोक्ष पद के अतिथचारी बन जाते हैं, वे संसार सागर से सदा के लिये पार हो जाते हैं। मुनियो! जिसने इसें श्रद्धा सहित गुरु मुख से सुना वह भगवत् रूप भी हो गया। अनादि, अनन्त अखिलेश्वर से जो उत्पन्न होगा वह उन्हीं के रूपानुरूप होगा। भगवान् से ज्ञान प्राप्त करके ब्रह्माजी, नारदजी, वेदव्यास जी, शुकदेवजी, राजा परीक्षित् तथा आप सब ज्ञान स्वरूप हो गये उसी ज्ञान का हम ध्यान करते हैं।

इस शास्त्र के आदि बीज भगवान् वासुदेव हैं, मोक्ष की इच्छा रखने वाले अज चतुरानन को उन्हीं ने करुणा करके इस शास्त्र को सुनाया, उन सबके साक्षी, सर्वत्र बसने वाले भगवान् श्री हरि के पाद पद्मों में पुनः पुनः प्रणाम है। उन्हीं प्रभु की प्रेरणा से इस अनुपम शास्त्र का संसार में प्रचार और प्रसार हुआ। अन्त में मैं अपने गुरुदेव के चरणों में पुनः पुनः प्रणाम करता हूँ, जो ज्ञान के भंडार हैं, करुणा के सागर हैं, संसार से सर्वथा उदासीन

हैं। अभिमन्यु तनय उत्तरा नन्दन महाराज परीक्षित् को संसार सर्प ने डस लिया था, भवभय भूत उनके शरीर में लिपट गया था, उनमें इतनी भी सामर्थ्य नहीं थी कि वे स्वयं चिकित्सक के समीप जा भी सकें। मेरे गुरुदेव करुणा के वशीभूत होकर बिना बुलाये—स्वयं ही राजा के समीप पधारे, संसार सर्प से डसे हुए राजा को निर्विष बनाया। उनके भयंकर भूत को भागवत सुनाकर भगाया। उन ब्रह्मर्षियों द्वारा भी वन्दित योगिराज आनन्दावतार अपने गुरुदेव के चरणों में वारम्बार प्रणाम करके मुझसे जैसी कुछ बनी तैसी कथा कहकर मैं इस प्रसंग को समाप्त करता हूँ। अब अंतिम प्रणाम करके मैं इस भागवती कथा को पूर्ण करूँगा।"

छप्पय

हे देवेश्वर ! दयित ! दयानिधि दाता दानी।
हे सेवक प्रभुदत्त अलपमति अवगुन खानी॥
धन, जन, वैभव, राज, विषयसुख नाथ न चाहूँ।
पद पदुमनि की भक्ति जनम जनमनि में पाऊँ॥
का कहिकें विनती करूँ, अज्ञ अकिञ्चन दीन हूँ।
कृपा प्रतीक्षा करि रह्यो, सब विधि साधन हीन हूँ॥

—:०:—

अन्तिम प्रणाम

(१३९०)

नाम संकीर्तनं यस्य सर्वपाप प्रणाशनम्।
प्रणामो दुःखशमनस्तं नमामि हरिं परम्॥ *

(श्रीमद्भागवत का अंतिम श्लोक)

छप्पय

संकीर्तन जिनि नाम पाप के पुञ्ज जरावै।
जिनिकूँ करयो प्रनाम सकल अघ शोक नसावै॥
जिनिके मधुमय चरित सुधा श्रवननि में घोरें।
हरे, मुरारे नाथ नाम अघ कूटनि तोरें॥
कलि में कीर्तन तैं मिलैं, सुनि कीर्तन रमि जात हैं।
चरन शरन तिनिकी गहौ, जो प्रभु के पितु मात हैं॥

हे प्रभो! यह जीव अनादि वासनाओं के वशीभूत होकर न जाने कब से इस संसार में असहाय की भाँति भटक रहा है। हे पथ प्रदर्शक! इसे पुण्य पथ दिखा दो। इसे अपने देव दुर्लभ

---

* "जिन भगवान् के नामों का सङ्कीर्तन सभी प्रकार के पापों को नष्ट करने वाला है, जिनके लिये किया हुआ प्रणाम सभी प्रकार के दुःखों का शमन कर देता है, मैं उन्हीं परब्रह्म परमात्मा श्रीहरि को इस ग्रंथ के अंत में प्रणाम करता हूँ।"

दर्शन करा दो। हे पार लगाने वाले प्रभो! हम कब से इस असार संसार सागर में गोता लगा रहे हैं, हाथ पैर फटफटा रहे हैं, नाथ! हमें बचा लो। हमें अपनी सुदृढ़ नौका पर बिठा लो, हमें अपना लो, उस पर पहुँचा दो। हे मेरे चतुर नाविक! दया करो, कृपा करो, अनुग्रह करो, अनुकम्पा करो, तुम्हारा तो काम ही है पार लगाना फिर हमारी बेर देर क्यों कर रहे हो, क्यों नहीं हाथ बढ़ाते ?

हे सर्वज्ञ! हम कब से इस भवाटवी में भ्रमित बने भ्रमण कर रहे हैं। हमें कहीं सुगम, सुन्दर, सरल, सुखकर सीधा मार्ग ही दिखाई नहीं दे रहा है। हे अन्तर्यामिन्। आओ! आओ! हमें पुण्य पथ दिखा जाओ। आ जाओ, आ जाओ, अब विलम्ब का काम नहीं, बहुत भटके नाथ! बहुत भटके। अब तो हमें इससे पार लगा जाओ मुक्ति का मार्ग बता जाओ।

हे गोविन्द! हमारी ये इन्द्रियाँ हमें कुपथ की ओर ले जाती हैं। यथेच्छाचारी बनने को प्रेरित करती हैं। विषय रूपी विष पीने को विवश करती हैं, हे हृषीकेश! इनको समझा जाओ, घुड़ककर तनिक आँख निकालकर इन्हें बरज जाओ और मनकी डोरी को भी तनिक अपनी ओर खींच जाओ।

हे अशरण शरण! संसार में जिसकी भी शरण लेते हैं, उसी को शरणहीन पाते हैं, जिससे भी सुख की आशा रखते हैं, उसी को दुखी पाते हैं। जिसकी भी ओर कातर दृष्टि से सहायता के लिये निहारते हैं उसे ही विवश पाते हैं, अतः सबकी ओर से मुँह मोड़कर अब एकमात्र आपके ही मुख को हम जोहना चाहते हैं, आपके ही चरणारविन्दों का आश्रय लेना चाहते हैं, आपको ही अपना सर्वस्व सौंपकर सुखी होना चाहते हैं। ऐसा कर दो नाथ! अपना लो मेरे स्वामी! चरणों की दासता दे दो। अपना बना लो, अपने आश्रय में रख लो। हे

अखिलेश ! प्रतिष्ठित होने की आशा से सर्वत्र ठोकरें खाई। प्रतिष्ठा तो हाथ लगी नहीं उलटी अप्रतिष्ठा हाथ लगी। सर्व प्रतिष्ठित आपको छोड़कर जो इन अप्रतिष्ठित पदार्थों के लिये भटकेगा, उसकी प्रतिष्ठा हो भी कैसे सकती है ? हे प्रतिष्ठा के प्रतिष्ठान ! हे आदर के अधिष्ठान ! हमें अब अपनी ही ओर बुला लो। अपनी प्रतिष्ठा में ही हमारी प्रतिष्ठा को मिला लो। तुमही हमें यथेष्ठ आदर दे दो। हे दया निधान ! दया दर्शा दो। कृपा की वर्षा कर दो। अनुग्रह की झड़ी लगा दो। हमारे चिर काल के संतप्त हृदय को सरस कर दो। आनन्द सागर में परिप्लावित कर दो, अमृत सागर में डुबो दो।

सूतजी कहते हैं--"मुनियो ! भागवती कथा पूरी हो गयी। आर्य वैदिक सनातन धर्म में समस्त कार्यों के समस्त ग्रंथों के आदि में, मध्य में और अन्त में श्रीहरि का ही गान होता है। अतः मैं भी अपनी टूटी फूटी भाषा में इस ग्रन्थ के अन्त में प्रभु के पादारविन्दों में अपनी श्रद्धाञ्जलि अर्पित कर दूँ, श्रद्धा के दो मुरझाये पुष्प चढ़ा दूँ, अर्घ्य के स्थान में दो अश्रु बिन्दु गिरा दूँ। अपने स्वामी के सम्मुख अपनी विवशता बता दूँ।"

शौनकजी बोले—"हाँ सूतजी ! हमारी ओर से भी।"

सूतजी बोले—"हाँ महाराज ! सभी की ओर से। नेत्रों को बन्द कीजिये, ध्यान कीजिये, अनुभव कीजिये। भक्तानुग्रह कातर श्याम सुन्दर सम्मुख खड़े हैं, उनका मानसिक पूजन कीजिये।"

प्रथम ध्यान कीजिये—"हे नाथ ! आप हमारे स्वामी हैं, हम आपके सेवक हैं। हे दया के सागर अपनी विश्व मोहिनी मूर्ति को हमारे हृदय पटल पर सदा के लिये अंकित कर दीजिये। हे सद्गुण निलय ! हे मन मोहन ! हे त्रिभुवन सुन्दर ! हे भुवन मोहन, आपका हम ध्यान करते हैं।"

आसन—"हे गरुड़ासन ! हे शेष शैयाशायी ! आप शेषजी की सुन्दर शैया पर सदा सुख से शयन करते रहते हैं। कोई आपको सुवर्ण सिंहासन समर्पित करते हैं, कोई मणि जटित मनोहर आसन प्रस्तुत करते हैं, किन्तु हम तो आपको वही आसन देंगे जिस पर आपकी प्रिया कमला रानी बैठती हैं। हम अपने हृदय कमल को आसन के स्थान में प्रस्तुत करते हैं, प्रभो ! उस पर विराज जाइये।"

पाद्य—"सुवर्ण पात्र में पाद्य देनेको नाथ ! न चदन न गंध, ये दो अश्रुओं के उष्ण विन्दु हैं उन्हीं से हम आपके उभय अति कोमल चरणारविन्दों में चढ़ाते हैं। हमारे इस पाद्य को स्वीकार करें।"

अर्घ्य—"कर कमलों में अर्घ्य अर्पित करने को, अच्युत ! न सुवर्ण पात्र है और न गंध, पुष्प, अक्षत, मधु, दधिसर्पि, सरसों, दुग्ध, दूर्वा तथा कुशा ही हैं। वे ही भक्ति हृदय से निसृत अश्रु-विन्दु हैं उन्हें चाहें अर्घ्य समझें चाहें आचमनीय और चाहें स्नानीय जल, आँसुओं के अतिरिक्त हम पर कुछ भी नहीं है।"

वस्त्र—"हे पीताम्बरधारी ! हमारे नेत्रों पर जो एक पुराना परदा पड़ा है, उसी पुराने आवरण को अत्यन्त ही दीनता के साथ हम आपके भी अंग के लिये अर्पित करते हैं। हमारी दीनता की ओर देखकर इस हीन मलीन परदे को ग्रहण कर लें।"

यज्ञोपवीत—"हे यज्ञेश ! तीन तारके इस त्रिगुणात्मक शरीर को ही हम यज्ञोपवीत के स्थान में प्रस्तुत करते हैं। प्रभो ! इस मल निलय को स्वयं ही विशुद्ध बनाकर स्वीकार करें।"

चन्दन—"हे यदुनन्दन ! यह जो विषयों के प्रति समता रूप स्निग्धता है, यही हमारे समीप चन्दन है इसे ग्रहण करके प्रसादी

हमें दे दो, जिससे अपनी ममता न रहकर आपके प्रति ममता हो।"

अक्षत—"हे अक्षय! इस क्षत विक्षत हृदय को ही अक्षत के स्थान पर ग्रहण करें।"

पुष्प—हे सुमन स्वरूप! हृदय में जो नाना विषयों की गंध संचित है, उन्हीं भाँति भाँति के विषय रूप कुमनों को सुमन के स्थान में स्वीकारें।"

धूप—"हे गन्धालय! असन्तोष जनित श्वासों का जो धूम्र निकल रहा है उसे ही धूप के स्थान में आप ग्रहण करें।"

दीप—"हे ज्ञान स्वरूप! विषयों को प्राप्त करने की जो हमारे हृदय में निरन्तर अखंड ज्योति जलती रहती है, उसी में अपना स्नेह घृत डालकर दीप के स्थान में मान लें और उसके आलोक से हमें आलोकित कर दें।"

नैवेद्य—"हे मदहारी! हमारे मद को आप नैवेद्य के स्थान पर भक्षण कर जायँ। हमारे पात्रमें प्रसादी भी न छोड़ें, सबके सबको आप पा जायँ।"

मुख शुद्धि—"हे परिपूर्ण! मुख शुद्धि-ताम्बूल पुंगी फल के स्थान में हमारी हृदय की अशुद्धि को हर लें।"

दक्षिणा—"हे लक्ष्मीपते! दक्षिणा तो अब जो हम पर होगी वही देंगे। अज्ञान की राशि हमारे हृदय में विद्यमान है। आप सर्व समर्थ हैं, उसी को अपने कोष में मिला लें। आप ज्ञान के निधि हैं, हम अज्ञान के निधि हैं। आपको अपने सर्वस्व को समर्पित करके हम निर्धन हो जाना चाहते हैं। हमारे अतुल धन को हे कमलाकान्त! आप स्वीकार करें।"

आरती—"हे प्रकाश रूप! पंचभूतोंके प्रपंचसे रची ममता से

स्निग्ध हुई अज्ञान से जली इस आरती को हम आपके सम्मुख दिखाते हैं।"

प्रदक्षिणा—"हे संसार के स्वामी! हम न जाने कब से संसार चक्र की प्रदक्षिणा कर रहे हैं, कब से इसमें घूम रहे हैं अब आपके चरणों में आकर यह प्रदक्षिणा समाप्त हो जाय। आपकी प्रदक्षिणा करके हमें फिर कहीं न घूमना पड़े। इस प्रदक्षिणा विनय को आप मान लें।"

नमस्कार—"हे नाथ! आप तो पापहारी, परम अमल विमल

हैं ही। आपकी महिमा तो अपरम्पार है। केवल आपके नामों का संकीर्तन ही समस्त संसार के पाप तापों को जड़मूल से नाश करने में सर्वथा समर्थ है, आपके लिये किया हुआ एक बार का

ही प्रणाम समस्त अमंगल अशुभों को शान्त कर देता है। हे मंगलमय ! हे आनन्द मय ! हे सुखमय स्वामिन् ! आपके चरणारविन्दों में पुनः पुनः प्रणाम है। हे नारायण, आपके पादपद्मों में अनन्त नमस्कार है।"

विनय—"नाथ ! आप हमारे सच्चे स्वामी हैं। हे देवेश्वर ! हम आपके अकिंचन दास हैं। हे प्रभो ! हम पाप पंक में फँसे पामर प्राणी हैं। हे मोक्षपते ! हम आपसे मोक्ष नहीं चाहते। कर्म चक्र को मेटने के लिये हम याचना नहीं करते। हमें भले ही चाहे जितने जन्म लेने पड़ें, किन्तु हे सर्वेश्वर हमारी अंतिम भीख यही है कि हम कर्म वश जहाँ भी जन्में, जो भी योनि धारण करें उसी में आपके चरणारविन्दों की भक्ति बनी रहे। आपकी भक्ति हो, भक्ति हो, भक्ति हो, यही हमारी सबसे अंतिम विनय है।"

भगवान् वासुदेव की जय, भगवान् देवकी नन्दन की जय, आनन्द कन्द नन्दनन्दन श्री कृष्णचन्द्र की जय, यशुमति तनय की जय, वृन्दावन विहारी लाल की जय। भगवन्नामात्मक भगवत् स्वरूप श्रीमद्भागवत की जय, बोलो भाई सब सन्तनि की जय।

श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।
श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव।
श्री कृष्ण गोविन्द हरे मुरारे, हे नाथ नारायण वासुदेव॥

दोहा—मात्रा अक्षर हीन पद, यदि अशुद्ध हू कोउ।
करें क्षमा राधारमन, प्रभु प्रसन्न अब होउ॥

ॐ शान्ति! ॐ शान्ति !! ॐ शान्ति !!!

। आसरी मत्श्री भागवती कथा समाप्तः